अहिंसा दर्शन

प्रेरणा स्रोत

धर्मनिष्ठ श्रावकरत्न श्री शिखर चन्द जैन, देहली

लेखक

डॉ० रमेशचन्द जैन, एम.ए., पी-एच.डी., डी० लिट्, जैनदर्शनाचार्य।

रीडर एव अध्यक्ष-सस्कृत विभाग

वर्द्धमान कॉलेज, बिजनौर (उ०प्र०)

वीर निर्वाण सवत-2530

प्रकाशक

दिगम्बर जैन साहित्य, सस्कृति सरंक्षण समिति

डी 302 विवेक विहार, दिल्ली

❖ अहिंसा दर्शन

-: लेखक :-

डॉ. रमेशचन्द जैन, एम.ए., पी.एच.डी., जैनदर्शनाचार्य, डी. लिट्.।

-: प्रकाशक :-

दिगम्बर जैन साहित्य, संस्कृति संरक्षण समिति, डी 302 विवेक विहार, दिल्ली।

❖ भगवान् महावीर के 2600 वे जन्मकल्याणक महोत्सव की सम्पन्नता के उपलक्ष्य मे प्रकाशित।

-: प्रथमावृत्ति :-

वीर निर्वाण संवत् 2530 ई.सन् 2004

❖ मूल्य : 75.00 रु

-: मुद्रक :-

शक्ति प्रिंटिंग प्रेस दरियागंज

बडे हर्ष का विषय है कि इस पुस्तक के लिए सम्पूर्ण कागज की व्यवस्था श्रीमति कुसुम जैन, श्रेष्ठ विहार (घरोंदा अपार्टमेंटस) दिल्ली ने उदार हृदय से प्रदान की है। एतदर्थ समिति उनके प्रति धन्यवाद अर्पित करती है।

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य में अहिंसा :- अहिंसा एक ऐसा तत्त्व है, जिसकी उपयोगिता सदा काल से रही है और रहेगी। यही कारण है कि उसे साहित्यकारो ने अपने साहित्य में सदैव सम्मानित स्थान दिया है। भारतीय लिखित साहित्य वेद से प्रारम्भ होता है। वेदो मे अहिसा[1],अहिसन्तसामया[2] जैसे शब्द मिलते है ।

ऋग्वेद मे कहा गया है :-

यन्नूमश्या गीत मित्रस्य यायां पथा।

अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिसानस्य सश्चिरे।। ऋग्वेद 5/64/3

हम अभी (सगीत) प्राप्त करें। मित्रभूत अथवा मित्र द्वारा दर्शित मार्ग से हम गमन करे। अहिंसक मित्र का प्रिय सुख हमे गृह में प्राप्त हो।

यर्जुवेद कहता है :-

मित्रस्याहं सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।

मित्रस्यांह चक्षुषा समीक्षामहे ।। 36/18

अर्थात् मै सभी प्रणियो को मित्रवत् देखू। आपस मे सभी एक दूसरे को मित्र के समान देखे।

आरुणिकोपनिषद् मे कहा गया है कि ब्रहमचर्य, अहिसा, अपरिग्रह सत्य आदि व्रतो की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।[3]

---

[1] अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्या हिसन्तीरुपस्पृश ।
विद्याम यासा भुजो धेनूना न वज्रिव ।। ऋग्वेद 10/12/13

[2] या सीमानविरुजन्ति मूधनि प्रत्यर्षणी ।
अहिसन्तीसामया निर्द्रवन्तु अहिर्बिलम्।। अ०वे० 9/8/13

[3] ब्रहमचर्यमहिमा चापरिग्रह च मत्य च यत्नेन हे रक्षतो हे रक्षतो हे रक्षत इति। आरुणिकोपनिषद्-3

शाण्डिल्योपनिषद् ने अहिंसा को दश यमों में समादृत किया है। तदनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार तथा शौच - ये दश यम हैं ।[4]

मनुस्मृति में कहा गया है कि जो अपने सुखों की इच्छा से अहिंसक प्राणियों का घात करता है, वह इस लोक और परलोक में सुख नहीं पाता। जो प्रणियों को न मारता है, न उन्हें कष्ट देता है और सबका हित चाहता है, वह अनन्त सुख को प्राप्त करता है। प्रणियों का घात किए बिना मांस उत्पन्न नहीं होता और प्राणि बध स्वर्ग का कारण नहीं है, अतः मांस नहीं खाना चाहिए। जो पशुघात में अनुमति देता है, जो उसके अंगो को काटता है, जो उसका घात करता है, जो उसका क्रय, विक्रय करता है, जो उसे पकाता है, जो उसे परोसता है और जो खाता है, वे सब घातक हैं । जो सौ वर्ष तक प्रतिवर्ष अश्वमेध यज्ञ करता है तथा जो मांस नहीं खाता, उन दोनों का पुण्य समान है। इस लोक में जिसका मांस मैं खाता हूँ, परलोक में वह मुझे खाएगा, यही मांस शब्द की निरुक्ति विद्वानों ने की है ।[5]

अग्निपुराण में कहा गया है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह - ये मुक्ति और भुक्ति दोनों के ही देने वाले हैं ।[6]

मत्स्यपुराण में कहा गया है कि जितना पुण्य चार वेदों के अध्ययन से या सत्य बोलने से अर्जित होता है, उससे कहीं अधिक पुण्य की प्रप्ति अहिंसा व्रत के पालन से होती है ।[7] यज्ञ में पशु हिंसा करने से धर्म के नाम नाम पर बहुत बड़ा अधर्म होता है । मुनिजन कभी भी हिंसा या हिंसापरक यज्ञ का अनुमोदन नहीं करते: क्योंकि इन लोगों के अनुसार शरीर को अनेक वर्षो तक तपाकर मुक्ति पाना तथा कन्दमूल फल खाकर तृप्ति करना श्रेयस्कर है, मुनिजन कभी भी हिंसा की प्रशसा नहीं करते ।[8]

---

[4] शाण्डिल्योपनिषद्-1

[5] मनुस्मृति 5/45-56

[6] अहिसासत्यमस्तेय ब्रहमचर्यापरिग्रहौ ।
यमा पञ्च स्मृता विप्र नियमा भुक्ति मुक्तिदाः ।। - अग्निपुराण 372/2-3

[7] मत्स्यपुराण 105/48

[8] वहीं 142/12-30

पातञ्जल योगदर्शन में अहिंसा की गणंना पाँच यमों में की गई है ।[9] महर्षि पतञ्जलि का कहना है :-

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग:"

अर्थात अहिंसा की जहां प्रतिष्ठा होती है, उसके सानिध्य में प्राणी अपना वैर त्याग देते हैं ।

महाकवि बाणभट्ट ने कादम्बरी में जाबालि ऋषि के वर्णन के प्रसङ्0ग में अहिंसा की महती प्रतिष्ठा की है। वे कहते हैं :-

अहो, महात्माओं का प्रभाव कितना अद्‌भुत है । क्योंकि यहां पर पशु भी अपना परम्परागत विरोध छोड़कर शान्त आत्मा वाले (होते हुए) तपोवन में रहने का सुख अनुभव करते हैं । जैसे कि - यह धूप से व्याकुल सर्प खिले हुए कमल वन की रचना का अनुकरण करने वाले, सैकड़ों उठते हुए सुन्दर चन्द्रों वाले हिरण के नेत्रों की कान्ति के समान चितकबरे मोरों के समूह में मानों ताजी हरी घास में ही नि:शङ्क होकर प्रवेश कर रहा है । यह हिरण का बच्चा, जिसकी गर्दन पर अभी बाल ही नहीं आए हैं, ऐसे सिंह के बच्चे से परिचय होने के कारण अपनी माता को छोड़कर दूध की धारा का स्रवण करते हुए सिंही के स्तनों का पान कर रहा है । यह सिंह चन्द्र किरणों के समान धवल गर्दन के बालों के भार को मृणाल-समूह की शंका करने वाले हाथी के बच्चों द्वारा खींचे जाते हुए देखकर नेत्र मूंदे हुए आदर कर रहा है, बहुत समझ रहा है । यहाँ यह वानर समूह, जिसमें से चपलता जाती रही है, स्नान किए हुए मुनि कुमारों के लिए फल ला रहा है और ये हाथी मदमत्त होते हुए भी गण्डस्थल पर बैठे हुए और मदजल को पीने के कारण निश्चल भ्रमर समूह को दया युक्त होकर अपने कान रूपी तालों से हटाते नहीं हैं । अधिक कहने से क्या लाभ? इन भगवान् जाबालि के निश्चेतन वृक्ष भी (फलमूल धारण करने वाले, फलमूल पर जीविका चलाने वाले) वल्कल युक्त (छाल से युक्त, वल्कल वस्त्र पहने हुए) और तपस्वियों के अग्निहोत्र की उठती हुई धूमरेखाओ से निरन्तर कृष्ण मृगचर्म को पहिनने की शोभा का सम्पादन करने वाले हैं, अत: व्रतधारी से प्रतीत होते हैं, फिर सचेतन प्राणियों की तो बात ही क्या है ?"

---

[9] पातञ्जल योगदर्शन 2/30

अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला को चित्रित करने के साथ दुष्यन्त एक अहिंसा प्रधान पृष्ठभूमि का निर्माण करना चाहता है :-

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी ।

पादास्तमभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।।

शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः ।

श्रृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ।। 6/17

अर्थात जिसके रेतीले किनारे पर हंसयुगल बैठा हुआ है, ऐसी मालिनी नदी चित्रित करनी है । उसके दोनो ओर हिमालय की पवित्र पहाड़ियाँ बनानी हैं, जिन पर हरिण बैठे हुए हैं और जिसकी शाखाओं पर वल्कल लटक रहे हैं, ऐसे वृक्ष के नीचे काले हरिण के सींग पर बायी आँख को खुजलाती हरिणी को बनाना चाहता हूँ।

यहाँ हरिणी यह जानती है कि हरिण जरा भी अपने सींग को हिलाए डुलाए तो उसकी आँख नष्ट हो सकती है, किन्तु हरिण के प्रति उसके मन में यह विश्वास है कि वह ऐसा नहीं करेगा, अतः हरिण के सींग पर विश्वस्त होकर वह अपनी आँख खुजला रही है।

वाल्मीकि रामायण की रचना की आधारशिला करुणा है । महर्षि बाल्मीकि ने देखा कि क्रीडा करते हुए क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक को मार दिया । यह देखकर उनके हृदय से करुणा का स्रोत फूट पड़ा ।

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समा ।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेक अवधीः काममोहितः ।।

हे निषाद! तुम युग युग तक प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं करोगे, क्योंकि तुमने काममोहित क्रौञ्च पक्षी के जोड़े मे से एक को मार दिया ।

राम का संदेश लेकर जब हनुमान-सीता के पास पहुँचे, तब सीता ने हनुमान् पर राम का अनुचर होने का विश्वास नही किया और पूछा कि तुम राम के स्वभाव, रहन-सहन, खान-पान के बारे मे बताओ, तभी मै विश्वास कर पाऊँगी । तब हनुमान ने बताया कि -

न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते ।

वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति केवलम् ।।

- बाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड 36/41

इश्वाकुवंशी राम मासाहार नहीं करते, वे शाकाहारी है, वे मधु का सेवन नहीं करते, वे नित्य अच्छी तरह तैयार किए गए वन्य भात का ही सेवन करते हैं ।

सम्राट् अशोक ने गिरनार शिलालेख में स्पष्ट लिखा है कि अभिहिंसा नहीं होना चाहिए । अभिहिंसा अर्थात विशेष रूप से की गई हिंसा-शिकार । अपने क्षणिक मनोरजन के लिए हिंसा करना, निरपराध प्राणियों का शिकार करना कहाँ तक उचित है ?

उत्तररामचरित में भवभूति ने जनक के विषय में लिखा है कि वे मास परित्यागी थे -

निवृत्तमासस्तु तत्रभवान् जनकः।। उत्तररामचरित 4/1

महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है कि अहिंसा परम धर्म है, परम तप है, परम सत्य है और अन्य धर्मों की उद्गम स्थली है। यह परम सयम है, परम दान, परम ज्ञान, परम फल, परम मित्र तथा परम सुख है।[10]

बौद्ध ग्रन्थ संयुत्तनिकाय में कहा गया है कि सभी दिशाओं में अपने मन को दौड़ाओ, कहीं भी अपने से प्यारा दूसरा नही मिला । वैसे ही दूसरों को भी अपना प्राण बड़ा प्यारा है, इसलिए अपनी भलाई चाहने वाला दूसरे को मत सतावे ।[11]

सिक्खों के गुरु ग्रन्थ साहब में कहा है :-

जो रत लग्गे कपड़े जामी होए पलीत ।

जो रत पीवें मासा तिन क्यों निर्मल चीत ।।

अर्थात् रक्त या खून लग जाने से वस्त्र गदा हो जाता है, उसमे दाग लग जाती है, फिर कैसे माना जाए कि रक्तयुक्त मास खाने से या मांस के साथ लगे हुए खून को पीने से किसी व्यक्ति का मन मैला नहीं होता, अवश्य होता है ।

---

[10] महाभारत - अनुशासन पर्व अ 115 श्लो0 23 अ 116 श्लो 028-30

[11] मयुत्तनिकाय, पहला भाग पृ0 71

भारतवर्ष के ऋषि मनीषियों ने इस प्रकार अहिंसा को उच्च स्थान दिया, किन्तु अहिंसा का चरम उत्कर्ष जैनधर्म में दिखाई देता है, जहाँ, मन, वचन और कर्म से तथा कृत, कारित और अनुमोदन से किसी प्रणी को न सताना अहिंसा कही गयी है । आचार्य उमास्वामि ने हिंसा की परिभाषा करते हुए कहा है :-

"प्रमत्त योगात् प्राणव्यपरोपण हिंसा ।।"

अर्थात् प्रमाद के योग से किसी के प्राणों का वियोग करना हिंसा है।

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि पुरुषार्थसिद्ध्युपाय् में कहते हैं :-

अप्रादुर्भाव: खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।

तेषामवोत्पत्तिहिंसेति जिनागमस्य संक्षेप:।।

अर्थात रागादि का प्रादुर्भाव न होना अहिंसा है और रागादि की उत्पत्ति होना हिंसा है, यही जिनागम का संक्षेप है ।

इसके अतिरिक्त जैनग्रन्थ हिंसा और अहिंसा की सूक्ष्म व्याख्याओं से भरे पड़े हैं । जैनश्रावक और श्रमण की चर्या पद पद पर अहिंसा से ओत-प्रोत है ।

आधुनिक युग मे महात्मा गांधी ने अहिंसा पर व्यापक प्रयोग किए । जो अहिंसा मुनियों के लिए धर्मशास्त्र की और गृहस्थों के लिए चूल्हा, चक्की तक ही सीमित थी, उसे गांधी जी ने राजनीति व समाजनीति का विषय बना दिया और उस पर व्यापक प्रयोग किए । अहिंसा के जो संस्कार सुप्त पड़े थे, उन्हे गांधी जी की धर्म चेतना ने स्पन्दित किया, गतिशील किया और विकसित भी किया । अहिंसा को उन्होने रूढ़ि न मानकर जीवन का अनिवार्य हिस्सा बनाया और उसे तेजोदीप्त किया । अहिंसा राष्ट्रीय क्षेत्र को लांघकर अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वपूर्ण विषय बन गयी, उसके आधार पर हमारा राष्ट्र तो स्वतन्त्र हुआ ही, अन्य राष्ट्रों को भी मार्गदर्शन मिला । इस प्रकार भारतीय साहित्य के स्वर्णिम पृष्ठ अहिंसा को आधार बनाकर लिखे गए ।

आभार प्रदर्शन

श्री शिखरचन्द जैन, विवेक विहार दिल्ली साहित्य समाज और धर्म के लिए समर्पित कार्यकर्ता और सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी थे। पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज तथा उनके संघ के प्रति आपकी विशेष भक्ति थी। कई वर्षों से चातुर्मास के समय पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के उपदेशों से प्रभावित होकर उन्होंने "श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति'' स्थापित की थी। इस समिति द्वारा अनेक बहुमूल्य ग्रन्थरत्न प्रकाशित हो चुके है । उन्होंने इस वर्ष देवाधिदेव भगवान् महावीर के जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष की पूर्णता के उपलक्ष्य में यह निश्चय किया था कि "अहिंसा'' पर आधारित श्रेष्ठतम कृति पर वे 51,000-00 रुपये का एक पुरस्कार देंगे । इसी विज्ञप्ति के आधार पर इस पुस्तक की रचना की गई है। अहिंसा की परिधि बहुत विशाल है, फिर भी अधिकांश विषयों को पुस्तक में समेटने का प्रयास किया है । स्व. श्री शिखर चन्द्र जैन के प्रति हम आभारी हैं, जिन्होंने इस प्रकार की कृति का निर्माण करने की भावना मन में जगाई और उस भावना को मूर्त रूप दे सका।

यह कृति श्रद्धा सुमन के रूप में उन्हें समर्पित है। पुस्तक के प्रकाशन में श्री प्रवीण जैन तथा उनके समस्त परिवार जनों ने तत्परता दिखाई, एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

रमेश चन्द जैन

विषयानुक्रमणिका

108 आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

अहिंसा दर्शन

अहिंसा का वास्तविक अर्थ:- अहिंसा प्रेम का समुद्र है । अहिंसा का अर्थ है वैरभाव का सर्वथा त्याग । अहिंसा में दृढ़ता, वीरता, निश्छलता होनी चाहिए। बाहर में तो किसी भी छोटे या बड़े जीव को अपने मन से या वचन से या काय से किसी प्रकार की हानि या पीड़ा नहीं पहुँचाना या उसका दिल *न दुखाना अहिंसा है और अन्तरंग में राग द्वेष परिणामों से निवृत्त होकर* साम्यभाव में स्थित होना अहिंसा है । बाह्य अहिंसा को व्यवहार और आन्तरिक अहिंसा को निश्चय कहते हैं । अहिंसा परम धर्म है । जल, थल आदि में सर्वत्र ही क्षुद्र जीव का सद्भाव होने के कारण यद्यपि बाह्य में पूर्ण अहिंसा का पालन करना असम्भव है, पर यदि अन्तरङ्ग में साम्यता और बाहर में पूरा पूरा यत्नाचार रखने में प्रमाद न किया जाय तो बाह्य जीव के मरने पर भी साधक अहिंसक ही रहता है ।[1]

स्थूल वध विरमण :- मन, वचन, काय के संकल्प से और कृत, कारित अनुमोदना से त्रस जीवों (द्वि इन्द्रिय, त्रि इन्द्रिय चतुरिन्द्रिय तथा पञ्च इन्द्रिय जीवो) को जो नहीं मारता है, उस क्रिया को स्थूल हिंसा से विरक्त होना या अहिसाणुव्रत कहते हैं ।[2]

अहिंसा महाव्रत:- सब देश और सब काल में मन, वचन, काय से एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय प्राणियों के प्राण पाँच प्रकार के पापों से डरने वाले को नही घातना चाहिए । यह अहिंसा महाव्रत है ।[3]

सर्वत्र जीव होते हुए भी अहिंसा का पालन कैसे होता है :-

प्रश्न :- जीवों से भरे इस जगत् में साधु किस प्रकार गमन करे, कैसे ठहरे, कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे भोजन करे, कैसे बोले, कैसे पाप से बचे ?

---

[1] जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश-भाग 1, पृ0 215

[2] रत्नकरण्ड श्रावकाचार-53

[3] मूलाचार 289

उत्तर :- यत्नाचार से गमन करे, यत्न से तिष्ठे, पीछी से शोधकर यत्न से बैठे, शोधकर रात्रि में यत्न से सोवे, यत्न से दोषरहित आहार करे, भाषासमितिपूर्वक यत्न से बोले । इस प्रकार पाप से नहीं बँध सकता ।[4]

प्रश्न:- .जल में, स्थल में और आकाश में सब जगह जन्तु ही जन्तु हैं। इस जन्तुमय जगत् में भिक्षु अहिंसक कैसे रह सकता है ?

उत्तर :- ज्ञानध्यानपरायण अप्रमत्त भिक्षु को मात्र प्राणवियोग से हिंसा नहीं होती। जीव भी सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार के होते हैं । उनमें जो सूक्ष्म हैं, वे तो न किसी से रुकते हैं और न किसी को रोकते हैं, अत: उनकी तो हिंसा होती नहीं है । जो स्थूल जीव हैं उनकी यथाशक्ति रक्षा की जाती है । जिनकी हिंसा को रोकना शक्य है, उसे प्रयत्नपूर्वक रोकने वाले संयत के हिंसा कैसे हो सकती है ?[5]

निश्चय अहिंसा की कथंचित् प्रधानता :- आत्मा ही हिंसा है और वह ही अहिंसा है । अप्रमत्त को अहिंसक और प्रमत्त को हिंसक कहते हैं । यदि रागद्वेश रहित आत्मा को भी बाह्य वस्तु मात्र के सम्बन्ध से बन्ध होगा तो जगत् में कोई अहिंसक नहीं है, ऐसा मानना पड़ेगा, क्योंकि मुनिजन भी वायुकायिक जीवों के वध के हेतु हैं ।[6] रागादिक का नहीं उत्पन्न होना अहिंसा है तथा रागादिक की उत्पत्ति होना हिंसा है ।[7] अहिंसा स्वंय होती है और हिंसा भी स्वयं होती है। यहाँ ये दोनो पराधीन नहीं हैं जो प्रमादरहित है वह अहिंसक है और जो प्रमादयुक्त है, वह सदा हिंसक है ।[8]

अहिंसा जीव के शुद्ध भावों के बिना सम्भव नहीं है :- धर्म अहिंसा लक्षण वाला है ओर वह अहिंसा जीव के शुद्ध भावो के बिना सम्भव नहीं ।

बाह्य प्राणियो का मरण हो या न हो; प्रयत्नरूप परिणाम के बिना सावद्य परिहार नही होता है ।[9] अशुद्धोपयोग का सद्भाव जिनके पाया जाता है,

---

[4] भगवती आराधना 1012-1013

[5] राजवार्तिक 7/13/12/12/541/5

[6] भगवती अराधना 803, 806

[7] सर्वार्थसिद्धि 7/22/263/10

[8] धवला पु0 14/5,692/5/90

[9] नियमसार-ता0वृ0 56

उसके हिंसा के सद्भाव की प्रसिद्धि सुनिश्चित है और इस प्रकार जो अशुद्धोपयोग के बिना होता है, ऐसे प्रयत आचार से होने वाला अशुद्धोपयोग का असद्भाव जिसके पाया जाता है, उसके परप्राणों के व्यपरोपण व सद्भाव में भी बन्ध की अप्रसिद्धि होने से हिंसा के सद्भाव की प्रसिद्धि सुनिश्चित है । अतः अन्तरंग छेद ही विशेष बलवान् है, बहिरंग नहीं । अशुद्धोपयोग का असद्भाव अहिंसा है, क्योंकि उसे निर्लेपत्व की प्रसिद्धि है ।[10] जो यह मानता है कि अपने द्वारा मैं परजीवों को सुखी दुखी: करता हूँ, वह मूढ़ है और जो इसके विपरीत है, वह ज्ञानी है ।[11]

अहिंसा अपनी रक्षा के लिए है, पर की रक्षा के लिए नहीं :- आगम में जो स्व. और अन्य प्राणियों की अहिंसा का सिद्धान्त माना गया है, वह केवल स्वात्म रक्षा के लिए ही है, पर के लिए नहीं ।[12]

परिणाम से ही बन्ध है और परिणाम से ही मोक्ष है :- अहिंसाणुव्रत को निर्मल करने की इच्छा रखने वाला श्रावक कषाय, निद्रा, मोह ओर इन्द्रियों के विधिपूर्वक निग्रह करने से पाप रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य की प्रभा के समान तथा नित्य है उदय जिसका, देसी दया करो । यदि परिणाम ही है एकमात्र प्रधान कारण जिनका ऐसे बन्ध और मोक्ष न होते अर्थात् यदि बन्ध और मोक्ष के प्रधान कारण परिणाम या भाव न होते तो चारों तरफ से जीवों के द्वारा भरे हुए संसार में कहीं पर भी चेष्टा करने वाला कोई भी मुमुक्षु पुरुष मोक्ष प्राप्त न कर पाता ।[13]

भाव हिंसा और द्रव्य हिंसा :- उपर्युक्त विवरण से निष्कर्ष निकलता है कि अपने मन, वाणी व शरीर के द्वारा जान-बूझकर तथा असावधानी से भी किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप सें किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाना और उसी भावना के अनुरूप अपने नित्यकर्म बहुत सावधानीपूर्वक करना अहिंसा है । हिसा के मुख्यतः दो भेद है - (1) भाव हिंसा और (2) द्रव्य हिसा ।

---

[10] प्रवचनसार, त०प्र० 217-218

[11] समयसार 253

[12] पञ्चाध्यायी उत्तरार्द्ध 756

[13] सागार धर्मामृत 4/22-23

प्रकार से कष्ट देने का विचार आना भाव हिंसा है ।

द्रव्य हिंसा :- अपनी वाणी व कार्य से जानबूझकर तथा असावधानी से भी स्वयं को अन्य किसी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचाना द्रव्य हिंसा है ।

इन दोनों ही प्रकार की हिंसा से बचना चाहिए ।

यत्नाचारी के हिंसा नहीं :- योग्य आचरण वाले अर्थात् यत्नाचार पूर्वक सावधानी से कार्य करने वाले सज्जन पुरुष को रागादि रूप परिणामों के उदय हुए बिना प्राणों का घात होने मात्र से निश्चय करके हिंसा नहीं लगती है ।[14]

सरागी को प्राणघात के बिना भी हिंसा लगती है :- रागादिकों के वश में प्रवर्तित प्रमाद अवस्था में जीव मर जाय अथवा नहीं मरे, नियम से हिंसा आगे दौड़ती है ।[15] क्योंकि आत्मा कषायसहित होता हुआ पहले अपने ही द्वारा अपने आपको मार डालता है, पीछे दूसरे जीवों की हिंसा हो अथवा न हो ।[16]

प्रमादयोग में नियम से हिंसा होती है :- हिंसा से विरक्त न होना तथा हिसा में परिरणमन करना हिंसा कहलाती है । इस लिए प्रमादयोग में नियम से प्राणों का घात होता है ।[17]

हिंसा के निमित्तों को हटाना चाहिए:- निश्चय से आत्मा के सूक्ष्म भी हिंसा, जिसमें परवस्तु कारण हो, ऐसी नहीं होती है, तो भी परिणामों की विशुद्धि के लिए हिंसा के आयतनों - हिंसा के निमित्त कारणों का त्याग करना चाहिए ।[18] जो निश्चय नय को नहीं समझता हुआ निश्चय से निश्चय तत्त्व का ही आश्रय करता है, स्वीकार करता है, वह मूर्ख बाह्य क्रिया रूप चारित्र में आलसी-प्रमादी होता हुआ क्रिया रूप चरित्र को - व्यवहार चारित्र को नष्ट कर देता है ।[19]

---

[14] पुरुषार्थसिद्ध्युपाय-45

[15] वही 43

[16] वही 47

[17] वही 48

[18] वही 49

[19] वहीं 50

हिंसा वास्तव में निज परिणामों की अशुद्धि में ही है, बाह्य पदार्थों में नहीं है । जो सर्वथा निश्चय नय का अवलम्बन कर बाह्चारित्र - व्यवहार चारित्र की परवाह नहीं करते है, जिनका यह सिद्धान्त है कि बाह्य क्रियाओ में क्या रखा है, अन्तरंग परिणामों को ही ठीक रखना चाहिए । उन लोगों को निश्चय नय का स्वरूप नहीं मालूम है । बिना बाह्य क्रियाओं का विचार किए परिणाम ठीक नहीं रह सकते, क्योंकि परिणामों की शुद्धि अशुद्धि बाह्य क्रियाओं के निमित्त से होती है, इसिलिए बाह्य प्रवत्ति का विचार रखना नितान्त आवश्यक है । जो पुरुष दौड़कर बिना देखे चलने लगे, बिना देखे भक्ष्याभक्ष्य खाने लगे, बिना छना हुआ जल पीने लगे, बिना देखे वस्तुओं को उठाने लगे, और रखने लगे । फिर यह कहे कि बाह्य प्रवृत्ति मेरी कैसी भी रहो, परिणामों को मैं ठीक रखूँगा तो मुझे हिंसा नहीं लगेगी, ऐसा कहने वाला अविवेकी है, वह परिणामों को कभी सम्हाल नहीं सकता । बिना बाह्य प्रवृत्ति में जीव रक्षा का विचार किए जीव हिंसा से कभी छूट नहीं सकता, इसलिए परिणामों की विशुद्धि के लिए बाह्य प्रवृत्ति को संयमित बनाने की आवश्यक्ता है । जो केवल निश्चय नय का अवलम्बन करके बाह्य प्रवृत्ति का विचार नही करते हैं । वे निश्चयनय के स्वरूप से अपरिचित हैं, क्योंकि नयवाद अनेकान्त रूप है, वह स्याद्वाद के नाम से प्रसिद्ध है । यदि उसका ग्रहण एकान्त रूप से किया जायगा तो वस्तु सिद्धि नहीं हो सकती । इसलिए निश्चय और व्यवहार दोनों की शुद्धि आवश्यक है । परिणामों की विशुद्धता का पूरा लक्ष्य रखना आवश्यक है और बाह्य प्रवृत्ति को भी निर्दोष रखना आवश्यक है, किसी एक के छोड़ देने से कोई भी सिद्ध नहीं हो सकता ।[20]

हिंसा और अहिंसा के पात्र :- कोई जीव हिंसा को नहीं करके भी हिंसा के फल का भोक्ता होता है । दूसरा जीव हिंसा करके भी हिंसा के फल का भाजन नहीं होता है ।[21] जैसे धीवर मछली को बिना पकड़े ही अशुभ परिणाम से पाप का भागी बन जाता है । कृपक कृषि कार्य करते हुए अनेक जीवों का हनन करता हुआ भी हिंसा के फल को नहीं भोगता है क्योंकि उसका परिणाम निर्मल होता है ।

---

[20] पुरुषार्थ सिद्धध्युपाय - 50 की प0 मक्खनलाल कृत टीका

[21] वहीं 51

अल्प हिंसा भी बड़ा पाप एवं बड़ी हिंसा भी अल्प पाप :- किसी को थोड़ी भी हिंसा समय पर उदय काल में बहुत फल को देती है । किसी जीव को बहुत बड़ी हुई भी हिंसा फल काल में थोड़ा फल देने वाली हो जाती है।[22] जो तत्त्वार्थ को नहीं समझता है, ऐसे पुरुष की अल्प हिंसा भी काल प्राप्त करके बहुत फल देती है । कोई जीव परिणाम में तो मन्द कषाय रखता है, परन्तु बाह्य प्रवृत्ति में उसके द्वारा हिंसा अधिक हो जाती है, वैसी अवस्था में उसके जो कर्मबन्ध होता है, उसमें रसदान शक्ति वैसी ही मन्द या तीव्र पड़ जाती है और उदयकाल में वैसी ही कमती या अधिक फल देती है । कोई जीव परिणाम में तो मन्द कषाय रखता है, परन्तु बाह्य प्रवृत्ति में उसके द्वारा हिंसा अधिक हो जाती है, वैसी अवस्था में जो उसके कर्मबन्ध होता है, वह मन्द रस को लेकर ही होता है, वह जब उदय में आता है तो थोड़े फल को देकर ही खिर जाता है । इसका मूल कारण यही है कि जिस समय जिस जीव के जैसे परिणाम तीव्र संक्लेशमय या मन्द संक्लेशमय होते हैं। उसके जो कर्मबन्ध होता है उसमें रसदान शक्ति वैसी ही मन्द या तीव्र पड़ जाती है और उदयकाल में वैसी ही कमती या अधिक फल देती है । बाह्य कारण निमित्त मात्र है । परिणामों की सरागता या वीतरागता ही हिंसा या अहिंसा रूप फल की दात्री है ।

एक हिंसा एक के लिए तीव्र तथा एक के लिए मन्द :- दो पुरुषों के द्वारा साथ साथ की गई भी हिंसा फल काल प्राप्त होने पर आत्मा में विचित्रता को प्राप्त होती है । वहीं हिंसा एक जीव को तीव्र फल देती है । वहीं हिंसा दूसरे जीव को मन्द फल देती है ।[23] तात्पर्य यह है कि यदि दो पुरुष मिलकर बाह्य हिंसा करते है तो उनमें से जिसके परिणाम तीव्र कषाय रूप होते हैं, उसे उदय काल में तीव्र फल को भोगना पड़ेगा और जिसके मन्दकषाय रहते हैं, उसे उदयकाल में मन्दफल भोगना पड़ेगा ।[24]

हिंसा पहले, वर्तमान तथा भविष्य में भी फलदात्री :- कोई हिंसा पहले ही फल देती है । कोई हिसा करते करते फल देती है । कोई हिंसा कर चुकने

---

[22] पुरुषार्थसिद्ध्युपाय 52

[23] वहीं 53

[24] वहीं पं0 टोडरमल टीका

पर फल देती है और कोई हिंसा आरम्भ करके बिना किए भी फल देती है । इस प्रकार भावों के अनुसार हिंसा फल देती है ।[25] किसी जीव ने हिंसा का विचार तो कर लिया, परन्तु अवसर न मिलने के कारण हिंसा न कर सका । अपने विचार से जो कर्म बन्ध किया, वह उदय में आ गया । बाद में इच्छित हिंसा का अवसर मिलने पर वह भी कर डाली, ऐसी हालत में हिंसा करने से पहले ही उसका फल भोग लिया जाता है । किसी ने हिंसा का विचार किया, इस विचार से जो कर्म बन्ध किया, वह जिस समय उदय में आया, उसी समय वह इच्छित हिंसा को करने को भी समर्थ हो सका । इस हालत में हिसा करते समय ही उस हिंसा का फल भोग लिया गया । किसी ने हिंसा का आरम्भ किया, परन्तु किसी कारणवश पीछे हिंसा को नहीं कर सका, प्रारम्भ जनित कर्म बन्ध का फल उसे जरूर भोगना पड़ेगा । सारांश यह है कि कषाय भावों के अनुसार ही हिंसा का फल भोगना पड़ता है।[26]

हिंसा का कर्ता एक फल भोक्ता अनेक :- एक जीव हिंसा करता है, फल के भागी बहुत होते है । बहुत जीव हिंसा करते हैं, हिंसा के फल का भागी एक होता है ।[27] जैसे - एक पुरुष के कुटुम्ब में दस पुरुष रहते हों, सभी की इच्छा और प्रेरणा से उनमें से एक पुरुष यदि चोरी करने या जुआ खेलने जाता है तो उसके उस दुष्कृत्य फल सबों को भोगना पड़ता है । यह बात बहुत प्रत्यक्ष देखी जाती है कि किसी कुटुम्ब में यदि सभी दुष्ट एवं व्यसनी पुरुष रहते हों तो उनमें से किसी एक के अपराध पर सभी पकड़े जाते हैं, इसलिये यह बात बहुत सुसंगत है कि एक हिंसा करता है, फल अनेक पाते है ।

किसी दुष्ट राजा ने निरपराध हिरण को मार डाला। उसके साथियों ने हृदय से प्रशंसा की तो उस हिंसा कृत्य की सराहना करने वाले भी हिंसा के फल भोगने वाले है, क्योंकि उनके परिणाम भी हिंसा रूप हैं । इसलिए उनके भी अशुभ कर्म बँधेगा और फलकाल मे राजा के समान उन्हें भी दु:ख उठाना पड़ेगा ।

---

[25] पुरुषार्थ सिद्धयुपाय 54

[26] पुरुषार्थ सिद्धयुपाय - पं० टोडरमल टीका

[27] पुरुषार्थ सिद्धयुपाय 55

कहीं अनेक हिंसा करते हैं, फल एक को मिलता है । जैसे किसी राजा की आज्ञा हो कि अमुक पुरुष को मार डालो, परन्तु सैनिक लोगों की इच्छा नहीं है कि वे उसे मारें, फिर भी राजा के तीव्र अनुरोध एवं राजदण्ड के भय से वे उसे मारने में प्रवृत्त होते हैं, इसलिए उस हिंसा का फल आज्ञा देने वाले राजा को ही मिलेगा, सैनिक लोग तो बिना इच्छा के राजाज्ञा से दुष्ट कर्म मे प्रेरित होकर प्रवृत्त हुए हैं, वे उस हिंसा के भागीदार नहीं होंगे । इससे यह बात सिद्ध होती है कि अनेक हिंसा करते हैं, परन्तु उसका फल एक को मिलता है ।

कर्ता भेद से हिंसा हिंसा भी है और अहिंसा भी :- किसी जीव की तो हिसा फलकाल मे एक ही हिंसा रूप फल को देती है । दूसरे जीव की वही हिंसा बड़े भारी अहिंसा रूप फल को देती है ।[28] जैसे - किसी वन मे मुनिराज ध्यान लगाकर बैठे हुए थे कि महाक्रूर परिणामी सिंह उनका भक्षण करने के लिए आया । एक कोमल परिणामी शूकर उनकी रक्षा के लिए तत्पर हो गया । दोनों लड़कर मर गए । सिंह अपने क्रूर परिणामों के कारण नरक गया और शूकर हिंसा को करते हुए भी शुभ भावों से स्वर्ग गया ।

हिंसा, अहिंसा का फल :- किसी को तो अहिंसा उदयकाल मे हिसा के फल को देती है और किसी को हिंसा अहिंसा के फल को देती है और फल को नहीं ।[29] जैसे किसी जीव ने किसी जीव के घात करने अथवा उसे हानि पहुँचाने का विचार किया और उसी प्रकार उद्योग करना आरम्भ किया, परन्तु दूसरा जीव अपने पुण्योदय से बच गया । बुरे की जगह उसका भला हो गया तो ऐसी अवस्था में हिंसा नहीं होने पर भी घात करने वाले की चेष्टा करने वाले को हिंसा का ही फल मिलेगा तथा किसी पुरुष ने एक चिड़िया के बच्चे को सड़क के किनारे पड़ा हुआ देखकर सुरक्षित रहने के अभिप्राय से एक घोंसले में रख दिया, परन्तु वहां से उसे एक पक्षी पकड़कर ले गया और उसे मार डाला अथवा किसी रोगी को वैद्य ने अच्छा करने के अभिप्राय से औषधि दी, परन्तु उस औषधि से मर गया तो वैसी अवस्था में उस वैद्य को एवं घौंसले में बच्चे को रखने वाले पुरुष को हिंसा होने पर भी अहिसा का

---

[28] पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 56

[29] वही 57

ही फल मिलेगा । कारण, उनके परिणामों में हिंसा का भाव किंचिन्मात्र भी नहीं है, प्रत्युत् उनके भाव जीव को बचाने के हैं ।

चार प्रकार की हिंसा :- हिंसा चार प्रकार की होती - (1) संकल्पी (2) विरोधी (3) आरम्भी (4) उद्योगी ।

1- संकल्पी हिंसा :- जो हिंसा जानबूझकर सङ्कल्प करके, योजना बनाकर की जाती है । जैसे - मांसाहार के लिए पशुपक्षियों का वध करना । देवी देवता को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की बलि देना, शिकार खेलना, मछली पकड़ना या मारना इत्यादि । गृहस्थ संकल्पी हिंसा का पूर्ण त्यागी होता है ।

2- विरोधी हिंसा :- शत्रु का प्रतीकार करने के लिए जो हिंसा की जाती है।

3- आरम्भी हिंसा :- चलने फिरने, भोजन बनाने, कपड़े धोने आदि के निमित्त से जो हिंसा होती है, वह आरम्भी हिंसा कहलाती है ।

4- उद्योगी हिंसा:- गृहस्थ से व्यापारादि कार्य में जो हिंसा हो जाती है, वह उद्योगी हिंसा है ।

गृहस्थ को प्रयत्न करना चाहिए कि आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसा कम से कम हो ।

मानसिक हिंसा और उससे बचने के उपाय :- क्रोध करने वाला हिंसक है। भगवती आराधना में कहा गया है कि क्रोध के कारण मनुष्य लोगों की हिंसा करता है, उनके सम्बन्ध में झूठ बोलता है, चोरी करता है । अतः क्रोध करने वाले में हिंसा, झूठ आदि सब दोष होते हैं ।[30]

क्रोधी की स्थिति :- जो क्रोध से ग्रस्त होता है उसका रंग नीला पड़ जाता है, कान्ति नष्ट हो जाती है, अरति रूपी आग से सन्तप्त होता है । ठण्ड में भी उसे प्यास सताती है और पिशाच से गृहीत की तरह क्रोध से काँपता है।[31] भ्रकुटी चढ़ने से मस्तक पर तीन रेखायें पड़ जाती हैं, लाल-लाल निश्चल आँखें बाहर निकल जाती हैं । इस तरह क्रोध मनुष्य के लिए राक्षस के समान हो जाता हैं ।[32] जैसे कोई पुरुष रुष्ट होकर दूसरे का घात करने के लिए तपा

---

[30] शिवार्य · भगवती आराधना-1367

[31] वही 1354

[32] वही 1355

लोहा उठाता है । ऐसा करने से दूसरा उससे जले या न जले, पहले वह स्वयं जलता है । उसी तरह पिघले हुए लोहे की तरह क्रोध से पहले वह स्वयं जलता है । दूसरे को वह दुःखी करे या न करे ।[33] जैसे आग ईंधन को नष्ट करके पीछे स्वयं बुझ जाती है, उसी प्रकार क्रोध पहले क्रोधी मनुष्य को नष्ट करके पीछे निराधार होने से स्वयं नष्ट हो जाता है। क्रोध शत्रु का जो धर्म है- अपकार करना, उसे करता है। अथवा क्रोध शत्रु का उपकार करता है, क्योंकि क्रोध की आग में जलते हुए देखकर शत्रु प्रसन्न होते हैं, वे सदा इस प्रयत्न में लगे रहते है कि कैसे इसे क्रोध उत्पन्न करें। क्रोध अपने और बन्धु-बान्धवों को शोक में डालता है। अपने ही घर में अपना तिरस्कार करता है। परवश मनुष्य का नाश करता है।[34]

क्रोधी गुणों को नहीं देखता है :- क्रोधी जिस पर क्रोध करता है, उसके गुणों को नहीं देखता, उसके गुणों की भी निन्दा करता है। जो कहने योग्य नहीं है, वह भी कहता है। इस प्रकार क्रोध से रौद्र हृदय मनुष्य का स्वभाव नारकी जैसा हो जाता है।[35]

क्रोध उपार्जित पुण्य को जला दता है :- जिस प्रकार चिनगारी एक वर्ष के श्रम से प्राप्त खलिहान में आए किसान के धान्य को जला देती है, उसी प्रकार क्रोध रूपी आग श्रमण के जीवन भर में उपार्जित पुरुष रूपी धन को जला देती है।[36]

क्रोध करने पर यति भी निस्सार हो जाता है:- जैसे उग्र विष वाले सर्प को घास के एक तिनके से मारने पर वह अत्यन्त रोष में आकर उस तिनके पर अपना विष वमन कर तत्काल विषरहित हो जाता है, उसी प्रकार यति भी क्रोध करके निस्सार हो जाता है।[37]

---

[33] वही 1356-1357

[34] शिवार्य . भगवती आराधना 1358-1359

[35] वही 1360

[36] वही 1361

[37] वही 1362

क्रोध करने वाला विरूप हो जाता है:- सुरूप पुरुष भी क्रोध से रूप के नष्ट हो जाने पर बन्दर के समान लाल लाल मुख वाला विरूप हो जाता है। एक जन्म में क्रोध करने से हजारों जन्मों में कुरूप होता है।[38]

क्रोध करने से प्रिय व्यक्ति भी द्वेष का पात्र होता है:- क्रोध करने से अत्यन्त प्रिय व्यक्ति भी मुहूर्त मात्र में ही द्वेष का पात्र होता है। क्रोधी मनुष्य के अनुचित काम करने से उसका फैला हुआ यश भी नष्ट हो जाता है।[39] क्रोधी मनुष्य अपने निकट सम्बन्धियों को भी असंम्बन्धी अथवा शत्रु बना लेता है, उनको मारता है या उनके द्वारा मारा जाता है अथवा स्वयं मर जाता है। पूजनीय मनुष्य भी क्रोध करने से तत्काल अपमानित होता है। क्रोधी का जगत् में प्रसिद्ध भी माहात्म्य नष्ट हो जाता है।[40]

क्रोध अग्नि सदृश है:- क्रोध रूपी आग मनुष्यों के धर्मवन को जलाती है। यह क्रोध रूपी आग अज्ञान रूपी काष्ठ से उत्पन्न होती है। अपमान रूपी वायु उसे भड़काती है। कठोर वचन रूपी उसके बड़े स्फुलिंग है। हिंसा उसकी शिखा है और अत्यन्त उठा वैर उसका धूम है।[41] जीवों के यम, नियम तथा प्रशम ही जिसका जीवन है, ऐसे उत्कृष्ट संयम रूपी उपवन को प्रज्वलित हुई क्रोध रूपी अग्नि भस्म का देती है। यह क्रोध रूपी अग्नि प्रकट होने पर सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि अमूल्य रत्नों के समूहों से संचित किए हुए गुणरूपी भण्डार को भी दग्ध कर देती है।[42]

क्रोध धर्म रूपी शरीर को जलाता है:- चरित्र और विशिष्ट ज्ञान से बढ़ाया हुआ तथा तप, स्वाध्याय और संयम का आधार पुरुषों का धर्म रूपी शरीर क्रोध रूपी अग्नि से भस्म हो जाता है।[43]

क्रोधान्ध व्यक्ति अपने समीचीन. परिणामों का घात करता है:- क्रोध से अन्धा हुआ विवेक रहित यह लोक प्रथम तो अपने को निश्चय करके जला

---

[38] वही 1363

[39] वही 1364

[40] वहीं 1365-1366

[41] भगवती आराधना विजयोदया टीका में उद्धृत।

[42] ज्ञानार्णव 19/1-2

[43] वही 19/15

देता है. तत्पश्चात् दूसरों को जलावे अथवा नहीं जलावे, पहिले अपने समीचीन परिणामों का घात तो कर ही लेता है।[44]

क्रोध को जीतने का उपाय :- यदि दूसरा व्यक्ति मेरे में अविद्यमान दोष को कहता है तो वह दोष मुझमें नहीं है, अतः उसे क्षमा करना चाहिए, क्योंकि अविद्यमान दोष को कहने से मेरी क्या हानि हुई? अथवा निन्दा करने वाले पर दया करना चाहिए - बेचारा छूठ बोलकर अनेक दु:ख देने वाला पाप भार एकत्रित करता है। मेरे दोषों से उसमें दोष उत्पन्न नहीं होते और न मेरे गुणों से ही उसका कोई लाभ होता है। अत: यह व्यर्थ ही कर्मबन्ध करता है।[45] यदि मेरे में विद्यमान दोष को कहता है, तब भी क्षमा करना चाहिए, क्योंकि वह जिस दोष को कहता है, वह मेरे में है। वह झूठ नहीं कहता। विद्यमान दोषों को दूसरे यदि न कहें तो वे नष्ट हो जाते हैं, ऐसी बात भी नहीं, ऐसा विचार करना चाहिए।[46] इसने मुझे अपशब्द ही कहे हैं, मारा तो नहीं है, इस प्रकार उसके न मारने के गुण को चित्त में स्थापित करके अपशब्द कहने से मेरा क्या नष्ट हुआ, अत: क्षमा करना चाहिए इसने विपत्ति को दूर करने में समर्थ और सुख को देने वाले मेरे धर्म का नाश नहीं किया।[47] पाप के आस्रव के द्वार को न जानते हुए मैंने प्रमादवश जो पूर्व में पापकर्म किया था, जो दूसरों के दु:ख का कारण था, वह आज चला गया। आज मैं उस ऋण से मुक्त हो गया, ऐसा विचार कर क्रोध को दूर करना चाहिए।[48] क्रोध रूपी अग्नि को शान्त करने के लिए क्षमा ही अद्वितीय नदी है, क्षमा से ही क्रोधाग्नि बुझती है तथा क्षमा ही उत्कृष्ट संयम रूपी बाग की रक्षा करने के लिए अतिशय दृढ़ बाड़ है।[49]

इस लोक और परलोक विरोधी क्रोध को मुनिगण ही जीतते हैं; क्योंकि वे क्रोध के कारण प्राप्त होने पर इस प्रकार भावना करते है:-

---

[44] वही 19/6

[45] भगवती आराधना 1415

[46] वही 1416

[47] वही 1417

[48] वही 1419

[49] ज्ञानार्णव 19/12

मैं कर्म से पीड़ित हूँ, कर्मोदय से मुझमें कोई दोष उत्पन्न हुआ है। उस दोष को अभी कोई प्रकट करे और आत्मानुभव में स्थापित करे, वही मेरा अकृत्रिम मित्र है।[50] जो कोई अपने पुण्य का क्षय करके मेरे दोषों को निकालता है, उससे यदि मैं रोष करूँ तो मेरे समान नीच या पापी कौन है?[51]

यदि कोई अपने को दुवर्चन कहे तो मुनि महाराज ऐसा विचार करते हैं इसने दुर्वचन ही तो कहे हैं, मेरा घात तो नहीं किया और यदि कोई घात भी करे तो ऐसा विचारते हैं कि इसने मुझे केवल मारा ही तो है, काटकर दो खण्ड तो नहीं किए, यदि कोई काटने ही लगे तो मुनि महाराज विचारते हैं कि यह मुझे मारता है, मेरा धर्म तो नष्ट नहीं करता मेरा धर्म तो मेरे साथ ही रहेगा अथवा ऐसा विचार करते हैं कि यह मेरा हितैषी है; क्योंकि मैं चैतन्यस्वरूप शुद्धात्मा इस शरीर रूपी कारागार में कैद हूँ। इस शरीर को तोड़कर मुझे कैदखाने से छुड़ाता है, अत: यह मेरा बड़ा उपकार कर रहा है।[52] जो मोक्षाभिलाषी हैं, उन्हें इस लोक में बड़े-बड़े विघ्न होने सम्भव हैं, वे ही विघ्न यदि मेरे आवें तो इसमें आश्चर्य क्या हुआ? इस कारण अब मैं समभाव का आश्रय करता हूँ, मेरा किसी पर भी राग-द्वेष नहीं है।[53] यदि मैं क्रोध करूँ तो मुझे देखकर अन्याय तपस्वी मुनि अपने शीलस्वभाव से च्युत हो जाँय, तो फिर इस लोक में मेरा जन्म केवल पर के अपकारार्थ व क्लेश के लिए ही हुआ, इस कारण मुझे क्रोध करना उचित नहीं है।[54] मैंने पूर्व जन्म जो कुछ बुरे भले कर्म किए हैं, उनका फल मुझे ही भोगना पड़ेगा। जो कोई मुझे दु:ख देने के लिए तत्पर हैं, वे तो केवल बाह्य निमित्त हैं, ऐसा मैं मानता हूँ, तब इनसे क्रोध क्यों करना चाहिए? मैं मुनि हूँ, तत्त्वज्ञानी हूँ, यदि क्रोधादिक से मेरा भी चित्त बिगड़ जायगा तो फिर अज्ञानी और तत्त्वज्ञानी में विशेष ही क्या रहा? मैं भी अज्ञानी के समान हुआ, इस प्रकार विचार करके क्रोधादिक से नहीं परिणमते।[55]

---

[50] **ज्ञानार्णव 19/14**

[51] **वही 19/15**

[52] **वही 19/16**

[53] **ज्ञानार्णव 19/17**

[54] **वही 19/18**

[55] **वही 19/19-20**

हे आत्मन्! तूने पर्व जन्म में असाता कर्म बाँधा था, उसी का फल यह दुर्वाचनादिक है। अतः प्रतीकार रहित समझकर तू आगामी दुःख की शान्ति के लिए स्वस्थ चित्त से सहन कर।[56]

यदि कोई मेरा अनेक प्रकार के बध-बन्धनादि प्रयोगों से इलाज नहीं करे तो मेरे पूर्वजन्मों के संचित किए असाता कर्मरूपी रोग का नाश कैसे हो?[57] जो ये दुर्वचन कहने वाले व बध-बन्धनादि करने वाले शत्रु उत्पन्न हुए हैं, वे मेरे भेदज्ञान पूर्वक शमभाव की परीक्षा करने आए हैं। यदि मैं प्रशंमभाव की मर्यादा का उल्लंघन कर बध-बन्धनादि करने वाले शत्रु से क्रोध करूँगा तो इस ज्ञान रूपी नेत्र का उपयोग कौन से काल में होगा? इस शत्रु ने मेरा अनेक प्रकार के उपायों से तिरस्कार करके जो तीव्र यातना दी, इससे बड़ा भारी लाभ हुआ कि बिना यत्न के ही मेरे पाप कर्मो की निर्जरा हो गई।[58]

मुनिजन ऐसा विचार करते हैं - यदि दुर्जन मेरे दोषों की घोषणा करके सुखी होता है तो हो, यदि धन का अभिलाषी पुरुष मेरा सर्वस्व ग्रहण करके सुखी होता हो तो हो, यदि शत्रु मेरे जीवन को ग्रहण करके सुखी होता है तो हो, यदि दूसरा कोई मेरे स्थान को ग्रहण करके सुखी होता हो तो हो और जो मध्यस्थ है, वह ऐसा ही मध्यस्थ बना रहे। यह सम्पूर्ण जगत् अतिशय सुख का अनुभव करे। मेरे निमित्त से किसी भी संसारी प्राणी को किसी भी प्रकार से दुःख न हो, इस प्रकार मैं उच्च स्वर से कहता हूँ।

हे मन! तुम क्या पूरे तीनों लोकों में चूड़ामणि के समान श्रेष्ठ ऐसे वीतराग जिन को नहीं जानते हो? क्या तुमने वीतराग कथित धर्म का आश्रय नहीं लिया है? क्या जनसमूह जड़ अर्थात् अज्ञानी नहीं है? जिससे कि तुम मिथ्यादृष्टि एवं अज्ञानी दुष्ट पुरुषों के द्वारा किए गए थोड़े से उपद्रव से विचलित होकर बाधा समझते हो, जो कि कर्मास्रव की कारण है।[59]

---

[56] वही 19/22

[57] वही 19/26

[58] वही 19/27-29

[59] पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका 1/85-86

महानता के गुण

अपने साधनाकाल में महावीर एक दिन ऐसे निर्जन स्थान में ठहरे, जहां एक यक्ष का वास था। वे कार्योत्सर्ग मुद्रा में ध्यान मग्न हो गये। रात को यक्ष आया तो अपने स्थान पर एक अपरिचित व्यक्ति को देख कर आग बबूला हो गया। बड़े जोर से दहाड़ा। सारी वनस्थली गूँज उठी। वन्यजन्तु भयभीत होकर इधर-उधर दौड़ने लगे, किन्तु महावीर का ध्यान भंग नहीं हुआ। तब यक्ष ने हाथी आदि का रूप धारण कर उन्हें सताया, फिर भी वे विचलित न हुए। अन्त में उसने भयंकर विषधर बनकर उन पर दृष्टिपात किया, लेकिन उसके विष का उनके ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। यह देखकर यक्ष ने आगे बढ़कर पूरे वेग से उनके पैर के अंगूठे पर मुँह मारा, महावीर फिर भी अप्रभावित रहे। यक्ष ने अब अन्तिम प्रयत्न किया। वह उनके शरीर पर चढ़ गया और गले पर उन्हे काटा, पर महावीर महावीर थे। वे यथावत् ध्यान में मग्न रहे। विवश होकर नाग रूपी यक्ष नीचे उतर आया और पस्त होकर उनसे कुछ पग की दूरी पर खड़ा रहा।

ध्यान पूर्ण होने पर महावीर ने आँखें खोलीं तो उन्हें विषैला नाग दिखाई दिया। उन्होंने उस पर प्यार की वर्षा की, उसके मगल की कामना की। सर्प का विष अमृत के रूप में परिणत हो गया।[60]

एक फकीर एक गाँव से निकल रहा है। एक आदमी एक लकड़ी उठाकर उसको पीछे से मार रहा है। चोट लगने पर लकड़ी उसके हाथ से छूट गई है और एक तरफ गिर गयी है। उस फकीर ने पीछे लौटकर देखा लकड़ी उठाकर उसके हाथ मे दे दी और अपने रास्ते चला गया। एक दुकानदार यह सब देख रहा है, उसने फकीर को बुलाया और कहा कि तुम कैसे पागल हो? तुम्हे उसने लकड़ी मारी, उसकी लकड़ी छूट गई तो तुमने सिर्फ इतना ही किया कि उसकी लकड़ी उसको उठाकर वापिस दे दी और तुम अपने रास्ते चले गए। उस फकीर ने कहा कि एक दिन मैं एक झाड़ के नीचे से गुजर रहा था। उसकी एक शाखा मेरे ऊपर गिर पड़ी तो मैंने कुछ नहीं किया। मैंने कहा कि संयोग की बात है कि जब शाखा गिरी तो मैं उसके नीचे आ गया। मैं शाखा को रास्ते के किनारे सरकाकर चला गया।

---

[60] लेखक - यशपाल जैन

संयोग की बात होगी कि उस आदमी को लकड़ी मारनी होगी। हम पर तो इसकी लकड़ी छूट गई, उसको लकड़ी उठा कर दे दी और हम क्या कर सकते थे, हम अपने रास्ते चल पड़े। जो मैंने वृक्ष के साथ व्यवहार किया था, वही मैंने इस आदमी के साथ भी किया।[61]"

महात्मा बुद्ध का उपदेश

महात्मा बुद्ध का उपदेश सुनकर एक ब्राह्मण इतना प्रभावित हुआ कि वह उनका शिष्य बन गया। उसके इस कदम से उसका एक सम्बन्धी बड़ा क्रोधित हुआ। क्रोध में आकर उसने बुद्ध को बहुत गालियाँ दीं। महात्मा बुद्ध उसकी गालियाँ चुपचाप सुनते रहे। अन्त में उन्होंने मुस्कराते हुए पूछा - भाई! तुम्हारे घर पर मेहमान तो आते होंगे न?

"आते हैं।" उस आदमी ने उत्तर दिया।

"फिर तुम अपने मेहमानों का आदर सत्कार भी करते होंगे?" महात्मा बुद्ध ने पूछा।

"क्यों नहीं? आदर सत्कार भी करता हूँ।"

"तुम उन्हें कुछ भेंट भी देते होंगे?" बुद्ध ने फिर प्रश्न किया।

"हाँ भेंट भी देते हैं।" उस आदमी का उत्तर था।

तब बुद्ध ने मुसकराते हुए पूछा - "भाई, अगर मेहमान तुम्हारी दी हुई भेंट न ले तो फिर वे भेंट की चीजें कहाँ जायेंगी?

"हमारे अपने पास ही रहेंगी, जायेंगी कहाँ? उस व्यक्ति ने कहा।

"तो भाई, अगर मुझे दी हुई तुम्हारी गालियों की भेंट मैं न स्वीकार करूँ तो कहाँ जाएगी" महात्मा बुद्ध के इस कथन से वह ब्राह्मण बड़ा लज्जित हुआ और उसने तुरन्त बुद्ध से क्षमा-याचना की।

क्षमा-भाव

कुछ शताब्दी पूर्व बाहुबली नाम के एक मुनिराज कुम्भोजगिरि पर पधारे। वहाँ पर अपने ध्यान, अध्ययन के योग्य स्थान देखकर वे एक गुफा में

---

[61] आ. रजनीश : महावीर मेरी दृष्टि में, पृ० 446

ठहरकर तपस्या करने लगे। उनका अधिकाश समय अध्ययन और मनन में ही व्यतीत होता था। वे कई दिनों के पश्चात् आहार के लिए नगर में जाते थे। उनकी अधिकतर यह प्रतिज्ञा होती थी कि जंगल में ही उन्हें आहार मिल जायगा तो लेंगे, अन्यथा उपवास करेंगे। इस प्रदेश में अधिकांश जैन समाज खेती का काम करती है, इसलिए जैन कृषक उस जंगल से होकर निकलते थे तो वहाँ मुनिराज के आहार का प्रबन्ध कर देते थे।

एक बार वे आहार के निमित्त कुम्भोज नगर में आए थे। उनके मलिन और नग्न शरीर को देखकर कुछ उद्दण्ड लड़कों ने आवाज कसना, पत्थर मारना आदि आरम्भ कर दिया। किन्तु मुनिराज शान्तिपूर्वक चले जा रहे थे। वे शरारती लड़के उन पर उपसर्ग करते ही रहे। मुनिराज अन्तराय समझकर जगल की ओर वापिस लौट गए, किन्तु वे लड़के पीछे लगे रहे। जब वे गुफा के पास पहुँचे तो एक सिंह आकर मुनिराज के सामने शान्ति से बैठ गया।

वे शरारती लड़के उपद्रव करते हुए जब गुफा के सामने पहुँचे और उन्होने सिंह को देखा तो भय के मारे काँपने लगे। उनकी बोलती भी बन्द हो गयी। उनको भयभीत देखकर मुनिराज बोले - आप लोग आ जाईए, यह सिह आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं करेगा। किन्तु वे सब अपने घर की ओर भाग गए और उस दिन से उन्होंने उपद्रव करना छोड दिया। उनमें अधिकांश मुस्लिम लड़के थे। वे आपस में कहने लगे - ये तो कोई पहुँचे हुए फकीर हैं, इनमें ख़ुदाई जलवा है, ये तो वाकई पैगम्बर हैं।

दूसरे दिन उन्होने मुनिराज के पास जाकर उनसे क्षमायाचना की। समताधारी मुनिराज तो ऐसे भूले भटके प्राणियों पर ही करुणा करते हैं। रोष उनके जीवन मे भी नही आता। उपर्युक्त मुनिराज के नाम पर कुम्भोज को बाहुबली नगर कहते है। इनकी स्मृति में वहाँ पर इनके चरण भी स्थापित किए गए है। आज यह स्थान बाहुबली क्षेत्र नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ पर पूज्य मुनि समन्तभद्र जी ने गुरुकुल स्थापित कर उस स्थान की काया पलट ही कर दी है।

अहंकार से मनुष्य हिंसा में प्रवृत्त होता है

भगवती आराधना में कहा गया है कि जो क्रोध के दोष हैं, वे सब दोष मानकषाय के भी जानना। मान से मनुष्य मैथुन, हिंसा, असत्य बोलना और चोरी में प्रवृत्ति करता है।[62]

मान कषाय के विषय में ज्ञानार्णव में कहा है :-

कुल, जाति, ऐश्वर्य, रूप, तप, बल, विद्या और धन - इन आठ भेदों से जिनकी बुद्धि बिगड़ गई है अर्थात जो मान करते हैं, वे तत्काल नीच गति के कारण कर्म को संचित करते हैं।[63] जब तक तेरे मन में मन की गाँठ अतिशय दृढ़ है, तब तक तेरा विवेक रूपी रत्न प्राप्त हुआ भी चला जाएगा; क्योंकि मान कषाय के सामने हेय, उपादेय का ज्ञान नहीं रहता।[64] जो पुरुष अति ऊँचे मानपर्वत के अग्रभाग में रहते हैं, वे नष्टबुद्धि हैं, ऐसे मानी समीचीन मार्ग का उल्लंघन कर पूज्य पुरुषों की पूजा का लोप कर देते हैं।[65]

मानी शील से च्युत हो जाता है :- मान कषाय से पुरुष के भेदज्ञान रूप निर्मल लोचन (नेत्र) लोप हो जाते हैं जिससे शीघ्र ही शील रूपी पर्वत के शिखर के संक्रम से (चलने से) डिग जाते हैं, अर्थात शील से च्युत हो जाते हैं; क्योंकि जब विवेक नहीं रहा तो शील कहाँ?[66]

मानी गुरु को भी अपमानित करता है :- मानी पुरुष गर्व से अपने गुरु को भी अपमानित करता है। मानों ज्ञान रूपी रत्न को दूर करके अज्ञान रूपी सर्प को ग्रहण करता है।[67]

मानी स्वेच्छाचार में प्रवृत्ति करता है :- मान से उद्धतबुद्धि गर्व से विनयाचार का उल्लंघन करता है और पूज्य पुरुषों की परिपाटी छोड़कर स्वेच्छाचार में प्रवर्तने लग जाता है।[68]

---

[62] सव्वे वि कोहदोसा माणकसायस्स होदि णादव्वा। माणेण चेव मेधुणहिंसालियचोज्जमाचरदि।।- भगवती आराधना 1372

[63] ज्ञानार्णव 19/48

[64] वही 19/49

[65] वही 19/50

[66] ज्ञानार्णव 19/51

[67] वही 19/52

मानी निन्दित कार्य करता है :- मान का अवलम्बन कर मूढ़ात्मा निन्दित कार्य करता है तथा चन्द्रमा के समान निर्मल सदा चरणों को कलङ्कित करता है।[69]

प्रशस्त मान :- जिससे अपमान करने वाले कार्य दूर से ही छोड़ दिए जायँ, वही उच्चाशय वालों का प्रशस्त मान है। इसके अतिरिक्त अन्य जो मान हैं, वे स्व-पर के घातक हैं।[70]

विनय और प्रशम के बिना मनुष्य निर्जला नदी के समान सुशोभित नहीं होता है :-

जिस प्रकार जलरहित नदी सुशोभित नहीं होती, उसी प्रकार विनय और प्रशम के बिना व्यक्तियों के कुल, रूप, वचन, यौवन, धन, मित्र, ऐश्वर्य और रूप सम्पदाये भी सुशोभित नही होती हैं। श्रुत और शील जिसकी मूल कसौटी है, ऐसा विनय युक्त मनुष्य जिस प्रकार सुशोभित होता है, वैसा बहुमूल्य वस्त्र और आभरण से अलङ्कृत व्यक्ति भी सुशोभित नहीं होता है।[71] श्रुत शास्त्र को कहते है और शील आचार को कहते है। यदि मनुष्य विनयी है तो उसका श्रुत श्रुत है और शील शील है, अन्यथा उसे दु:शील समझना चाहिए। जो श्रुत और शील की परीक्षा करने के लिए कसौटी के समान है और विनय से विभूषित है, वह सबसे सुन्दर है।

विनय समस्त कल्याणों का भाजन है :- विनय का फल सेवा है। गुरु की सेवा का फल श्रुतज्ञान की प्राप्ति है। ज्ञान का फल विरति है और विरति का फल आस्रव का रुकना है। आस्रव के रुकने रूप संवर का फल तपोबल है, तप का फल निर्जरा है। निर्जरा से क्रिया की निवृत्ति होती है। तथा क्रिया की निवृत्ति से अयोगीपन्ना प्राप्त होता है। योग का निरोध होने से संसार परम्परा का उच्छेद होता है और ससार परम्परा के उच्छेद से मोक्ष होता है। इस प्रकार विनय समस्त कल्याणों का भाजन है।[72]

---

[68] वही 19/53

[69] वही 19/54

[70] वही 19/56

[71] प्रशमरतिप्रकरण

[72] प्रशमरतिप्रकरण 72-74

दोषों के विषय में दृष्टिकोंण :- दूसरों के हिमालय से बड़े दोषों को राई के समान समझना चाहिए और अपने राई से दोषों को हिमालय के समान बड़ा समझना चाहिए। अपने में अगर जरा सा भी दोष मालूम हो, जाने-अनजाने असत्य हो गया हो तो हमें ऐसा होना चाहिए कि अब हम जल में डूब मरें। दिल में आग सुलग जानी चाहिए। सर्प या बिच्छू का डक तो कुछ नहीं है, उनका जहर उतारने वाले बहुत मिल सकते हैं, परन्तु असत्य और हिंसा के दंश से बचाने वाला कौन है? ईश्वर हमें उससे मुक्ति दे सकता है और हममे अगर पुरुषार्थ हो तभी वह मिल सकती है। इसलिए अपने दोषों के विषय में हम सचेत रहें। वे जितने बड़े देखे जा सकें, उन्हें हम देखें और यदि जगत् हमें दोषी ठहराए तो हम ऐसा न मानें कि जगत् कितना कंजूस है कि छोटे से दोष को बड़ा बतलाता है। टालस्टाय को कोई उनका दोष बतलाता तो वह उसको बड़ा भयंकर रूप देते थे। उनका दोष बताने का प्रसंग दूसरे को शायद ही उपस्थित हुआ हो, क्योंकि वे आत्मनिरीक्षण बहुत करते थे। वे स्वय प्रायश्चित्त भी करते थे। यह साधुता की निशानी है।[73]

मायाचारी हिंसक है

मायाचारी के योगों की वक्रता होती है। हिंसा, चोरी और मैथुन आदिक अशुभकाययोग हैं। आचार्य शिवार्य ने भगवती आराधना में कहा है कि अत्यन्त छिपाकर भी की गयी बुराई कालान्तर में मनुष्यो को ज्ञात हो जाती है, तब मायाचार करने से क्या लाभ है? इस प्रकार चिन्तन करने से माया को दूर करना चाहिए।[74] अच्छी तरह सैंकड़ों छल कपट करने पर भी पुण्यहीन के हाथ मे पुण्यशाली का धन नहीं आता।[75] जैसे एक कोटि धन का स्वामी होने पर भी यदि शरीर में कील, काँटा घुसा हो तो शारीरिक सुख नहीं मिलता, उसी प्रकार तप से समृद्ध होने पर भी यदि अन्तर मे माया रूपी शल्य घुसा है तो मोक्ष लाभ नहीं हो सकता। माया दोष से मनुष्य सबके द्वेष का पात्र होता है, उसका कोई विश्वास नही करता। स्वजन भी उसका अपमान करते हैं। वह शीघ्र ही अपने बन्धु, बान्धवो का शत्रु बन जाता है। अपने द्वारा थोड़ा सा

---

[73] गाँधी सस्मरण और विचार, पृ० 37

[74] भगवती आराधना-1426

[75] वही 1429

अपराध होने पर भी मायाचारी महा दोष का भागी होता है। एक बार का भं मायाचार हज़ारों सत्यों को नष्ट कर देता है। मायाचार से मित्रता नष्ट हो जातं है, उससे इस लोक सम्बन्धी कार्यों का विनाश होता है । मायादोष रं विषमिश्रित दूध की तरह मुनिधर्म नष्ट हो जाता है । माया से नीच गो: नामक कर्म का बन्ध होता है, जिससे दूंसरे जन्म में नीच कुल में जन्म होत है तथा स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और तिर्यञ्चगति नामकर्म का बन्ध होता है । माय से उत्पन्न दोष से सैंकड़ों जन्मों में बहुत बार ठगाया जाता है । जहाँ मायाचा है, वहाँ क्रोध, मान और लोभ भी रहते हैं ।[76]

मायाचार से गुणों की छाया भी नहीं रहती :- पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका मे कहा गया है कि एक बार भी किया गया मायाचार आजन्मत: भारी कष्टों से उपार्जित मुनि के सम आदि गुणों के विषय में अतिशय छायाविघात करता है अर्थात् उक्त मायाचार से सम आदि गुणों की छाया भी शेष नहीं रहती - वे निर्मूलत: नष्ट हो जाते हैं। कारण कि उस कपट पूर्ण व्यवहार मे वस्तुत: क्रोधादिक सभी दुर्गुण परिपूर्ण होकर रहते हैं। खेद है कि वह कपट व्यवहार ऐसा पाप है, जिसके कारण यह जीव नरकादि दुर्गतियों के मार्ग में चिरकाल तक भ्रमण करता है।[77]

जगद्व्यापिनी माया :- जो माया क्रोधादि के नहीं होते हुए भी क्रोधादि है, ऐसी प्रतीत कराती है और क्रोध आदि के होते हुए भी क्रोधादि नहीं हैं, ऐसी प्रतीत कराती है तथा गुणों में भी दोषबुद्धि कराती है और दोषों में भी गुणबुद्धि कराती है तथा अत्यन्त सूक्ष्म भी विचारणीय स्थानो को ढाँकती हुई विद्यासम्पन्न बुद्धिमानों को भी भ्रम में डाल देती है, वह संसार व्यापी माया सर्वत्र विजयशील है।[78]

मायावी कोई विश्वास नहीं करता है:- जो मायावी अपने ही मन को अपने बचनों से और वचनों को शारीरिक व्यापार से रात-दिन ठगा करता है, उसका विश्वास कौन कर सकता है?[79]

---

[76] वही 1376-1381

[77] पदमनन्दि पञ्चविंशतिका-1/90

[78] अनगार धर्मामृत 6/17

[79] अनगार धर्मामृत 6/19

माया मोक्ष रोकने को अर्गला है :- माया मोक्ष रोकने को अर्गला है; क्योंकि जब तक माया शल्य रहता है, तब तक मोक्षमार्ग का आचरण नहीं आता। माया नरकरूपी घर में प्रवेश करने का द्वार है तथा शील रूपी शालवृक्ष को दग्ध करने के लिए अग्नि समान है; क्योंकि मायावी की प्रकृति सदा डाह रूप रहा करती है।[80]

मायाचारी का अनुष्ठान असार है :- आचार्य शुभचन्द्र का कहना है कि मैं मायावलम्बी पुरुषों के आचरण को कूट द्रव्य (नकली द्रव्य) के समान असार समझता हूँ। अथवा स्वप्न में राज्य प्राप्ति के समान निष्फल समझता हूँ; क्योंकि मायावान् का आचरण सत्यार्थ नहीं होता, किन्तु निष्फल होता है।[81]

मायावी में मोक्ष जाने की योग्यता नहीं :- वीतराग सर्वज्ञ भगवान् ने मुक्तिमार्ग की गति सरल कही है, उसमें मायावी जनों के स्थिर रहने की योग्यता स्वप्न में भी नहीं है।[82]

माया अतिशय भयदायक है :- व्रती तो नि:शल्य होता है। शल्यसहित तो व्रत का घातक होता है और आचार्यो ने माया को साक्षात् शल्य कहा है, क्योंकि माया अतिशय भयदायक है।[83]

माया के पर्यायवाची नाम :- माया, सातियोग, निकृति, वंचना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञ, मार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न - ये माया के नाम हैं। कपट प्रयोग को माया कहते हैं। कूट व्यवहार को सातियोग कहते हैं। वंचना का भाव निकृति है। विप्रलंभन को वंचना कहा है। योगों की कुटिलता अनृजुता है। दूसरे के मनोज्ञ अर्थ को ग्रहण कर उसे छुपाना ग्रहण है। अन्तरड्.ग में धोखा देने के भाव को धारण कर अन्य के गुप्त भाव को जानने का प्रयत्न मनोज्ञमार्गण है अथवा मनोज्ञ पदार्थ को दूसरे के विनयादि मिथ्या उपचारों द्वारा लेने का अभिप्राय करना मनोज्ञमार्गण है। दम्भ करना कल्क है। मिथ्या मन्त्र-तन्त्रादि के द्वारा अपने मनोगत भाव को बाह्य रूप में नही होने देना गूहन है तथा गुप्त प्रयोग को छन्न कहते हैं। इन सबमे हिसा है।

---

[80] ज्ञानार्णव 19/59

[81] वही 19/60

[82] वही 19/62

[83] वही 19/63

मायाचार का एक उदाहरण :- महात्मा गाँधी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है - मेरे एक मित्र मुझसे एकान्त में बातचीत करना चाहते थे - और हमारी एकान्त में बातचीत हो रही थी। इतने में एक अन्य मित्र वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने विनम्रतापूर्वका पूछा, "मैं खलल तो नहीं डाल रहा हूँ" जिनसे बातें हो रही थीं, उन मित्र महाशय ने कहा - "नहीं, यहाँ गोपनीय कुछ नहीं है।" मुझे थोड़ा अचम्भा हुआ, क्योंकि उन्होंने मुझे एकान्त मे खींचा था और मुझे मालूम था कि इन मित्र के लेखे में बातचीत अवश्य गोपनीय थी। किन्तु उन्होंने तत्काल विनम्रता के कारण, जिसे मैं फाजिल विनम्रता कहूँगा, यह कह दिया कि कोई गोपनीय बात नहीं हो रही है, आप आ सकते हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि यह मेरी सत्य की परिभाषा में नहीं बैठता। मेरा खयाल है कि अत्यन्त विनम्रतापूर्वक, किन्तु फिर भी साफ तौर पर उन्हें यह कहना चाहिए था, "जी हाँ, फिलहाल जैसा कि आप कह रहे हैं, आने से खलल होगा।" यदि वह सज्जन होते तो उन्हें इस कथन से नाराजगी न होती और जब तक अन्यथा सिद्ध न हो जाय, तब तक सभी को सज्जन मानकर चलना चाहिए। इस पर आप कह सकते हैं कि इस घटना से तो आखिर राष्ट्र का सौजन्य प्रकट होता है। मेरी समझ में यह आवश्यकता से अधिक सौजन्य है। यदि हम केवल नम्रतावश ऐसा करते रहे तो राष्ट्र पाखण्डियों से भर जाएगा। यहाँ मुझे एक अंग्रेज मित्र से अपनी बातचीत याद आ गई। उनका तब हमारे देश से बहुत परिचय नहीं हो पाया था। वह एक कालेज के प्रिंसिपल थे और भारत में अनेक वर्षो से थे। हम विभिन्न बातों पर परस्पर विचार कर रहे थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या आप यह मानते हैं कि मन मे न हो तो भी भारतीयों को ज्यादातर अंग्रेजों की तरह "न" कहने का साहस नहीं है और मुझे कहना पड़ा कि "हाँ, आपका कहना ठीक है।" जिस आदमी से हम बात कर रहे हैं उसकी भावना का ख्याल करके हम हिम्मत के साथ साफ तौर पर "न" कहने मे हिचकते है।[64]

लोभ पाप का बाप है

हिसा, झूठ, चोरी, कुशील ओर परिग्रह - ये पाँच पाप कहे गए हैं। लोभ पाप का बाप है। लोभ करने पर भी पुण्यहीन पुरुष के पास धन नहीं

---

[64] गाँधी . सस्मरण और विचार, पृ० 264

होता और लोभ नहीं करने पर भी पुण्यशाली के पास धन होता है।[85] अतः धन का लोभ धनलाभ में निमित्त नहीं है, किन्तु पुण्य निमित्त है।

जगत् में जितने पदार्थ हैं, वे सब मैंने अनन्त बार प्राप्त किये। उन्हें ग्रहण किया और त्यागे हुए पदार्थे में आश्चर्य कैसा? लोभ इस भव में और परभव में बहुत दोष पैदा करता है। ऐसा जानकर लोभ को त्यागना चाहिए।[86] तृण से उत्पन्न हुआ लोभ पाप को उत्पन्न करता है, तब सारवान् वस्तु मे हुए लोभ का तो कहना ही क्या है? जो लोभ कषाय से रहित है, उसके शरीर पर मुकुट आदि परिग्रह होने पर भी पाप नहीं होता।[87]

जो लोभ से ग्रस्त हैं, उसके चित्त को तीनों लोक प्राप्त करने पर भी सन्तोष नहीं होता है। जो शरीर की स्थिति में कारण किसी भी वस्तु को पाकर सन्तुष्ट रहता है, जिसे वस्तु में ममत्वभाव नहीं है, वह दरिद्र होते हुए भी सुख प्राप्त करता है।[88] अतः चित्त की शान्ति सन्तोष के अधीन है, द्रव्य के आधीन नही है। महान् द्रव्य होते हुए भी जो असन्तुष्ट है, उसके हृदय में महान् दुःख रहता है। लोभ निकटवर्ती पदार्थो मे तीव्र चाह उत्पन्न करने वाला है। यह सब पापों का मूल है। सब गुणो को नष्ट करने वाला है। व्यास जी ने कहा है-

भूमिष्ठोऽपि रथस्थान तान् पार्थः सर्वधनुर्धरान्।

एकोऽपि पातयामास लोभः सर्वगुणानिव।। महाभारत।।

भूमि पर खड़े हुए भी अकेले अर्जुन ने रथ में बैठे हुए उन सभी धनुर्धारियों को उसी प्रकार मार गिराया, जिस प्रकार लोभ सब गुणों को नष्ट कर देता है।

ज्ञानार्णव में कहा है :-

---

85 भगवती आराधना-1431

86 वही 1432-1433

87 वही 1384

88 वही 1386

अनेक मनुष्य यद्यपि अपनी इच्छा से शाक से भी पेट भरने को समर्थ नहीं होते, तथापि लोभ के वश चक्रवर्ती की सी सम्पदा को चाहते है।[89]

इस लोभ कषाय से पीड़ित हुआ पुरुष अपने मालिक, गुरु, बन्धु, वृद्ध, स्त्री, बालक, क्षीण, दुर्बल, अनाथ, दीनादिकों को भी निःशङ्कता से मारकर धन ग्रहण करता है।[90] नरक को ले जाने वाले जो दोष सिद्धान्त में कहे गए हैं, वे सब जीवों के निःशङ्कतया लोभ से ही प्रकट होते हैं।[91]

लोभी व्यक्ति के औचित्य नामक गुण नहीं होता है :- जो अकेला भी औचित्य गुण एक करोड़ गुणों की तुलना में भारी पड़ता है, वही औचित्य गुण अत्यन्त लोभी मनुष्य को विष के तुल्य प्रतीत होता है।[92]

दान देना तथा प्रिय वचनों द्वारा दूसरों को संतुष्ट करने का नाम औचित्य गुण है। इस गुण की बड़ी महिमा है। औचित्य गुण के बिना गुणों की राशि विष तुल्य प्रतीत होती है। लोभी मनुष्य दान देना तो दूर, प्रिय वचनो के द्वारा भी दूसरो को संतुष्ट करना नहीं चाहता। उसे किसी भी प्रार्थी का आना नहीं सुहाता।

लोभी अकरणीय कार्य करता है :- स्वजीवन, परजीवन, आरोग्य और पाँचो इन्द्रिय के उपभोग इन आठ विषयो की अपेक्षा लोभ के आठ भेद होते हैं। इन आठ प्रकार के लोभो से व्याकुल मनुष्य सभी न करने योग्य काम करता है।

अपने और अपनी स्त्री, पुत्रादि के इष्ट विषयों को, इन्द्रियों को, आरोग्य को और प्राणों को अत्यन्त चाहने वाला मूढ़ मनुष्य लगातार कौन न करने योग्य काम नहीं करता है? अर्थात सभी बुरे काम करता है।[93]

लोभ के वशीभूत होने पर मनुष्य के सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं :-

मनुष्य तभी तक यश की चाह करता है, तभी तक मित्रता का लगातार पालन करता है, तभी तक चरित्र को बढ़ाता है, तभी तक आश्रितों का सम्यक्

---

[89] ज्ञानार्णव 19/69

[90] वही 19/70

[91] वही 19/71

[92] अनगार धर्मामृत 6/25

[93] अनगार धर्मामृत 6/26

रीति से पालन करता है, तभी तक किए हुए उपकार को मानता है, तभी तक पाप से डरता है, तभी तक उच्च सन्मान को धारण करता है, जब तक वह लोभ के वश में नहीं होता है, अर्थात लोभ के वशीभूत होने पर सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं।[94]

लोभ का निर्वाह करने के लिए शौच की आराधना करना चाहिए :-

अपने प्रति मोह के साथ मरने की इच्छुक माया रूपी माता को मरने से रोकने वाला लोभ जिसके द्वारा निगृहीत किया जाता है, उस शौच रूपी देवता की आराधना करना चाहिए।[95]

स्त्री यदि पति के साथ रहना चाहती है तो पुत्र उसे रोकता है। लोभ का पिता मोह है और माता माया है। जब मोह मरता है तो उसके साथ माया भी मरणोन्मुख होती है, किन्तु लोभी उसे मरने नहीं देता। इसलिए लोभ का निर्वाह करने के लिए शौच देवता की आराधना करना चाहिए। यहाँ शौच को देवता इसलिए कहा है कि देवता को अपने आश्रित का पक्षपात होता है। अतः जो शौच का आश्रय लेते हैं, शौच उन्हें लोभ के चंगुल से छुड़ा देता है। लोभ की सर्वोत्कृष्ट निवृत्ति को शौच कहते हैं। मनोगुप्ति में तो मन की समस्त प्रवृत्तियों को रोकना होता है। जो उसमें असमर्थ होता है, उसका पर वस्तुओं में अनिष्ट संकल्प विकल्प न करना शौच है।

शौच धर्म किसके होता है :- जो समभाव और सन्तोष रूपी जल से तृष्णा और लोभ रूपी मल के समूह को धोता है तथा जो भोजन की गृद्धि नहीं करता है, उसके निर्मल शौच धर्म होता है।[96]

जीवों की हिंसा से दूर हो जाना ही शौच धर्म है :- चित्त जो परस्त्री एवं पर धन की अभिलाषा न करता हुआ षट्काय के जीवों की हिंसा से रहित हो जाता है, इसे ही दुर्भेद्य अभ्यन्तर कलुषता को दूर करने वाला उत्तम शौच धर्म कहा जाता है, इससे भिन्न दूसरा शौच धर्म नहीं हो सकता है।[97]

---

[94] वही 6/27

[95] वही 6/28

[96] स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा-397

[97] पदमनन्दि पञ्चविंशतिका 1/94

लोभी का एक दृष्टान्त :- एक कुण्ड था जिसमें बंदर नहा ले तो आदमी बन जाता है, ऐसी उसकी ख्याति थी और यदि आदमी नहा ले तो देव बन जाता है। ऐसा भी कहा जाता था। एक दिन एक बंदर उसमें नहाया तो आदमी बन गया। अब उसे आदमी से देव बनने का लालच आ गया। उसने दुबारा डुबकी लगाई। अब वह पुनः बन्दर बन गया। बस यही स्थिति आप की भी है। कितने पुण्योदय से मनुष्य भव मिलने के बाद भी आपका मन बन्दर के समान है। आपका मन कभी तृप्त ही नहीं होता है। आप जिस किसी भी वस्तु की माँग करते हैं उससे आपको विराम मिलने वाला नहीं है। जिस प्रकार बन्दर का मन चंचल है और दारू पीने के बाद और भी चचल हो जाता है, उसी प्रकार आपका मन तो चंचल है ही और फिर परिग्रह रूपी दारू पिला दी जाए तो और अधिक चचल हो जाता है।

सीमाहीन भौतिक प्रगति

आर्थिक उन्नति का अर्थ हम सीमाविहीन भौतिक प्रगति लगाते हैं, जो उचित नही है। ससार के सभी धर्म ग्रन्थों में इस आशय के आदेश मिलते हैं कि कल की चिन्ता मत करो। किसी भी सुव्यवस्थित समाज मे रोटी कमाना सबसे सुगम बात होनी चाहिए और हुआ करती हे। निःसंदेह किसी देश की सुव्यवसथा की पहचान यह नही है कि उसमें कितने लखपति लोग रहते हैं, बल्कि यह कि जन-साधारण का कोई भी व्यक्ति भूखों तो नहीं मर रहा है। भौतिक उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचते ही रोमन लोगों का नैतिक पतन आरम्भ हो गया। मिश्र देश में भी यही हुआ और कदाचित् उन सभी देशो मे जिनका इतिहास हमे उपलब्ध है, ऐसा ही हुआ है। कृष्णचन्द्र जी महाराज के कुटुम्बियो का - यादवो का भी जब वे खूब दौलतमन्द होकर गुलछर्रे उड़ाने लगे, पतन हो गया। गाँधी जी का कहना था कि उन्होंने लगभग सदा यही देखा है कि आर्थिक दृष्टि से जो जितना सम्पन्न होता था, उसका नैतिक स्तर गया गुजरा होता था। सत्याग्रह के नैतिक संघर्ष को जितना गरीबो से बल मिला, उतना अमीरों से नहीं। यहाँ की स्थिति देखकर धनाढ्य लोगों के स्वाभिमान को वैसी ठेस नहीं लगती थी जैसी निर्धन से निर्धन व्यक्तियों के हृदयों को पहुँचती थी। ईसा के पास एक बार एक जिज्ञासु पहुँचा और उसने पूछा-

हे कृपासिन्धु, बतलाइये मैं किस रास्ते पर चलूँ कि मैं अविनाशी जीवन को विरासत में पा जाऊँ? ईसा ने कहा - तुम मुझे कृपासिन्धु क्यों कहते हो? एक को छोड़कर और कोई कृपासिन्धु है ही नहीं, और वह है परमात्मा। तुम धर्मानुशासनों (कमांडमेण्ट्स) से परिचित हो। व्यभिचार मत करो, जीव हत्या मत करो, चोरी मत करो, झूठी गवाही मत दो, किसी के साथ कपट का व्यवहार मत करो, अपने माता पिता का आदर करो। उस व्यक्ति ने उत्तर में कहा - "प्रभो, इन सब उपदेशो का मैंने युवावस्था में आचरण किया है।'' इस पर ईसा ने उसे धन्यवाद दिया। उन्होंने उस पर स्नेह की वर्षा करते हुए कहा - तुममे एक बात की कमी रह गई है। लौट जाओ, जो कुछ तुम्हारे पास है उसे बेच डालो और इस प्रकार प्राप्त धन को गरीबों में बाँट दो, तो तुम्हे स्वर्ग की निधि प्राप्त होगी। आओ, इस काम को हाथ में ले लो और मेरे पीछे-पीछे चलो। यह सुनकर वह व्यक्ति उदास हो गया और चल दिया; क्योकि उसके पास बड़ी जायदाद थी। ईसामसीह ने इधर-उधर नजर दौड़ाई और अपने शिष्यों से कहा - जिनके पास दौलत है वे ईश्वर के राज्य में किस प्रकार प्रवेश पा सकते हैं? यह सुनकर शिष्यगण अचम्भे में आ गए परन्तु ईसा ने उनसे बार-बार कहा - बच्चो, जो लोग अपनी दौलत पर भरोसा करते हैं, उनके लिए ईश्वर के राज्य में प्रवेश पाना कितना दुष्कर है। "सूई के छेद से होकर ऊँट का गुजर जाना आसान है, परन्तु धनाढ्य व्यक्ति के लिए ईश्वर के राज्य में प्रवेश पाना कठिन है। ईसामसीह, मुहम्मद, बुद्ध, नानक, कबीर, चैतन्य, रामकृष्ण - जैसे व्यक्ति थे, जिनका लाखों नर-नारियो के हृदय पर प्रभाव था और जिन्होंने असंख्य व्यक्तियो का चरित्र गढ़ा है। ये महापुरुष इस पृथ्वी पर अवतरित हुए और उनके अवतरित होने से विश्व की नैतिकता में समृद्धि हुई। ये सब ऐसे व्यक्ति थे, जिनहोंने जान बूझकर गरीबी को अपनाया था। मनुष्य को चाहिए कि अपने निजी स्वार्थ के लिए धसंग्रह न करे, परन्तु यदि यह भारत के करोड़ों निवासियों के न्यासी की भाति धनसग्रह करना चाहता है तो मै कहूँगा कि वह जितना चाहे उतना धन इकट्ठा कर सकता है। साधारणतया अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र के नियम अमीर लोगों के लाभ के लिए रखते हैं। ऐसे अर्थशास्त्रियो का मै सदा विरोध करूँगा।[९८]

---

[९८] गाँधी सम्मरण औग विचाग, पृ 289-291

सब ठाठ पड़ा रह जाएगा

एक दिन एक सम्पन्न जमींदार सुकरात से अपने ऐश्वर्य की डींग हाँकते हुए उसका प्रदर्शन करने लगा। सुकरात कुछ देर तक उसकी प्रशंसा सुनते रहे, फिर उन्होंने पृथ्वी का एक नकशा फैलाकर जमींदार से कहा - बता सकते हो - इस नकशे में अपना देश कहाँ है? जमींदार ने उँगली रखकर कहा - "यह रहा"। इसमे सुकरात ने फिर पूछा - इसमें तुम्हारी जागीर की भमि कहाँ है? श्रीमान् इसमें अपनी छोटी सी भूमि कहाँ हो सकती है? यह सुनकर सुकरात ने कहा - इस नकशे में जिस भूमि के लिए एक छोटा सा बिन्दु भी नहीं रखा जा सकता है, उस जमीदारी पर घमण्ड करना कितनी मूर्खता है? यह जमींदारी तो यहीं पड़ी रह जायेगी, किन्तु इसकी ममता लेकर जीव दुर्गति में चला जाता है, वहाँ यह ज़मीदारी क्या काम देगी? जमींदार सन्त के चरणों में झुक गया।

मन को वश में कीजिए

आचार्य शुभचन्द्र ने कहा है कि जिसने मन का रोध किया, उसने सब ही रोका और जिसने अपने मन को वशीभूत नहीं किया, उसका अन्य इन्द्रियादिक का रोकना व्यर्थ ही है। मन की शुद्धता से ही साक्षात् कलंक का विलय होता है और जीवों के उनका समभाव स्वरूप होने पर स्वार्थ की सिद्धि कही है; क्योकि जब मन राग, द्वेष रूप नहीं प्रवर्तता तब ही अपने स्वरूप में लीन होता है, यही स्वार्थ की सिद्धि है। जो पुरुष चित्त के प्रपंच से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के विकारों को रोकने वाले हैं, वे ही निश्चयत: मुनि रूपी स्त्री के कर ग्रहण को प्राप्त होते है। यदि तू कर्म रूपी दृढ़ बेड़ियो को काटने के लिए उद्यमी हुआ है तो उस मन को ही समस्त विकल्पों से रोककर शीघ्र ही अपने वश में कर। इस मन को भले प्रकार समभाव रूप प्राप्त करने से ससार परिभ्रमण से उत्पन्न हुए दोष जीवों के ज्ञानरूप लक्ष्मी की प्राप्ति में बाधक हैं, वे निश्चित रूप से नष्ट हो जाते है। सयमी मुनि को एक मात्र मन रूपी दैत्य का जीवन ही समस्त अर्थो की सिद्धि का देने वाला है; क्योंकि इस मन को जीते बिना अन्य व्रत, नियम, तप व शास्त्रादिक में क्लेश करना व्यर्थ है। एक मन का रोकना ही समस्त अभ्युदयों का साधने वाला है; क्योंकि मनोरोध का आलम्बन करके ही योगीश्वर तत्त्वनिश्चयता को प्राप्त हुए हैं; जो

धीर वीर पुरुष एकता को प्राप्त हुए आत्मा और शरीरादि पर वस्तु को पृथक्-पृथक् करके अनुभव करते हैं, वे सबसे पहिले अन्तरात्मा अर्थात मन की चंचलता को रोक लेते हैं। मन की शुद्धि से ही जीवों के शुद्धता होती है, मन की शुद्धि के बिना काय को क्षीण करना वृथा है।[99] मन की शुद्धता केवल ध्यान की शुद्धता को ही नहीं करती है, किन्तु जीवों के कर्मसमूह को भी निःसंदेह काटती है। जिसका मन स्थिर होकर आत्मस्वरूप मे लीन हो गया, उसके चरण-कमलों में यह तीनों जगत् भले प्रकार लीन हुए समझने चाहिए।[100] जैसे जैसे मन की शुद्धता साक्षात् होती जाती है, वैसे वैसे विवेक रूपी लक्ष्मी अपने हृदय में स्थिर पद धारण करती है। जो पुरुष चित्त की शुद्धता को न पाकर भले प्रकार मुक्त होना चाहता है, वह मृगतृष्णा की नदी में जल पीता है। वही तो ध्यान है, वही विज्ञान है, वही ध्येय तत्त्व है कि जिसके प्रभाव से अविद्या का उल्लंघन कर मन निजस्वरूप में स्थिर हो जाए।[101] जिस मन की शुद्धता होते हुए अविद्यमान गुण भी विद्यमान हो जाते हैं और जिसके न होते विद्यमान गुण भी जाते रहते हैं, वही मन की शुद्धि प्रशंसा करने योग्य है।[102]

मन के निरोध का एक दृष्टान्त

एक राजा था। उसने राज्य के ज्ञानियों की परीक्षा करने के लिए एक विचित्र उपाय सोचा। एक बकरा पाला। घोषणा की कि जो इसका पेट भर देगा, उसे हजार स्वर्ण मुद्राओ का पुरस्कार मिलेगा। बकरे को कोई भी सुबह से शाम तक ले जा सकता है और पेट भर सकता है शाम को यह राजा ही जाँचेगा कि पेट भरा या नहीं?

घोषणा सुनकर बहुतो का उत्साह उभरा। काम जरा सा सरल, इनाम इतना बड़ा। अनेको लालायित हुए और उसे कर दिखाने का आवेदन कर राजसभा में आये।

---

[99] ज्ञानार्णव 22/6-14
[100] वही 22/15-16
[101] वही 22/18-20
[102] वही 22/30

राजा ने सभी के नाम नोट कर लिए और बारी-बारी से एक-एक बकरा सभी को मिलने का वायदा करते हुए निश्चित दिन बता दिया। अब सिलसिला शुरू हुआ, जिसकी पारी थी, वह ले जाता और साधारण सी घास न खिलाकर गेहूँ, चने आदि के पौधे खिलाता, पूरी छूट दे देता और बढ़िया हरियाली सामने रखता। शाम को इस आशा से राजसभा में पहुँचता कि उसे पुरस्कार अवश्य मिलेगा, पर परीक्षा के समय सभी को निरुत्तर होना पड़ता। राजा द्वारा जब घास सामने रखी जाती तो बकरा आदत के अनुसार उसे खाने लगता। फलतः उसका भूखा होना सिद्ध हो जाता।

रोज की इस घिसघिस का रहस्य एक विचारशील ने समझा और नया उपाय सोच लिया। वह बकरे को खेत में ले गया और घास खाने के लिये जैसे ही उसने मुँह खोला, वैसे ही एक छड़ी उसके मुँह पर जड़ दी। सारे दिन यही चलता रहा। बकरे को कुछ भी खाने का अवसर न मिला। वरन् वह खाने का प्रयत्न करते ही मार पड़ने के डर में इतना भयभीत हो गया कि चराने वाले के हाथ में छड़ी देखकर मुँह खोलना तो दूर, उल्टा मुँह फेर लेता और उसकी ओर पीठ कर लेता।

नई परिस्थिति में बकरे ने नई आदत अपना ली तो वह व्यक्ति भूखे बकरे को लेकर राज दरबार में पहुँचा। रोज वाली परीक्षा की गई। बकरे के सामने घास थी, पर सामने ही चराने वाला छड़ी लेकर खड़ा रहा। भयभीत बकरे ने घास खाना तो दूर, उलटे उस ओर से मुँह फेर लिया और पीठ कर ली।

दर्शकों ने तालियाँ बजाई और चराने वाला विजयी हुआ और उसे सहस्त्र स्वर्ण मुद्राओं का इनाम मिल गया।

प्रसङ्ग समाप्त हो जाने पर सभी विद्वजन बुलाए गये। राजगुरु ने उपस्थित लोगो को सम्बोधित करते हुए कहा - "अपना मन बकरा है। उसे भोग विलास की हरी घास खाने की आदत है। उतने पर भी उसका पेट नही भरता है, चाहे कितना ही कुछ क्यो न मिले। जैसी ही नई वस्तु सामने आती है, वह आदत के अनुसार अपनी अतृप्त ललक का परिचय देता है और पेट भरा होने पर भी नये को खाने के लिए मचल पड़ता है। उसे तृप्त नहीं किया जा सकता, भले ही कितना ही चारा क्यों न डाला जाता रहे।

उपाय एक ही है - रोकथाम करने का और छड़ी जमाने का। छड़ी जमाना अर्थात अनुपयुक्त के दुष्परिणामों का बोध करना। वह अपने अनुभव से भी सीखा जा सकता है और दूसरों की दुर्गति का परिचय कराने पर भी। मन को मारना हो तो उसे संयमी बनाने और सही रास्ते पर चलने के लिये बाधित करने का उपयुक्त उपाय है। सर्कस के जानवर रिंग मास्टर के हण्टर के इशारे पर ही करतब दिखाना सीखते हैं। मन को भी कड़े अंकुश, अनुशासन और प्रतिरोध से ही काबू में लाया जाता है।''

समता भाव धारण कीजिए :- जिस समय यह आत्मा अपने आत्मा को औदारिक, तैजस और कार्मण - इन तीन शरीरों से तथा राग, द्वेष, मोह से रहित जानता है, तब ही समभाव में स्थित होता है। जिस समय यह आत्मा अपने को समस्त परद्रव्यों की पर्यायों से तथा परद्रव्यो से विलक्षण निश्चय करता है, उसी काल साम्यभाव उत्पन्न होता है।[103] जिस योगीश्वर के समभाव है, उसके ही अविचल सुख है, उसके ही अविनाशी पद और कर्मबन्ध की निर्जरा है। जिस मुनि के चराचर रूप समस्त जगत् में न कोई हेय है और न उपादेय है, उस मुनि के ही शुभाशुरूप कर्म रूपी मैल का साक्षात् क्षय है।[104]

इस साम्य के प्रभाव से अपने स्वार्थ मे प्रवृत्त मुनि के निकट परस्पर वैर करने वाले क्रूर जीव भी शान्त हो जाते हैं। समभाव का अवलबन करने वाले मुनियो के चरण-कमलों के प्रभाव से पूजनीय पृथ्वी को प्राप्त होने पर प्राणीजन परस्पर ईर्ष्याभाव छोड़कर मित्रता को प्राप्त हो जाते है। योगीगण क्रूर जीवों को उपाय करके शान्त रूप करते हैं, ऐसी शंका कदापि नही करनी चाहिए; क्योंकि जैसे दावानल से जलता हुआ वन स्वयमेव मेघ बरसने से शान्त हो जाता है, उसी प्रकार मुनियों के तप के प्रभाव से स्वयं ही क्रूर जीव समता रूप प्रर्वतने लग जाते हैं, योगीश्वर उनको प्रेरणा कदापि नहीं करते। जिस प्रकार शरद ऋतु में अगस्त्य तारा के संसर्ग से जल निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार समभावयुक्त योगीश्वरो के प्रभाव से ग्रह, यक्ष, किन्नर तथा मनुष्य क्षोभ को प्राप्त होते हैं और इन्द्रगण हर्षित होते है तथा हाथी, दैत्य, सिह, अष्टापद, सर्प इत्यादि क्रूर प्राणी अपनी क्रूरता को छोड़ देते हैं और यह जगत्

---

[103] ज्ञानार्णव 24/17

[104] वही 24/18-19

रोग, वैर, प्रतिबन्ध, विभ्रम तथा भयादिक से रहित हो जाता है। इस पृथ्वी में ऐसा कौन सा कार्य है, जो योगीश्वरों के साध्य न हो। जिस प्रकार चन्द्रमा जगत् में किरणों से सघन झरता हुआ अमृत वर्षाता है और सूर्य तेज किरणों के समूह से अन्धकार का नाश करता है तथा पृथ्वी समस्त भुवनों को धारण करती तथा पवन समस्त लोक को धारण करता है, उसी प्रकार यतीन्द्र भी साम्यभाव से जीवों के समूह को शान्तभावरूप करते हैं। क्षीण हो गया है मोह जिसका और शान्त हो गया है कलुष-कषाय रूप मैल जिसका ऐसे समभावों में आरूढ़ हुए योगीश्वर को आश्रय करके हरिणी तो सिंह के बालक को अपने पुत्र की बुद्धि से स्पर्श करती व प्यार करती है, गौ व्याघ्र के बच्चे को पुत्र की बुद्धि से प्यार करती है, मार्जारी हंस के बच्चे को स्नेह की दृष्टि से वशीभूत हो स्पर्शती है तथा मयूरी सर्प के बच्चे को प्यार करती है, उसी प्रकार अन्य प्राणी भी जन्मजात वैर को मदरहित हो छोड़ देते हैं। कोई तो नम्रीभूत होकर पारिजात के पुष्पों से पूजा करता है और कोई क्रुद्ध होकर मारने की इच्छा से गले मे सर्प की माला पहराता है, इन दोनों में जिसकी सदा समभाव रूप वृत्ति हो, वही योगीश्वर समभाव रूपी क्रीडावन में प्रवेश करता है और ऐसे समभाव रूप क्रीडावन में ही केवलज्ञान के प्रवेश का अवकाश है। जिस मुनि के मन में वन से नगर, शत्रु से मित्र, लोष्ट से कंचन, रस्सी व सर्प से पुष्पमाला, पाषाण शिला से चन्द्रमा उज्जवल शयया इत्यादिक पदार्थ अन्तः करण की कल्पना से किञ्चिन्मात्र भी उत्कृष्ट दिखाई नहीं देते, उन मुनि को आर्य सत्पुरुष परम उपशान्तरूप पदवी को प्राप्त हुआ कहते हैं। जिस मुनि का चित्त महलों के शिखर में और श्मसान में तथा स्तुति और निन्दा के विधान मे, कीचड़ और केशर में, पल्यंक और काँटों के अग्रभाग में, पाषाण और चन्द्रकान्त मणि में, चर्म और चीन देशीय रेशम के वस्त्रों में और क्षीण शरीर व सुन्दर स्त्री में अतुल्य शान्तभाव के प्रभाव से विकल्पो से स्पर्शित न हो, वही एक प्रवीणमुनि समभाव की लीला के विलास का अनुभव करता है।[105]

---

[105] ज्ञानार्णव 24/20-29

संयम और परमात्म स्मरण

जब महात्मा गाँधी गोलमेज परिषद में भाग लेने जा रहे थे तो राह में स्विटजरलैंड में रुके। वहाँ विश्व नागरिक संगठन के अध्यक्ष पियरे ने उनका स्वागत किया। उन्होंने गाँधी जी के समक्ष एक शंका समाधान हेतु रखी कि गाँधी जी! यह बताइए कि नेता बनने के लिए क्या गुण होने चाहिए ? गांधी जी ने साथ बैठे लोगों से कहा कि आप लोग इसका उत्तर दीजिए। साथियों ने कहा कि उसके उत्तर में यदि हम कहें कि नेता होने के लिए सत्यवादी होना आवश्यक है, तो आप कहेंगे कि शीलवान् भी होना चाहिए, उसमें यह गुण भी होना चाहिए, वह भी होना चाहिए। तब गांधी जी ने कहा कि बहिरंग में संयम और अन्तरङ्.ग में परमात्मा का स्मरण - ये दो गुण जिसमें हों, वही नेता बनने योग्य है, अन्य नहीं। संयम सहित थोड़ा भी ज्ञान मूल्यवान् है। विद्याध्ययन भी उसी से कीजिए, जो संयमी हो।[106]

आहार की लम्पटता छोड़ो

तपस्वी जीवन का सबसे बड़ा काम है इच्छाओं का दमन करना। उसमें भी भोजन की लम्पटता का दमन करना तो साधु के लिए मुख्य पीड़ा है। यदि ऐसा भी न कर सका तो उसे नाम मात्र का साधु कहना चाहिए। वह अभी मुनि जीवन की प्रथम सीढ़ी पर भी नहीं चढ़ पाया है। साधु के लिए भोजन की गृद्धता एक बड़ा दुर्गुण है और इसी से जैन शास्त्रों में बारह प्रकार के तपों में प्रथम नाम अनशन तप का गिनाया है। प्रचीन महार्षियों ने जिह्वा लम्पटता में बहुत दोष बताए हैं। यथा-

होइ णरो णिलज्जो पजहइ तवणाण दंसणचरित्तं।

आमिस कलिणा छुइओ छायं मइलेइ य कुलस्स।।

आहार का लोलुपी पुरुष निर्लज्ज हो जाता है। वह यह भी नहीं देखता है कि मेरा पद क्या है? वह तो तपश्चरण, ज्ञानाभ्यास, दर्शन, चारित्र सबको छोड़ भोजन में पड़ता है। यहाँ तक कि मांस, उच्छिष्ट, अभक्ष्यभक्षण में भी आसक्त हो उत्तम कुल की कान्ति को मलिन करता है।

अवधिट्ठाणं णिरयं मच्छा आहारहे दुगच्छंति।

तत्थेवाहारभिलासेण गदो सालिसित्थो वि।।

---

[106] रतनलाल कटारिया का लेख-श्रमण का भिक्षा धर्म

स्वयम्भूरमण समुद्र का महामच्छ जीवों का भक्षण करने से सातवें नरक में जाता है, किन्तु सालिसिक्थ नाम का एक छोटा सा मत्स्य जो उस महामच्छ के कान में रहता है, जिसमें किसी जीव के भक्षण की सामर्थ्य नहीं है, वह वहाँ बैठा ही खाली जीवों के खाने की लालसा किया करता है, उसी से वह सातवें नरक जाता है -

चक्कधरो वि सुभूमो फलरसगिद्धीए वंचिओ संतो।

णट्ठो समुद्दमज्झे सपरिजणो सो गओणिरयं।।

सुभौम चक्रवर्ती जिसकी कथा पुराणों में आती है, उसका एक वैरी देव उसे मारने वेष बदलकर आया और उसे स्वादिष्ट फल चखाए। उन फलों को खाने की लालसा से ठगाया जाकर सुभौम देव के साथ हो गया और समुद्रमार्ग से जाता हुआ वह सपरिवार उस देव के द्वारा मारा जाकर नरक में गया।

जीवस्स णत्थि तित्ती चिरं पि भुंजंतयस्स आहारं।

तित्तीए विणा चित्तं उच्छूरं उद्धदं होइ।।

अनादि काल से आहार करते रहने पर भी इस जीव के तृप्ति नहीं हुई और तृप्ति के बिना चित्त में उद्वेग हो रहा है। क्षुधा वेदना से आहार की चाह बढ़ती रही है। यह क्षुधा तो वेदनीय कर्म के नाश से मिटेगी, आहार से नहीं।

अच्छिणिमेसणमित्तोआहारसुहस्स सो हवइ कालो।

गिद्धीए गिलइ वेगं गिद्धीए विणा ण होइ सुहं।।

कौर के आस्वादन से उत्पन्न होने वाले सुख का काल नेत्र के टिमकारने मात्र है। ज्यों-ज्यों ग्रास से रस निकलता जाता है, त्यों-त्यों वह गृद्धता से उसे जल्दी-जल्दी निगलने लगता है। गृद्धता के बिना स्वाद का सुख नहीं और यह गृद्धता ही सब अनर्थों का मूल है।

जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन :- श्री आनन्द स्वामी रणवीर को जेल में उपनिषद् पढ़ाने जाते थे। रणवीर जी जेल में भी प्रसन्न रहते थे। एक दिन वे उदास थे। वे आनन्द स्वामी से बोले कि रात मैंने जो स्वप्न देखा है, वह इस प्रकार है - "मेरी माँ बाल खोले हुए है और मैं उसके बाल पकड़ कर घसीट रहा हूँ।'' श्री आनन्दस्वामी ने जेलर से पूछा कि रणवीर को कैसा भोजन दिया

जाता है जेलर ने बताया कि रसोइया तो अच्छी बनाता है, किन्तु रसोइया वह कैदी है, जिसे अपनी माँ के कत्ल करने के अपराध मे आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया है।

श्री गणेशप्रसाद वर्णी के जीवन की घटना है। दिल्ली में एक रात उन्हें स्वप्न आया कि मेरे पीछे मुझे मारने एक कसाई दौड़ रहा है। मै बचने का प्रयास कर रहा हूँ। सबेरे उन्होंने उस महिला से पूछा, जिसके यहाँ बीते दिन उनका भोजन हुआ था। पूछा - तुम्हारे यहाँ के भोजन में क्या बात थी कि मुझे ऐसा स्वप्न आया है? उस महिला ने बताया - महाराज! मेरा बनाया भोजन तो शुद्ध था, किन्तु मेरा लड़का मांसाहारी है। मै उसके द्वारा अर्जित आमदनी मे से घर का खर्च चलाती हूँ। उसी आमदनी मे से आपके भोजन की व्यवस्था की थी। उन्होंने कहा - भविष्य मे मुझे ऐसी आमदनी मे से कोई श्रावक मुझे भोजन न कराए।

हरिद्वार के मोहन आश्रम के वानप्रस्थी श्री हसराज के पास जाकर बोले कि मुझे स्वप्न में लाल रंग की साड़ी पहीने एक युवती दिखती है। हंसराज ने उनसे पूछा - क्या तुमने सिनेमा देखा है? अथवा कोई अश्लील पुस्तक पढ़ी है? वानप्रस्थी ने कहा कि ऐसा तो मैंने नहीं किया। एक सेठ ने अपनी लड़की को पाँच हजार रुपए लेकर अधिक उम्र के व्यक्ति के साथ विवाह किया अर्थात बेचा है, उन्हीं रुपयों से जो भोजन बना था, उसमें से मैंने भी भोजन किया है।

अहिंसा और निर्भयता

अहिसक रहने के लिए निर्भय होना आवश्यक है। हमारी धार्मिक भावना सुप्त है और हम लोग इसी कारण हमेशा भयभीत बने रहते हैं। हम लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार की सत्ताओ से डरते है। अपने पुरोहितों और पण्डितो के सामने हम मन की बात खुलकर नहीं कह पाते। राजसत्ता से भी हम थर-थर काँपते रहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारा यह आचरण सबके लिए अकल्याणकारी है। हमारे आध्यात्मिक शैक्षणिक अथवा

राजनीतिक शिक्षकों या शासकों की यह इच्छा कभी नहीं रही होगी कि हम सत्य को उनसे छिपाते रहें। निर्भयता का गुण धार्मिक चेतना के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। हम भगवान् से डरना सीखें तो हमारा आदमी से डरना खत्म हो जाय। यदि हम इस तथ्य को समझ लें कि हमारे भीतर दिव्य अंश है और हम जो कुछ करते हैं या सोचते हैं, वह उसका साक्षी है और वही दिव्य अंश हमारी रक्षा करता है, हमें सच्ची राह बतलाता है, तो यह बात बिल्कुल साफ हो जाती है कि हम भगवान् के भय के सिवा धरती पर किसी अन्य भय को मानने से इन्कार कर देंगे। जो राजाओं से भी ऊँची चीज हैं और साथ ही यह हर प्रकार की राजभक्ति का एक सुनिश्चित आधार भी है।

भगवान महावीर ने बाल्यावस्था से ही निर्भयता को अपनाया। एक दिन कुण्डलपर में एक बड़ा हाथी मदोन्मत्त होकर गजशाला से बाहर निकल भागा। वह मार्ग में आने वाले स्त्री-पुरुषो को कुचलता हुआ, वस्तुओं को अस्त-व्यस्त करता हुआ इधर-उधर भागने लगा। उसे देखकर कुण्डलपुर की जनता भयभीत हो उठी और प्राण बचाने के लिए यत्र-तत्र भागने लगी। नगर में भारी उथल-पुथल मच गई। श्री वर्द्धमान अन्य बालकों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, मदोन्मत हाथी उधर ही झपटा। हाथी का काल जैसा विकराल रूप देखकर बालक भयभीत होकर इधर-उधर भागे, परन्तु वर्द्धमान ने निर्भय होकर कठोर शब्दो मे हाथी को ललकारा। हाथी को वर्द्धमान की ललकार सिंह गर्जना से अधिक प्रभावशाली प्रतीत हुई, अतः वह सहमकर खड़ा हो गया। भय से उसका मद सूख गया। तब वर्द्धमान उसके मस्तक पर जा चढ़े और अपनी वज्रमुष्टियो (मुक्को) के प्रहार से उसे निर्मद कर दिया।

कुण्डलपुर की जनता ने राजकुमार वर्द्धमान की निर्भयता और वीरता की बहुत प्रशंसा की और वर्द्धमान को "वीर" नाम से पुकारने लगी।

एक दिन सगम नामक एक देव अत्यन्त विषधर नाग का रूप धारण कर राजकुमार की निर्भीकता तथा शक्ति की परीक्षा करने आया। जहाँ पर वर्द्धमान कुमार अन्य किशोर बालकों के साथ एक वृक्ष के नीचे खेल रहे थे वहाँ पर विकराल सर्प फुंकार मारता हुआ वह उस वृक्ष से लिपट गया। उसे देखकर सब लड़के भयभीत हुए। अपने-अपने प्राण बचाने के लिए वे इधर-उधर भागने लगे, चीत्कार करने लगे, कुछ भय से मूर्च्छित होकर पृथ्वी

पर गिर पड़े, परन्तु कुमार वर्द्धमान सर्प को देखकर रेच मात्र भी न डरे। उन्होंने निर्भयता से सर्प के साथ क्रीड़ा की और उसे दूर फेक दिया। तब राजकुमार वर्द्धमान की निर्भयता देखकर वह देव बहुत प्रसन्न हुआ और उसने प्रकट होकर तीर्थंकर वर्द्धमान की स्तुति की एवं उनका नाम महावीर रखा।

आतंकवाद

भारत अनेक वर्षो से पाकिस्तानी अतंकवाद का सामना कर रहा है। इसकी शुरूआत तब से हुई, जब उसने भारत के साथ संविधान द्वारा वैध तथा लोकंतन्त्र द्वारा समर्थित जम्मू व कश्मीर के विलय को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। एक लम्बे समय से इस्लामाबाद के शासक कश्मीर मुद्दे का अपने पक्ष में समाधान करने के लिए सैनिक टकराव पर विश्वास करते रहे। सन् 1948, 1965 तथा 1971 में उसके द्वारा छेड़ी गई लड़ाईयाँ इसके प्रमाण हैं। अपने इस दुष्प्रयास में पूरी तरह असफल रहने के बाद पाकिस्तान में भारत विरोधी ताकतों ने तय किया कि भारत देश में अलगाववाद को भड़काने के प्रमुख माध्यम के रूप में आतंकवाद और मजहबी चरमपंथ को उकसाया जाए। यथार्थ में वे एक खतरनाक भ्रम को पाले हुए हैं। खुले सैनिक टकराव से जो चीज वे हासिल नहीं कर सके, वे उसे सीमा पार से चलाए जा रहे आतंकवाद के जरिए कभी भी हासिल नहीं कर पाऐंगे। पंजाब में उन्होंने जो आतंकवादी गतिविधियाँ चलाई, उनमें वे पूरी तरह विफल रहे। आतंकवाद से पंजाब में खून जरूर बहा, किन्तु आखिर में पंजाब में इसका खात्मा हुआ। हिन्दू-सिख एकता पर इससे कोई आँच नहीं आई। पंजाब व कश्मीर में भी आतंकवादियों को असफलता ही हाथ लगेगी। 13 दिसम्बर 2001 को हमारी संसद पर हुए आतंकवादी हमले ने सारी मर्यादायें तोड़ दी। अफगानिस्तान के तालिबान और अलकायदा जैसे संगठन विकृत मानसिकता और एक अत्यधिक अनैतिक सामाजिक-राजनैतिक एजेंडा के द्योतक हैं, जो पंथनिरपेक्ष और लोकतन्त्र के आदर्शो को न केवल नकारता है बल्कि यह राष्ट्रीय-सीमाओं का भी सम्मान नहीं करता। विश्व में अपना आधिपत्य जमाने के उद्देश्य से यह देश के भीतर और पड़ौसी तथा दूर-दराज के देशों मे आतंकवाद को व्यापक रूप से फैलाता है। यह बात समझ में नहीं आती कि लोग क्यों स्वयं मरने के लिए तैयार हो जाते हैं? वे कैसे आतंकवाद के

समर्थन में मज़हबी जुनून पैदा कर देते हैं? अपने हिंसक तरीकों, असहिष्णुता और कट्टरता के कारण वे अपने आपको मानवता से अलग कर लेते हैं और बर्बरता में उनका पतन हो जाता है। ऐसे बर्बर लोगों को विश्व के किसी भी देश में थोड़ा सा भी पाँव जमाने देना पूरे समय समाज के लिए खतरे को आमंत्रित करना होगा। इसीलिए भारत ने न्यूयार्क और वाशिंगटन में 11 सितम्बर 2001 को हुए भयानक आतंकवादी हमले के बाद अफगानिस्तान में आतंकवाद के विरुद्ध अमेरिका की लड़ाई में अन्तर्राष्ट्रीय गठबंधन को पूरी दृढ़ता के साथ सर्मथन दिया। आतंकवाद हिंसक मस्तिष्क की उपज है, इस की समाप्ति होनी चाहिए।

धार्मिक आर्थोडाक्सी ने समाज के भीतर समाज बना दिए हैं क्योंकि आदमी ने धर्म के रूप मे सबसे ज्यादा बड़ी ताकत पैदा की है। संसार की आधुनिक सुविधाओं ने आतंकवाद को ज्यादा असरदार बना दिया है। सूचना क्रान्ति के बाद अब आतंकवादी तत्त्व सरकारों के हिस्से बनकर काम कर रहे हैं। सूचना क्रांति जोड़ने और तोड़ने दोनों के ही काम करती है। इसके विस्तार के साथ ही लोगों में अपनी शख्सियत पहचानने की इच्छा बढ़ी। अंतरर्राष्ट्रीय अस्थिरता बढ़ने के साथ ही धार्मिक कट्टरपन, जातीय या स्थानीय अतिवाद, जिगोवाद और कट्टरवाद जैसे विचारों को तेजी से फैलने में मदद की। दुनिया में तेल के सारे स्रोतों में से 80 फीसदी उन इलाकों में हैं जो राजनीतिक रूप से समस्याग्रस्त हैं, क्योंकि तेल की प्रतियोगिता बढ़ रही है।

साम्प्रदायिकता और अहिंसा

साम्प्रदायिकता का मूल स्रोत धर्म को सही रूप में न समझना ही है। साम्प्रदायिक भाव तभी पैदा होता है, जब हम दूसरे को सर्वथा गलत समझने लगते हैं। भगवान् महावीर ने दूसरे के दृष्टिकोंण को समझने के लिए अनैकान्तिक दृष्टि दी है। सांसारिक व्यक्ति सत्य का आंशिक रूप ही समझता है, पूर्ण को समझना उसके वश की बात नहीं; क्योंकि वह पूर्णज्ञानी नहीं है। अत: हम वस्तु के जिन गुण धर्मो का विचार कर रहे हैं, उनके आगे शेष गुण धर्मों को गौण कर देना चाहिए। मुख्य और गौण विवक्षा के अनुसार वस्तु तत्त्व की सिद्धि होती है। इसी को न समझने के कारण साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला है। पुराने जमाने से साम्प्रदायिकता पनपती रही है। किन्हीं भी दो

धर्मों के बीच के झगड़े साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत ही आयेंगे। समाज में फैले अन्धविश्वास, अवैज्ञानिक सोच, अशिक्षा, बीमारी, गैरबराबरी, अपमान, भूख, बेरोजगारी, गंदी राजनीति, केवल किसी तरह पैसा कमाने की होड़, धर्मांधता, समाज के बड़े हिस्से को समाज के महत्वपूर्ण फैसले से अलग रखना आदि साम्प्रदायिकता के फलने-फूलने में खाद पानी का काम करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी कारण हो सकते हैं। साम्प्रदायिकता दो विचार सरणियों की टकराहट है।. एक दूसरे से असहमत होने के कारण अपने विचारों की रक्षा और. उसकी सर्वोपरिता के लिए मनुष्यों के अलग-अलग समूह जो धर्म और प्रजाति या रंगभेद के कारण बंटे होते है, आपस में टकराते हैं और भारी खून-खराबे पर आमादा होते हैं। इसके पीछे हरवर्ग (धर्म, प्रजाति या मानव समूहों) को यह आशंका और भय निरन्तर बना रहता है कि हमारा दूसरा वैचारिक प्रतिद्वन्द्वी हमारे मिथकों, स्मृतियो, विचारो और मानवीय सार तत्वों को नष्ट कर देगा और इस तरह हमारी पहचान नष्ट हो जायगी और हमारा पृथक् अस्तित्व नष्ट हो जायेगा। इस प्रकार की आशका प्रेम और भाईचारे की भावना से ही दूर की जा सकती है।

यदि आप टिकिट बंटवारे को देखें तो किसी भी संसदीय क्षेत्र के लिए विचार सामान्य मतदाता सूची पर नहीं बल्कि जाति और धर्म के आधार पर जीतने और हारने की स्थितियो को देखकर प्रत्याशियो का चुनाव किया जाता है। यही ढोंग है, जो धर्मनिरपेक्षता को हास्यास्पद बनाता है। आज कई पार्टियों का अस्तित्व साम्प्रदायिकता के आधार पर खड़ा है। इस तरह चुनाव साम्प्रदायिक सौहार्द्र की जगह जनता मे साम्प्रदायिक उन्माद, विष और मानसिक कुण्ठा का संचार करता है। अल्पसंख्यक इस देश मे निर्वासित अनुभव करते हैं, जबकि यहाँ की मिट्टी पर उनका भी उतना ही हक है, जितना यहाँ पैदा होने वाले किसी भी व्यक्ति का है। जब समाज के किसी हिस्से को अपमानित करेंगे, उसके प्रति उदासीन रहेंगे उनको बराबरी का दर्जा नहीं देंगे, उनकी हित चिन्ता नही करेंगे तो इन स्थितियो मे प्रतिक्रिया, संघर्ष और विखण्डन होना तय है।

आज देश मे उन लोगों का जोर दिखायी दे रहा है, जो जनता के बीच साम्प्रदायिक घृणा, हिंसा, अशान्ति और अव्यवस्था फैला रहे हैं। ये अराजक

तत्त्व निडर होकर लोगों की हत्यायें करते हैं, घरों में आग लगाते हैं, गरीबों की बस्तियाँ उजाड़ते हैं, तोड़-फोड़ आगजनी से देश की अरबों रुपए की सम्पत्ति नष्ट करते हैं। दंगों और कर्फ्यू आदि के माध्यम से जनजीवन को अस्त-व्यस्त करके उत्पादन को असम्भव बनाते हैं। इस प्रकार ये देश की अर्थव्यवस्था को चौपट कर राष्ट्रीय स्वतंन्त्रता और सम्प्रभुता को खतरा पैदा करते हैं। ऐसे लोगो से समाज को सावधान रहना है।

साम्प्रदायिक घृणा और हिसा का जवाब साम्प्रदायिक घृणा और हिसा से नहीं दिया जा सकता है, यह बात सभी को समझनी चाहिए। इसके लिए अहिसा की शिक्षा दी जानी चाहिए। घृणा और हिसा फैलाने वाले लोगों से डरना नहीं चाहिए। भगवान महावीर, बुद्ध और महात्मा गाधी ने हमे निडरता की शिक्षा दी है, उसी मार्ग पर सभी को चलना चाहिए। देश की मूल समस्याओ गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, महँगाई आदि के निराकरण के उपाय करना चाहिए।

अज्ञानी लोगों को धर्म के नाम पर भड़कया जाता है, अत: अज्ञान को दूर करना चाहिए। रूढ़ियो और कर्मकाण्डों से अपने को मुक्त करना चाहिए। अन्धविश्वासो को दूर से ही फेंक देना चाहिए। भौतिक जगत् की कर्मा भौतिक जगत मे पूरी की जाय और भगवान् की भक्ति आत्मा की उन्नति के लिए की जाय। भौतिक जगत् को ऐसा बनाया जाय, जहाँ मनुष्य को न्याय मिल सके और अवश्यक आवश्यकताये पूर्ण हो सके। इसके लिए सह-अस्तित्व की भावना पर जोर देना चाहिए। ऐसा अहिसा द्वारा ही सम्भव है।

स्वतन्त्रता और अहिंसा

जैन धर्म प्राणिस्वातन्त्र्य पर बल देता हे। प्रत्येक प्राणी को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। स्वतन्त्र का अर्थ यह नही है कि हम किसी प्राणी की आजादी मे रुकावट पैदा करें। आजादी का आनन्द लेने का अधिकार सबको है। आजादी में प्रत्येक की आजादी सुरक्षित है। परतन्त्रता मानव सभ्यता पर कलंक है। प्रत्येक प्राणी देह की परतन्त्रता से मुक्ति की प्राप्ति चाहता है। आर्थिक दृष्टि से आवश्यकता से अधिक उसका शोषण न करे, यह समाज की माँग है। विचारों को बेरोक-टोक अभिव्यक्त न करने की स्थिति मानसिक

पराधीनता की हेतु है। परतन्त्रता परिवार में भी हो सकती है। जब तक सभी प्रकार की परतन्त्रता से मुक्ति नहीं मिलेगी, तब तक मनुष्य स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं कर सकता। देह की परतन्त्रता का कारण स्वंय का अज्ञान, मिथ्या श्रद्धान, अविरति, प्रमाद और कषाय हैं। जब तक ये जीव में हैं, तब तक जीव सच्चा अहिंसक नहीं है, क्योंकि अपने ही बुरे परिणामों के कारण जीव भाव प्राणों का विनाश कर रहा है। अन्य प्रकार की परतन्त्रता आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक हिंसा के अन्तर्गत आती है। अतः गृहस्थ जीवन में हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि हम अत्यल्प हिंसा करें। गृहस्थ संकल्पी हिंसा का पूर्ण त्यागी होना चाहिए। उसे आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसा कम से कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। मुनि पूर्ण अहिंसक होते हैं। सच्ची स्वतन्त्रता वीतरागी सन्त की होती है। निज में स्थिर होकर जो अकथनीय आनन्द की उपलब्धि होती है, उसे इन्द्र, नागेन्द्र और अहमिन्द्र भी वर्णित नहीं कर सकते हैं। सदाचार, सहानुभूति, प्रेम, नैतिकता आदि के माध्यम से मनुष्य दूसरे को स्वतन्त्र कर सकता है और स्वयं भी स्वतन्त्र रह सकता है। परतन्त्रता स्वप्न में भी दुःख उपजाती है और जीने के इरादों को कमजोर करती है। अच्छे इरादों पर डटे रहो, यही स्वतन्त्रता का मन्त्र है। अहिंसा इस मन्त्र का साधन है।

सह अस्तित्व और अहिंसा

अहिंसा सह अस्तित्व की भावना पर बल देती है। सह अस्तित्व का आशय सहजीवन से है। सब साथ-साथ जियें, सहभागिता बढ़े। परस्परता का बोध कर्म से प्रकटे। अत्मनिभरता की ओर सबके कदम एक साथ बढ़े। इस सबका अर्थ है कि व्यक्ति समाजोन्मुखी हो। उनमें साथ-साथ जीने का आन्तरिक बोध जागृत हो। उन्हें एक दूसरें के होने का अनुभव हो। वे सहजीवन की मर्यादा का पालन करें।

सहअस्तित्व हेतु कुछ सुझाव दिए गए हैं :-

1. प्रत्येक व्यकित अपने कर्त्तव्य का पालन करे। जहाँ तक हो सके दूसरे के प्रति विनयी, जागरूक, त्यागी, सेवाभावी और परोपकारी रहे।

2. समता भाव प्रत्येक के जीवन में आए।

3. दूसरों के अस्तित्व का सम्मान करें।
4. सदा दूसरों की सहायता करें।
5. समाज के प्रति समर्पण की भावना हो।
6. सत्य का समर्थन करे।
7. बुराईयों से दूर भागें। बुराईयों का प्रतीकार करे।
8. अपने से छोंटो के प्रति प्रेमभाव और बड़ों के प्रति आदर रखें।
9. कथनी और करनी में अन्तर न हो।
10. हमारी धार्मिकता दूसरों के मार्ग में बाधक न हो।
11. हम जातीयता के संकीर्ण दायरे से निकले।
12. मानव मूल्यों का सम्मान करें।
13. हमारा चरित्र और विचार उदात्त हों।
14. हम जनहित का ध्यान रखें।
15. अन्तरात्मा की आवाज को पहिचानें।
16. अपने और समाज के साथ धोखा न करें।
17. सत्संगति को महत्त्व दें।
18. राष्ट्र के प्रति भक्ति हो, किन्तु अन्धी राष्ट्रीयता न हो।
19. असामाजिक तत्त्वो से सावधान हों।
20. सभी सुखी रहें, यह भावना हो।
21. भूल का प्रायश्चित करे, भूल को दोहरायें नहीं।

एक प्रेरक कहानी

हजरत फरीदउद्दीन अत्तार, जो कि स्वय एक बड़े सूफी हुए हैं, ने एक महान सूफी महिला सत राबिया बसरी के बारे मे एक सुन्दर कहानी लिखी है। एक बार जब राबिया पहाड़ों पर गई हुई थी तो जगली पशुओं का एक झुंड-हिरण, बारहसिघे, पहाड़ी बकरियाँ और पहाड़ी गधे उनके आस-पास बैठे

हुए थे। अचानक हसन-अल बसरी उस स्थान पर आये और उन्होंने राबिया को देखा तो उसके पास पहुँच गए। वन के उन पशुओं ने जब हसन को देखा तो सब डर के मारे भाग गए। हसन ने यह सब देखा तो बड़े परेशान हुए। उन्होंने राबिया की ओर देखा और पूछा - यह डर के मारे मुझसे क्यों दूर भाग गए हैं? जबकि आपके साथ बड़ी मित्रता पूर्वक बैठे हुए थे। राबिया ने पूछा - आज आपने क्या खाया है जवाब मिला- चरबी मे पकाया हुआ प्याज। राबिया बोली - "आप इनकी चर्बी खाते है, फिर यह आपसे दूर क्यो नहीं भागेगे? यदि हम अपने भोजन के प्रति सवेदनशील हो जाँय तो प्रकृति हमारा साथ देगी।

अनर्थदण्डविरमण व्रत को अपनाइए :- उपकार न होकर जो प्रवृत्ति केवल पाप का कारण है, वह अनर्थदण्ड है।[107] दिशाओ की मर्यादा के भीतर प्रयोजन रहित पापो के कारणो से विरक्त होने को व्रतचारियो मे अग्रगण्य पुरुष अनर्थदण्ड व्रत कहते है।[108] अनर्थदण्ड के पाँच भेद है- (1) पापोपदेश (2) हिसादान (3) अपध्यान (4) दु:श्रुति और (5) प्रमादचर्या।

तिर्यक्‌वणिज्या, क्लेश वणिज्या, हिसा, आरम्भ, ठगाई आदि की कथाओ के प्रसग उठाने को पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड जानना चाहिए।[109] फरसा, तलवार, खनिज, अग्नि, आयुध, सीगी, साकल आदि हिंसा के कारणो के माँगे देने को पण्डितजन हिसादान नामक अनर्थदण्ड कहते है।[110]

दूसरो का जय, पराजय, पासा बाँधना, अगो का छेदना और धन का अपहरण आदि कैसे किया जाय? इस प्रकार मन से विचार करना अपध्यान है।[111]

आरम्भ, परिग्रह, दु:साहस, मिथ्यात्व, द्वेष, राग, गर्व, कामवासना आदि से चित्त को क्लेशित करने वाले शस्त्रो का सुनना, वाँचना दु:श्रुति नामक अनर्थदण्ड है।[112]

---

[107] अमल्युपकार पापादानहेतुरनर्थदण्ड 11 मर्वार्थमिद्धि 7/21

[108] आभ्यन्तर दिग्विरतेरपार्थिकेभ्य मपापयोगेभ्य ।
विरमणमनर्थदण्डव्रत विदुर्व्रतधराग्रण्य.।। रत्नकरण्ड श्रावकाचार-74

[109] तिर्यक्क्लेशवणिज्या हिमारम्भ प्रलम्भनादीनाम्।
कथाप्रसङ्गप्रसव स्मर्तव्य पाप उपदेश.।। वही 76

[110] वही 77

[111] सर्वार्थसिद्धि 7/21

बिना प्रयोजन पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के आरम्भ करने को, वनस्पति छेदने को, पर्यटन करने को और दूसरों को पर्यटन कराने को प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड कहते हैं।[113]

जो इस प्रकार अन्य भी अनर्थदण्डों को जानकर उनका त्याग करता है, वह निरन्तर अहिसाव्रत का पालन करता है।[114]

मुनि तो पूर्णतया अहिसा का पालन करते हैं, अतः अनर्थदण्डविरमण का श्रावक के सन्दर्भ में विशेष कथन है। श्रावक प्रतिदिन अनेक ऐसे कार्य करता है, जिससे निष्प्रयोजन पाप की वृद्धि होती हे। अतः ऐसे कार्यों से बचना चाहिए। इस विषय में महात्मा गाधी के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :-

जब गाधी जी यरवदा जेल मे थे तो किसी कारणवश उन्हे दातुन मिलना बन्द हो गयी। इस पर काका साहब कालेलकर ने कहा- "बापू। यहाँ तो नीम के असंख्य पेड़ है। मै आपको प्रतिदिन ताजी दातुन ला दिया करूँगा।'' आप इतने चिन्तित न हो। फिर दूसरे दिन वे चार पाँच दातुन ले आए। उन्होंने उस का एक छोर काट कर कूची बनाई। उसे प्रयोग में लाने के बाद बोले "अब इसको कूची वाला भाग काट डालो और फिर नयी कूँची बना दो।''

यह सुनकर काका साहिब विस्मय के स्वर में बोले- "लेकिन बापू! यहाँ तो रोज नयी दातुन उपलब्ध है।'' बापू बोले - "यह तो मैं भी जानता हूँ, लेकिन हमे इसका अधिकार नही है।'' जब तक एक दातुन सूख न जाये, हम उसे कैसे फेक सकते है। प्रकृति को व्यर्थ नष्ट करने से क्या लाभ? प्रकृति का सरक्षण करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

एक बार बापू पण्डित जवाहरलाल नेहरू के साथ उनके घर आनन्द भवन मे ठहरे थे। प्रातः काल जब पण्डित जी ने उन्हें मुँह धोने के लिए जल दिया तो बापू जी ने अपनी आदत के अनुसार थोड़ा सा जल उपयोग कर शेष रख दिया। नेहरू जी ने कहा- बापू जी! जल ले लीजिए। बापू ने कहा - बस इतना ही पर्याप्त है। इस पर नेहरू जी ने कहा - बापू! यहाँ तो गगा, यमुना बहती है, फिर परवाह क्यों करते है? बापू जी ने कहा - यदि यहाँ

रत्नकरण्ड श्रावकाचार - 79

[113] वहीं 80

[114] पुरुषार्थसिद्धयुपाय-147

गंगा, यमुना बहती है तो उस पर मेरा ही अधिकार नहीं है। इस के ऊपर तो समस्त भारतवासियों का समान रूप से अधिकार है।

अनर्थदण्ड विरमण का यदि सभी राष्ट्र पालन करें तो विश्व में कहीं भी भुखमरी न हो। आज स्थिति यह है कि अमेरिका जैसे देश खाद्यान्न के भाव गिरने से बचाने के लिए लाखों टन गेहूँ समुद्र में डुबा देते हैं या खलिहानों में आग लगा देते हैं। हालेण्ड और डेनमार्क अपने यहाँ मक्खन के अंबार को नष्ट करने के लिए बेचैन रहते हैं, जब कि दुनिया की चौथाई आबादी को जिन्दगी में कभी घी और मक्खन चखने का भी सौभाग्य प्राप्त नहीं होता है। कुछ वर्ष पहले मुंबई शहर की मिल्क डेयरी ने दूध के भाव गिरने से बचाने के लिए हजारों लीटर दूध समुद्र में बहा दिया था, जबकि मुंबई शहर में ही हजारों नौनिहाल मौजूद थे, जिन्हें दूध की एक बूँद भी नसीब नहीं हो रही थी।

जैन साहित्य में स्त्रीकथा, चोरकथा, भक्तकथा तथा अवनिपाल कथा की पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड में गणना की गयी है। आजकल स्त्रीकथा नामक पापोपदेश के दुष्परिणाम प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। प्राय: नगरों में सेक्स के सम्बन्ध में सचित्र साहित्य की भारी मात्रा में माँग होती है। कभी-कभी समाचार पत्र तथा पत्रिकाओं आदि में भी कामोत्तेजक तस्वीरें एवं कहानियाँ प्रकाशित होती हैं, जिनका असर बच्चों के मस्तिष्क पर पड़ता है और वे यौन सम्बन्धी अपराध करते हैं।[115]

भारत में सिनेमा ही सबसे सस्ता मनोरंजन का साधन माना जाता है तथा बड़े-बड़े नगरों में प्रात: 10 बजे से रात्रि के एक बजे तक सिनेमा चलता रहता है। शिक्षाप्रद एवं अच्छी फिल्में बहुत कम बन पा रही हैं। अधिकतर फिल्मों मे स्वच्छन्द प्रणय दिखाया जाता है। अपराधी चलचित्र भी बड़ी मात्रा में बन रहे हैं। इस प्रकार अपराधी चलचित्र तथा रोमांस पर आधारित चलचित्र बाल अपराध के लिए उत्तरदायी हैं।[116]

---

[115] रूपसिंह चन्देल :अपराध. समस्या और समाधान पृ० 63 (किताब घर, गाँधीनगर, दिल्ली 110031)

[116] रूपसिंह चन्देल :अपराध· समस्या और समाधान पृ० 9-10 (किताब घर, गाँधीनगर, दिल्ली 110031)

आजकल अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं में अनेक प्रकार की चोरी, तस्करी और घोटालों के समाचार पूरे विवरण के साथ प्रकाशित होते हैं, इनके कारण चोर प्रवृत्ति के लोगों को चोरी की प्रेरणा मिलती है तथा वे चोरी के नए-नए तरीके सीखते हैं। अतः आवश्यक है कि पत्र पत्रिकाओं में चोरकथा न होकर नैतिक आदर्शों का उल्लेख हो, ताकि उन पर चलकर व्यक्ति अपेक्षित सुधार कर सके।

दूषित भक्तकथा के दुष्परिणाम आज हमारे सामने आ रहे हैं। भारत सरकार प्रतिदिन टेलीविजन पर अण्डों का विज्ञापन करती है। मांसाहार के विज्ञापन धड़ल्ले से दिए जाते हैं, जिससे मांसाहार को प्रोत्साहन मिल रहा है। देश की जनता धीरे-धीरे सर्वभक्षी बन रही है।

धर्मग्रन्थों में पशु वाणिज्य का निषेध किया गया है, किन्तु भारत सरकार विदेशी मुद्रा के लोभ में मांस का निर्यात उत्तरोत्तर बढ़ा रही है, फलतः कत्लखानों की संख्या बढ़ती जाती है। 1993 में कत्लखानों तथा मांस ससाधक इकाईयों का आँकड़ा 2657 था, जबकि 1995 ई० में 4000 हो गया। ये तो लाइसेंस प्राप्त बूचड़खाने हैं। अनधिकृत कत्लखानों की संख्या लाखों में है। आदमी को स्वस्थ रखने के लिए उसकी बीमारियों का इलाज खोजने के लिए कितने ही प्राणियो को अपनी बलि देनी पड़ती है। उसका अनुमान लगाइए, इन आँकड़ों से जो केवल एक देश अमेरिका के एक वर्षके हैं- प्रयोगों में मारे गए प्राणियों की संख्या 852830 शूकर 466240 बकरे 22691 कछुए, 190000 बिलाब 200000 कुत्ते 500000 खरगोश 700000 मेंढक 15 से 20 हजार के बीच और चूहे 40000000.

मद्यपान शरीर के लिए आवश्यक नहीं है, फिर भी इसे अपनाकर लोग अपने शरीर परिवार और समाज को अनर्थदण्ड देते हैं। शराब से शरीर के अगों पर बुरे प्रभाव पड़ते हैं। इससे यकृत खराब हो जाता है। अतिरिक्त ऊर्जा के कारण शरीर मे कोशिकायें मर जाती है, अधिक प्यास लगती है। शराब तंत्रिका प्रणाली को उत्तेजित करती है और बाद में शिथिल कर देती है। शराब विषों के प्रभाव को बहुत बढ़ा देती है। शराबी ज्यादा बोलता है, उसकी आवाज में लड़खड़ाहट आ जाती है। उसकी बुद्धि और विवेक नष्ट हो जाता है। वह मारपीट या गालीगलौज करने लग जाता है। वह आपे से बाहर हो

जाता है। उसे शीघ्र ही नींद आ जाती है या बेहोश हो जाता है। लगातार अधिक मात्रा में शराब पीने से व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है। वास्तव में शराबी व्यक्ति पूरे देश और समाज के लिए संकट है। उसके परिवार के बच्चे और पत्नी खाने-पीने और कपड़ों के लिए तरस जाते हैं और शराबी अपनी पूरी कमाई को शराब पर ही खर्च कर देता है।[117]

पुरानी पीढ़ी के लोग प्रात: उठकर भजन, पूजन, स्वाध्याय, जप, ध्यान वगैरह करते थे। इन सबको भूलकर आज का आदमी प्रात:काल अखबार पढ़ने बैठ जाता है, जिसमें अधिकांश भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और अवसरवादी मनोवृत्ति के काले कारनामे वर्णित रहते है। उनके चरित्र को पढ़ने वाले के ऊपर दूषित प्रभाव पड़ता है। बहुत कम राजनीतिज्ञ ऐसे होते हैं, जिनका चरित्र व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन में नयी स्फूर्ति का सचार करता है। इसीलिए शास्त्रों में अवनिपाल कथा को विकथा के अन्तर्गत परिगणित किया है।

अनर्थदण्ड व्रत संयम से गहन रूप मे सम्बद्ध है। उदाहरणार्थ मनुष्य खाने मे सयम रखे। यदि व्यक्ति अवमौदर्य व्रत का पालन करता हुआ भूख से कम भोजन करे तो उसके शरीर में स्फूर्ति रहेगी, आलस्य दूर होगा तथा काम मे मन लगेगा तथा शरीर पर व्यर्थ बोझ नही पड़ेगा, साथ ही देश का खाद्य संकट भी कम होगा। इसी प्रकार अधिकांश लोग अपना समय दूसरे की निन्दा करने में व्यतीत करते हैं। व्यक्ति की वाणी वश में नहीं होने से जगह-जगह, कलह, विसंवाद और झगड़े होते हैं। यदि वाणी का प्रयोग सोच समझकर किया जाय तो अपना भी मन शान्त रहता है, दूसरे का भी मन शान्त रहता है और पारस्परिक प्रीति बढ़ती है, अनर्थदण्ड भी नहीं भुगतना पड़ता है।

अनर्थदण्डविरात का पालन नही करने के कारण आज पर्यावरण का विनाश हो रहा है। प्रकृति का जीवन चक्र निरन्तर अबाध गति से चलता रहे, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम प्रकृति से उतना ही लें, जितना आवश्यक हो। उपभोग के कारण होने वाली प्रकृति की क्षति को हम पूरा करे। हमारी आवश्यक्ताओं की पूर्ति के लिए हम प्रकृति से जो लेते है, उसका बदला यदि हम नहीं चुकाते अर्थात् किसी न किसी रूप में प्रकृति की उस क्षति को पूरा करते हैं तो हम प्रकृति के चक्र को तोड़ते हैं, प्रकृति के नियमों

[117] अणुव्रत (1 मार्च 1997) पृ० 17 (श्री यशवन्त कोठारी का लेख)

में बाधा पहुँचाते हैं। परिणामस्वरूप, अभाव, गरीबी आदि समस्यायें खड़ी होती हैं। जो प्रकृति से लेता है, किन्तु उसका बदला नहीं चुकाता, उसे गीता ने स्पष्ट शब्दों में चोर कहा है :-

"तदैत्तानप्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।"

ईशावास्य उपनिषद् ने भी "तन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्ध नम्" के जरिये यही कहा है- "त्याग करके भोग करो, किसी दूसरे के धन की यानी दूसरे के श्रम से पैदा की हुई वस्तु की कामना मत करो।[118]

अनर्थदण्ड व्रत के अन्तर्गत किसी को हिंसा के उपकरण बेचने का निषेध किया गया है, किन्तु इस व्रत का पालन न करने के कारण विकसित राष्ट्र शस्त्रों के निर्माण पर अन्धाधुन्ध धन व्यय कर रहे हैं। निर्माण करने के बाद ये गरीब, अल्पविकसित या अर्द्धविकसित राष्ट्रों को बेचते हैं, जिससे अनेक देशों में अशान्ति, युद्ध, भुखमरी और निराशा फैलती रहे। ये देश और भी अधिक गरीब होते जाते हैं। आज विश्व का प्रत्येक देश घातक हथियारों के बनाने, रख-रखाव और प्रयोग पर जो धन व्यय कर रहा है, उसका उपयोग यदि मानव हित में हो तो कहीं भी अकाल, भुखमरी, महामारी और मौत की छाया न पड़े। कई राष्ट्र तो अपनी सकल राष्ट्रीय आय का 30%, 40% तक अस्त्र-शस्त्रों पर व्यय करते हैं, फलतः देश की अन्य योजनाओं की सम्पूर्ति हेतु विदेशों से ऋण लेना पड़ता है, जिसका सारा बोझ उस देश की जनता पर पड़ता है।

आज का विश्व गर्भपात के भयंकर पाप से गुजर रहा है। गर्भपात अर्थात् भ्रूण हत्या करवाने वाली अधिकांश महिलायें भ्रमित हैं। उनका सोचना है कि गर्भाधान के चार माह बाद ही गर्भस्थ शिशु में प्राणों का संचार होता है, इससे पूर्व बह मांस का पिण्ड ही होता है, जिसमें जीवन नहीं होता। आधुनिक बिज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि अंडाणु और शुक्राणु सजीव होते है, अतः उनके संयोग से बने जाइगोट में भी प्रथम क्षण से ही जीव का होना पाया जाता है, इसी कारण भ्रूण के रूप में उसमें जैविक वृद्धि पायी जाती है, जिससे पूर्ण शिशु का निर्माण होता है। निर्जीव की वृद्धि नहीं हो

---

[118] अणुव्रत (16 मार्च 1997) पृ० 29 सिद्धराज ढड्ढा का लेख।

सकती है। एक दिन के भ्रूण की हत्या करना भी एक पूर्ण मनुष्य की हत्या ही है। जब तक किसी भी स्त्री को अपने गर्भवती होने का आभास होता है, तब तक उसकी कोख में पल रहे बच्चे का दिल धड़क रहा होता है, इसलिए गर्भपात गर्भधान के बाद चाहे जितनी भी जल्दी कराया जाये, उसमें एक जीवित शिशु की हत्या होती है।[119] इस प्रकार भ्रूण हत्या मानव वध का क्रूरतम रूप है। इस उविषय में डा० आर० के० गोयल, आचार्य एवं विभागाध्यक्ष मेडीसिन विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज, अजमेर ने ठीक ही कहा है – "आज के इस वैज्ञानिक युग में माँ के गर्भ में शिशु का आना एक महज संयोग नहीं होकर एक सुविचारित एवं सोच-समझकर लिया जाने वाला निर्णय बन गया हे। यह एक अच्छा एवं आकर्षक परिवर्तन है। विडम्बना यह है कि कुछ माता-पिता इस प्रक्रिया को जिम्मेदारीपूर्वक नहीं लेते। इसके परिणाम और अधिक निर्मम, घातक एवं कष्टकारक होते हैं और गर्भपात के रूप में सामने आते हैं। अत: आज जनसामान्य के लिए यह आवश्यक है कि वह सोच-समझकर गर्भ में शिशु को आने दे, न कि उसके गर्भ में आने के पश्चात् गर्भपात के रूप में अविवेकपूर्ण और अमानवीय कदम उठाकर मानव जीवन के साथ खिलवाड़ करे।[120]"

अनर्थदण्ड विरमण व्रत को भली-भाँति जानने वाला व्यक्ति सब प्रकार की निरर्थक हिंसा से बचना चाहेगा, अत: अनर्थदण्ड व्रत की जीवन में बहुत उपयोगिता है।

अनैकान्तिक दृष्टि से सोचिए

किसी भी वस्तु को उसके अनेक पहलुओं से देखना, जाँचना अथवा उस तरह देखने की वृत्ति रखकर वैसा प्रयत्न करना अनेकान्त दृष्टि है।[121] अन्त कहते हैं अंश अथवा धर्म को। जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक अथवा अनेक धर्म वाली है। न वह सर्वथा सत् ही है और न सर्वथा असत् ही है, न वह सर्वथा नित्य ही है और न सर्वथा अनित्य ही है, किन्तु किसी अपेक्षा से वस्तु सत् है तो किसी अपेक्षा से असत् है, किसी अपेक्षा से

---

[119] डॉ० सुनील जैन, डॉ० त्रिशला जैन - माँ मुझे मत मारो, पृ० 17

[120] माँ मुझे मत मारो, पृ० 5

[121] सन्मति प्रकरण (प्रस्तावना) पृ० 84

नित्य है तो किसी अपेक्षा से अनित्य है। अतः सर्वथा सत्, सर्वथा असत्, सर्वथा नित्य, सर्वथा अनित्य इत्यादि एकान्तों का निरसन करके वस्तु का कथंचित् सत्, कथंचित असत्, कथंचित नित्य, कथंचित अनित्य आदि रूप होना अनेकान्त है।

एक ही वस्तु में परस्पर विरोधी दो धर्म कैसे रह सकते हैं? जिस प्रकार एक ही पुरुष एक ही समय में एक ही साथ भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से छोटा, बड़ा, बच्चा, बूढ़ा, जवान, पुत्र, पिता, गुरु, शिष्य आदि परस्पर विरुद्ध रूपों को धारण करता है, उसी प्रकार सत्व, असत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि धर्म भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से वस्तु में एक ही साथ पाए जाते हैं। जिस समय देवदत्त अपने पुत्र का पिता है, उसी समय अपने पिता का पुत्र भी है, अपने शिष्य का गुरु है तो अपने गुरु का शिष्य भी है। यदि किसी कम उम्र के जवान की अपेक्षा बूढ़ा है तो किसी अधिक उम्र के बूढ़े की अपेक्षा जवान भी है। तात्पर्य यह है कि एक ही साथ भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से एक ही वस्तु में अनेक विरोधी धर्म रहते हैं।[122] इसलिए पदार्थो में सर्वथा अत्यन्त विरोध नहीं कहा जा सकता। कथंचित् थोड़ा बहुत विरोध तो पदार्थों में पाया जाता है। जो एक वस्तु में धर्म है, वह दूसरों में नहीं है। वस्तुओं में कथंचित् विरोध हुए बिना भेद नहीं हो सकता। अतः कथंचित् विरोध तो प्रयत्न करने पर भी नहीं हटाया जा सकता, इसलिए वह अपरिहार्य अवश्यंभावी होने से दूषण रूप नहीं है।[123]

आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में लिखा है – "जो वस्तु तत्स्वरूप है, वही वस्तु अतत्स्वरूप भी है। जो वस्तु एक है, वही अनेक भी है, जो वस्तु सत् है, वही असत् भी है तथा जो वस्तु नित्य है, वही अनित्य भी है। इस प्रकार एक ही वस्तु में वस्तुत्व के निष्पादक परस्पर विरोधी धर्म- युगलो का प्रकाशन करना ही अनेकान्त है।[124]"

सापेक्ष दृष्टि में मात्सर्य का अभाव :- आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है –

---

[122] सदसन्नित्यानित्यादिसर्वथैकान्तप्रतिक्षेपलक्षणो अनेकान्तः 1
अष्टशती, अष्टसहस्री पृ० 286

[123] षड्दर्शन समुच्चय, पृ० 360

[124] समयसार : आत्मख्याति टीका 10/247

अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद् यथा परे मत्सरिण: प्रवाद:।

नयानशेषानविशेषमिच्छन् न पक्षपाती समयस्तथा ते।।

अन्य योग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका।

जिस प्रकार अन्य दर्शनों में यह हमारा पक्ष है, ऐसा दुराग्रह होने से अन्य दर्शन मत्सर भाव रखते हैं, उस प्रकार आपके दर्शन में मत्सरभाव नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण नयों को या परस्पर विरुद्ध बिचारों को आप अपेक्षावश एक समान देखते हैं।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आपके मत के सिवाय अन्य मत परस्पर ईर्ष्या, द्वेष रखते हैं, उस प्रकार आपके मत में किसी के साथ द्वेषभाव नहीं है। जैसे मीमांसकों का जो नित्य शब्द मानने का पक्ष है, वही बौद्धों के लिए प्रतिपक्ष है; क्योंकि बौद्ध मत में शब्द को सर्वथा अनित्य माना है। बौद्धों का जो शब्द को अनित्य मानना पक्ष है, वह मीमांसकों के लिए प्रतिपक्ष हुआ। इसी प्रकार अन्य वादों में भी विरोध आता है।

भगवान् जिनेन्द्र के वचन अनेकान्त रूप हैं। अनेकान्त सम्पूर्ण नयों के समूह को कहते हैं। जिस प्रकार बिखरे हुए मोतियों को एक पात्र में पिरो देने से हार बन जाता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पड़े हुए नय रूप मोतियो को स्याद्वाद रूपी एक सूत्र में पिरो दने से उसकी श्रुतप्रमाण संज्ञा हो जाती है।

प्रश्न- यदि प्रत्येक नय भिन्न रहने पर विरोधी है तो सबको मिला देने पर विरोध मिट सकता है?

उत्तर- जिस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए वादियों को यदि कोई मध्यस्थ युक्ति पूर्वक निर्णय करने वाला मिल जाता है तो वे विवाद छोड़कर शान्त हो जाते हैं, उसी प्रकार नय भी परस्पर शत्रुता न धारण कर ठहर जाते हैं। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान् का दर्शन सर्वनय स्वरूप होने से अविरुद्ध है; क्योंकि एक एक नय स्वरूप ही सब दर्शन हैं।[125]

प्रश्न- यदि भगवान् का दर्शन सम्पूर्ण दर्शन स्वरूप है तो वह सम्पूर्ण भिन्न-भिन्न दर्शनों में क्यों नहीं दिखाई देता है?

---

[125] स्याद्वाद मञ्जरी-व्याख्या-30

उत्तर- सम्पूर्ण नदियों का समूह ही समुद्र है, परन्तु भिन्न बहती हुई नदियों में वही नहीं दिखाई पड़ता है।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने कहा है :-

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णस्त्वयि नाथ द्रष्टयः।

न च तासु भवान् प्रदर्श्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः।।

जिस प्रकार सम्पूर्ण नदियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण दर्शन आपके दर्शन में तो मिलते हैं, परन्तु तो भी जिस प्रकार भिन्न रहने वाली नदियों में समुद्र नहीं दीखता, उसी प्रकार आपका दर्शन भी उन भिन्न-भिन्न दर्शनों में नहीं दीखता।

अनेकान्त की व्यापकता :- अनेकान्त दृष्टि जब अपने विषय में प्रवृत्ति होती है तब अपने स्वरूप के विषय में वह सूचित करती है कि वह अनेक दृष्टियों का समुच्चय होने से अनेकान्त तो है। इसी तरह अनेकान्त दूसरा कुछ नहीं है, वह तो भिन्न-भिन्न दृष्टि रूप इकाईयों का सच्चा जोड़ है। ऐसा होने से वह अनेकान्त होने पर भी एकान्त भी है। इसमें इतनी विशेषता है कि वह एकान्त यथार्थता का विरोधी नहीं होना चाहिए। सारांश यह है कि अनेकान्त में सापेक्ष एकान्तों का स्थान है ही। जैसें अनेकान्त दृष्टि एकान्त दृष्टि के आधार पर प्रवर्तित मतान्तरों के अभिनिवेश से बचने की शिक्षा देती है। वैसे ही अनेकान्त दृष्टि के नाम से जमने वाले एकान्त ग्रहों से बचने की भी शिक्षा देती हैं। जैसे प्रवचन अनेकान्त रूप है, ऐसा मानने वाला भी यदि उसमें आए हुए विचारों को एकान्त रूप से ग्रहण करे तो वह स्थूल रूप से अनेकान्त सेवी होने पर भी तात्विक दृष्टि से एकान्ती ही बन जाता है। इससे वह सम्यग्दृष्टि नहीं रहता। उदाहरणार्थ ज्ञान और आचार की एक बात हम यहाँ लें :-

जैन शास्त्रों में ससारी जीवों के छह निकाय (जातियाँ) बताए गए हैं और आचारों के बारे में कहा गया है कि हिसा अर्थात् जीवघात अधर्म का कारण है। इन दोनों विचारों को एकान्त रूप से ग्रहण करने मे यथार्थता का लोप होने से अनेकान्त दृष्टि ही नही रहती। जीव की छह ही जातियाँ हैं, ऐसा मानने पर चैतन्य रूप से जीव तत्त्व का एकत्व भुला दिया जाता है और दृष्टि मे मात्र भेद ही आता है। अतः पृथ्वीकाय आदि छह विभागों को एकान्त रूप

से ग्रहण न करके उनमें चैतन्य के रूप में जीव तत्त्व का एकत्व भी माना जाय तो वह व्यर्थ नहीं है। इसी तरह आत्मा एक है तथा अनेक है, इस प्रकार भिन्न-भिन्न शास्त्रीय वाक्यों का समन्वय होता है।

इसी प्रकार जीवघात को एकान्त हिंसा रूप समझने में भी यथार्थता का लोप होता हैं प्रसंग विशेष में जीव का घात हिंसा रूप नहीं भी होता है। कोई अप्रमत्त सम्पूर्ण रूप से आग्रह रहने पर और सम्पूर्ण सावधानी रखने पर भी जब जीव को नहीं बचा सकता तब उसके द्वारा हुआ वह जीवघात हिंसा की कोटि में नहीं आता। अतः जीवघात को एकान्त हिंसा रूप या एकान्त अहिंसा रूप न मानकर योग्य रूप से उभयस्वरूप समझने में ही अनेकान्त दृष्टि है और यही सम्यग्दृष्टि है।[126]

समुदाय और अवयवों की अपेक्षा एकत्व और अनेकत्व :- कोई एक अनेक के बिना देखा नहीं गया है। जो अनेक है, वह भी एक के बिना सिद्ध नहीं है। समुदाय की अपेक्षा सभी पदार्थ सदा एक है और यही एक पदार्थ अपने अवयवों की अपेक्षा अनेक ज्ञात होता है।[127]

कारणविषय वादों का एकान्त के कारण मिथ्या और अनेकता के कारण सम्यक्त्व :- आचार्य सिद्धसेन ने कहा है कि काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत, अदृष्ट और पुरुष रूप कारणविषयक एकान्तवाद मिथ्यात्व अर्थात् अयथार्थ है और वे ही वाद समास से (परस्पर सापेक्ष रूप से) मिलने पर सम्यक्त्व अर्थात् यथार्थ हैं।[128]

कार्य की उत्पत्ति कारण से होती है। कारण के विषय में भी अनेक मत हैं। उनमें से यहाँ पाँच कारण वादों का उल्लेख किया है।

1- कोई स्वभाववादी हैं, जो केवल स्वाभाव को ही कार्यमात्र की कारण मानकर उसके समर्थन में कहते हैं कि पशुओं में स्थलगामिता पक्षियों में गगनगामिता, फल की कोमलता और काँटे की तीक्ष्णता यह सब दूसरे किसी कारण से नहीं, अपितु वस्तुगत स्वभाव से ही सिद्ध है।

---

[126] सन्मति प्रकरण 3/27-28 (पं० सुखलाल जी एवं प० बेचरदास जी कृत विवेचन)

[127] युक्त्यनुशासन-टीका-49

[128] कालो सहावणियदो पुव्वकय पुरिसकारणेमत्ता।
मिच्छत्त तं चेवा (व) समासदो होदि सम्मत्त।।

2- कोई कालवादी हैं, जो केवल काल को ही कारण मानकर उसकी पुष्टि में कहते हैं कि भिन्न-भिन्न फल वर्षा, ठण्ड, गर्मी आदि सब ऋतुभेद के कारण होते हैं और ऋतुभेद अर्थात् कालभेद।

3- कोई नियतिवादी हैं, वे नियति के अतिरिक्त दूसरे किसी को कारण न मानकर अपने पक्ष की पुष्टि में कहते हैं कि जो मिलने वाला होता है, वह अच्छा या बुरा मिलता ही है। जो न होनें का है, वह नहीं होता है और जो होने का है, उसे कोई मिटा नहीं सकता। अतः यह सब नियति के कारण होता है। इसमें काल, स्वभाव या किसी दूसरे कारण को स्थान नहीं है।

4- कोई दृष्टवादी अदृष्ट को ही कारण मानकर उसकी पुष्टि में कहते हैं कि सभी मनुष्य पूर्वसंचित कर्मयुक्त पैदा होते हैं और सोचते हैं, इस तरह अचिन्त्य रूप से संचित कर्म के प्रवाह में बहते हैं। मनुष्य की बुद्धि स्वाधीन नहीं है, पूर्वार्जित संस्कार के अनुसार ही वह प्रवृत्त होती है। अतः अदृष्ट ही सभी कर्मो का कारण है।

5- कोई पुरुषवादी केवल पुरुष को ही मानकर उसकी पुष्टि में कहते है कि मकड़ी जाले से समस्त तन्तुओं का निर्माण करती है। जैसे पेड़ सभी पत्ते और टहनियों को प्रकट करता है, उसी प्रकार ईश्वर जगत् के सृजन, प्रलय एवम् स्थिति का कर्ता है। ईश्वर के सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं है। इसी से सब कुछ केवल ईश्वरतन्त्र है।

ये पाँचों ही वाद यथार्थ नहीं हैं; क्योंकि उनमें से प्रत्येक अपने मन्तव्यों के अतिरिक्त दूसरी दिशा में न देख सकने के कारण अपूर्ण है और अन्त में सब आपसी विरोधों से नष्ट हो जाते हैं अर्थात् वे यथार्थ बनते हैं। उस स्थिति में काल, स्वभाव आदि उक्त पाँच कारणों का कार्यजनक सामर्थ्य प्रमाणसिद्ध है, मान्य रखा जाता है और एक भी प्रमाणसिद्ध कारण का अपलाप नहीं होता है।

अनेकान्तवाद संशय का हेतु नहीं है :- सामान्य अंश के प्रत्यक्ष विशेष अंश के अप्रत्यक्ष और विशेष की स्मृति होने से संशय होता है। जैसे स्थाणु तथा पुरुष की स्थिति के योग्य देश में और न अति प्रकाश, न अति अन्धकार सहित बेला में ऊर्ध्वतासामान्य के देखने वाले मनुष्य को स्थाणु तथा पुरुष के विशेषों का स्मरण होने से यह स्थाणु है या पुरुष है? ऐसा संशय होता है;

क्योंकि स्वरूप विशेषों की उपलब्धि प्रत्येक पदार्थ में है। इसलिए विशेष की उपलब्धि से अनेकान्तवाद संशय का हेतु नहीं है।

सम्यक् अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त :- प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम प्रमाण से एक वस्तु में अनेक धर्मों के निरूपण करने में जो तत्पर है, वह सम्यक् अनेकान्त है तथा प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से विरुद्ध जो एक में अनेक धर्मों की कल्पना करता है, वह मिथ्या अनेकान्त है। सम्यक् अनेकान्त प्रमाण तथा मिथ्या अनेकान्त प्रमाणाभास है।

अनेकान्तवाद की परिधि :- वस्तु का एक रूप भाषाभेद से अनेक रूप हो जाता है ओर इस प्रकार एक वस्तु का प्रतिपादन करने वाला दर्शनशास्त्र आचार्यों के भेद से दस प्रधान भागों में विभक्त हो गया है। चार्वाक्, वैशेषिक, नैयायिक, सांख्य, योग, कर्ममीमांसा, ब्रह्ममीमांसा या वेदान्त, बौद्ध और जैन। चार्वाक् दर्शन अत्यन्त स्थूल है, वह केवल इन्द्रियगम्य भौतिक जगत् को ही देख पाया है और इसलिए उसका सिद्धान्त भौतिक सुख व उसके साधनों तक ही सीमित होकर रह गया है। वैशेषिक दर्शन इससे कुछ आगे बढ़ा है और वस्तु में गुण, कर्म आदि अनेक सामान्य और विशेष धर्मों का दर्शन करने लगा है, परन्तु उसकी स्थूल दृष्टि भी वस्तु के किन्हीं सयोग और क्षणिक धर्मो को ही देख सकी है। उनके कारणभूत नित्य धर्मों को नहीं। इन धर्मो में कभी उसकी दृष्टि अद्वैतता की प्रतीति कर सकी और द्रव्य की सत्ता को उसके धर्मो की सत्ता से पृथक् देखती रही। न्यायदर्शन ने तर्क व हेतुओं द्वारा वैशेषिकदर्शन का ही समर्थन किया। सांख्य इससे कुछ आगे बढ़ा और विश्व व्यवस्था की कार्य-कारण प्रणाली को खोजता हुआ अन्त में इस तथ्य पर पहुँचा कि यहाँ चेतन पुरुष और जड़ प्रकृति इन दो ही तत्वों का अत्यन्त शुद्ध रूप इसने उपस्थित किया, परन्तु व्यक्तिगत दृष्टि होने के कारण यह समष्टि की अद्वैत एक महासत्ता के दर्शन न कर सका। योगदर्शन ने ध्यान, समाधि आदि के द्वारा संयोगी अविद्याजनित दृष्टि के विभेदपूर्वक व्यक्ति को निज शद्ध रूप के दर्शन करने का उपाय बताया। कर्म मीमांसा ने पूजा, यज्ञादि के द्वारा तथा दैवीमीमांसा ने ईश्वरार्पण बुद्धि द्वारा अहकार विच्छेदपूर्वक विश्व की एक अद्वैत महासत्ता का धुँधला सा रूप देखने का उपाय बतलाया। ब्रह्ममीमांसा या वेदान्त ने इससे भी आगे बढ़कर ज्ञान के संयम मात्र से व्यक्ति के समस्त

द्वैतरूप विकल्पों को शान्त करके उसे जगत् की चिदचित् सूचक अद्वैत महासत्ता का दर्शन कराया। बौद्धदर्शन ने वस्तु के क्षणिक रूप को दिखलाया। जैनदर्शन ने वस्तु के समग्र रूप को भिन्न-भिन्न ढंग से प्रतिपादित करने की चेष्टा की।

वाचिक हिंसा और उससे मुक्ति का उपाय

वाचिका हिंसा से बचने के लए सत्य बोलो :- अर्थ से भरे, हितकारी, परिमित तथा मधुर वचन जीव को जैसा सुख दते हैं, वैसा जल, चन्दन, चन्द्रमा, मोती और चन्द्रकान्तमणि भी नहीं देते। अपना या दूसरों का धार्मिक कार्य नष्ट होता हो तो बिना पूछे भी बोलना चाहिए, किन्तु यदि कार्य नष्ट हो तो पूछने पर ही बोलो, बिना पूछे मत बोलो।[129] सत्यवादी माता के समान विश्वासयोग्य, गुरु के समान पूज्य और बन्धु के समान लोकप्रिय होता है।[130] यदि मनुष्य में अन्य गुण न हों तब भी वह एक सत्य के कारण जग में प्रमाण माना जाता है। अतिसयमी भी मनुष्य यदि असत्य बोलता है तो सज्जनों के मध्य में तृण से तुच्छ होता है। भले ही मनुष्य शिखाधारी हो, जटाधारी हो, सिर मुंडाए हो, नगा रहता हो या चीवर धारण किए हो, यदि वह छूठ बोलता है तो यह सब उसकी विडम्बना मात्र है।[131] जैसे विष उत्तमोत्तम भोजन का विनाशक है, बुढ़ापा यौवन का विनाशक है, वैसे ही असत्यवचन अहिंसा आदि गुणों का विनाशक है। एक असत्यवचन से मनुष्य माता का भी विश्वासभाजन नहीं रहता। तब असत्य बोलने से शेष जनों को वह शत्रु के समान क्यों नहीं प्रतीत होगा?[132] असत्य भाषण में अविश्वास, अपयश, संक्लेश, अरति, कलह, बैर, भय, शोक, वध, बन्ध, कुटुम्ब में फूट, धन का नाश इत्यादि दोष पाए जाते हैं।[133] इस लोक मे और परलोक में असत्यवादी जिन दोषों का पात्र होता है, कर्कश आदि वचन बोलने वाला भी उन्ही दोषों का पांत्र होता है।[134] दुष्ट पुरुषों के मुख रूपी बॉबी मे अन्तरङ्.ग में विष से उत्कृष्ट ऐसी विस्तीर्ण विष

---

[129] भगवती आराधना 829-30

[130] वही 834

[131] वही 838

[132] वही 839-840

[133] वही 842

[134] वही 845

वाली जो असत्य वाणी रूपी सर्पिणी रहती है, वह जगत् भर को दु:ख देती है।[135]

मर्म का छेदने वाला, मन में शल्य उपजाने वाला, स्थिरता रहित (चंचल रूप) विरोध उपजाने वाला तथा दयारहित वचन कण्ठगत प्राण होने पर भी नहीं बोलना चाहिए।[136] दावानल से दग्ध हुआ वन तो किसी काल में हरित् हो भी जाता है, परन्तु जिह्वा रूपी अग्नि से पीड़ित हुआ लोक बहुत काल जाने पर भी प्रसन्न मुख नहीं होता।[137] आर्य पुरुषों ने तराजू में एक तरफ तो समस्त पापों को रखा और एक तरफ असत्य से उत्पन्न हुए पाप को रखकर तौला तो दोनों समान हुए।[138] चाण्डाल, उल्लू, विलाव, भेड़िया और कुत्ता यद्यपि निन्दित हैं तथापि इन्हें अनेक लोग अंगीकार करते हैं, परन्तु असत्यवादियों को कोई अङ्गीकार नहीं करता।[139]

आचार्यों ने प्राणिपीड़ा कारक वचन को अप्रशस्त कहा है। अप्रशस्त वचन अनृत की श्रेणी में आता है। वचन का प्रयोग तो दूसरों के लिए ही किया जाता है। अत: स्वार्थरत साधु को जहाँ तक शक्य हो, मौन ही रहना चाहिए। वचन का प्रयोग तभी करना चाहिए, जब उसकी परोपकार के लिए अत्यन्त आवश्यकता हो, किन्तु उस समय स्वार्थ (आत्महित) को ध्यान में रखकर बोलना चाहिए।[140]

कर्कशा, परुषा, कट्वी, निष्ठुरा, परकोपिनी, छेदकरी, मध्यंकृशा, अतिमन्दिनी, अनयंकरा और भूतहिंसाकरी - इन दस प्रकार की दुर्भाषाओं को छोड़कार हित, मित और असन्दिग्ध बोलने वाला साधु भाषासमिति का पालक होता है।[141] कठोरता उत्पन्न करने वाली भाषा कर्कशा है। जैसे-"तू मूर्ख है, बैल है, कुछ भी नहीं जानता", इत्यादि। मर्म को छेदने वाली भाषा परुषा है, जैसे- "तुम बड़े दुष्ट हो" आदि। उद्वेग को पैदा करने वाली भाषा कट्वी है।

---

[135] ज्ञानार्णव 9/10

[136] वही 9/13

[137] ज्ञानार्णव 9/21

[138] वही 9/33

[139] वही 9/35

[140] अनगार धर्मामृत 4/42

[141] वही 4/165-166

जैसे - तू जातिहीन है, अधर्मी है आदि। तुम्हें मार डालूँगा, सिर काट दूँगा इत्यादि भाषा छेदकरी है। ऐसी निष्ठुर वाणी जो हड्डियों के मध्य को भी कृश करती है, मध्यकृशा है। अपना महत्व और दूसरों की निन्दा करने वाली भाषा 'अतिमानिनी' है। शीलोंका खण्डन करने वाली तथा परस्पर में मिले हुए व्यक्तियो के मध्य में विद्वेष पैदा करने वाली भाषा 'अनयंकरा' है। प्राणियों के प्राणों का वियोग करने वाली भाषा 'भूतहिंसाकरी' है। इन दस प्रकार की दुर्भाषाओं का त्याग कर हित, मित और असन्दिग्ध भाषा को बोलने वाला मुनि भाषा समिति का पालक होता है।

स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में सत्याणुव्रत का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है :-

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।

यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम्।।

जो स्थूल झूठ न तो स्वयं बोलता है और न दूसरों से बुलवाता है तथा सत्य बोलने से यदि किसी के जीवन पर संकट आता हो तो ऐसे समय में सत्यवचन भी नहीं बोलता, उसे सत्याणुव्रती कहते है।

बात यह है कि मूल व्रत अहिंसा है, शेष चारों व्रत (सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) तो उसी की रक्षा के लिए हैं। अतः यदि सत्य बोलने से अहिंसा का घात हो तो ऐसे समय अणुव्रती श्रावक सत्य नहीं बोलता। असत्य बोलने के उपायों का विचार करना भी असत्य में ही सम्मिलित है।

सत्याणुव्रत के पाँच अतीचार होते है - मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद। मूर्ख लोगों के सामने स्वर्ग और मोक्ष की कारण रूप क्रिया का वर्णन अन्यथा करना और उन्हें सुमार्ग से कुमार्ग मे डाल देना 'मिथ्योपदेश' नामक अतिचार है। दूसरों की गुप्त क्रिया को गुप्त रूप से जानकर दूसरों पर प्रकट कर देना "रहोभ्याख्यान" नाम का अतिचार है। किसी पुरुष ने जो काम नही किया, न किसी को करते सुना, द्वेषवश उसे पीड़ा पहुँचाने के लिए ऐसा लिख देना कि इसने ऐसा किया या कहा है, "कूटलेखक्रिया" नाम का अतिचार है। किसी पुरुष ने किसी के पास कुछ द्रव्य धरोहर के रूप से रखा। लेते समय वह उसकी संख्या भूल गया

और जितना द्रव्य रख गया था, उससे कम उससे माँगा तो जिसके पास धरोहर रख गया था, वह उसे उतना द्रव्य दे देता है, जितना वह माँगता है और जानते हुए भी उससे यह नहीं कहता कि तेरी धरोहर अधिक है, तू कम क्यों माँगता है? यह "न्यासापहार" नाम का अतिचार है। मुख की आकृति बगैरह से दूसरों के मन का अभिप्राय जानकर उसको दूसरों पर प्रकट कर देना, जिससे उनकी निन्दा हो, यह "साकारमन्त्रभेद" नाम का अतिचार है। इस प्रकार के जिन कामों से व्रतों में दूषण लगता हो, उन्हें नहीं करना चाहिए।

किसी बात को बढ़ाकर नहीं कहना चाहिए, न दूसरों के दोषों को ही कहना चाहिए और न असत्यवचन ही बोलना चाहिए, किन्तु सदा हित-मित और सभ्यवचन ही बोलना चाहिए। ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए, जिससे दूसरों पर विपत्ति आती हो या अपने ऊपर दुर्निवार सङ्.कट आता हो। मनुष्य को सदा प्रिय स्वभाव वाला, प्रिय आचरण वाला, प्रिय करने वाला, प्रिय बोलने वाला, सदा दयालु और सदा दूसरों के हित में तत्पर होना चाहिए।

न स्वयं अपनी प्रशंसा करना चाहिए और न दूसरों की निन्दा करनी चाहिए। दूसरों में यदि गुण हैं तो उनका लोप नहीं करना चाहिए और अपने में यदि गुण नहीं है तो उनका वर्णन नहीं करना चाहिए कि मेरे में ये गुण हैं। ऐसा करने से मनुष्य नीच गोत्र का बन्ध करता है और उससे विपरीत करने से अर्थात् अपनी निन्दा और दूसरों की प्रशंसा करने से तथा दूसरों में गुण न होने पर भी उनका वर्णन करने से और अपने मे गुण होते हुए भी उनका कथन न करने से उच्चगोत्र का बन्ध करता है। जो दूसरों का हित करता है, वह अपना ही हित करता है, फिर न जाने संसार क्यो दूसरो का अहित करने में ही तत्पर रहता है? जैसे-जैसे यह चित्त दूसरों के विषय में अन्धकार फैलाता है वैसे-बैसे अपनी नाड़ियों में अन्धकार की धारा को प्रवाहित करता है।

प्राणियों के चित्त रूपी वस्त्र यदि दोष रूपी जल मे डाले जाते है तो भारी हो जाते है और यदि गुणरूपी ग्रीष्म ऋतु मे फैलाए जाते है तो हल्के हो जाते है। सत्यवादी को सदा सच बोलने के कारण वचन की सिद्धि प्राप्त होती हे। जहाँ-जहाँ वह जो कुछ कहता हैं, उसकी वाणी का आदर होता है। इसके विपरीत जो तृष्णा, ईर्षा, क्रोध, हर्ष वगैरह के वशीभूत होकर झूठ बोलता है,

उसकी जिह्वा कटवा दी जाती है और परलोक में भी उसकी दुर्गति होती है।[142]

कहने का ढंग

भोज के जीवन में एक उल्लेख है कि उसके दरबार में एक ज्योतिषी आया। भोज का हाथ देखा और कहा - "तुम बड़े अभागे हो। तुम अपनी पत्नी को भी मरघट पहुँचाओगे, अपने बेटों को भी मरघट पहुँचाओगे। तुम्हें घर के एक-एक सदस्य को मरघट पहुँचाना पड़ेगा, बाद में तुम मरोगे''। भोज बहुत नाराज हो गया। उसने ज्योतिषी को हथकड़ियाँ डलवा दी। और कहा इसे बन्द कर दो। यह आदमी अपशकुन की बातें कर रहा है। कालिदास चुपचाप बैठा था। वह खूब हँसने लगा। उसने कहा ज्योतिषी कुछ अपशकुन नहीं बोलता। सिर्फ बोलने की समझ नहीं है। जोर गलत चीज पर देता है। भोज ने पूछा- क्या मतलब? कालिदास ने कहा कि मैं आपका हाथ देखूँ और हाथ देखकर कहूँ "बहुत धन्यभागी हैं आप। आपकी उम्र बहुत ज्यादा है और धन्यभागी इन अर्थो में है कि न तो आपकी मृत्यु से आपकी पत्नी कभी दुखी होगी और न आपकी मृत्यु से आपके बेटे कभी दु:खी होंगे, न कोई सम्बन्धी दु:खी होगा। आप बड़े धन्यभागी हैं।'' और भोज ने कहा कि जितना इनाम चाहिए ले लो, ऐसे शकुन की बात कहना चाहिए, अपशकुन की नहीं। यह जो जोर का फर्क है, चित्त पर इसके परिणाम भिन्न होते हैं और बात बिल्कुल एक ही है, लेकिन उसके कहने का ढंग बदल गया है।[143]

सत्यता कैसे ऊँचा उठाती है?

महाराज जयसिंह अपनी प्रजा के सुख-दु:ख का पता लगाने के लिए ग्रामीण का वेष बनाकर एक छोटे गाँव में पहुँचे, शाम हो चुकी थी। गाँव के लोग आमोद प्रमोद मे नाच रहे थे। राजा घूमते-फिरते एक वन के समीप पहुँचा। वहाँ जाकर देखा कि किसान का एक सुन्दर बालक नदी किनारे बैठा बाँसुरी बजा रहा है। राजा ने उससे पूछा - कहो ग्वाल बाल! यहाँ एकान्त में किसको सुनाने के लिए बाँसुरी बजा रहे हो? बालक बोला अपने प्रभु को सुनाने के लिए। राजा ने पूछा- तुम्हारा प्रभु कहाँ है? बालक ने उत्तर दिया-

---

[142] उपासकाध्ययन - कल्प 28 श्लो० 385-391

[143] महावीर मेरी दृष्टि मे, पृ० 493

"मेरा प्रभु मेरे मन्दिर में बैठा है।'' राजा ने फिर पूछा- "बालक! तुम्हारा नाम क्या है?'' बालक ने प्रत्युत्तर दिया- "कन्हैया।'' राजा ने कहा- "तुम तो बड़े गरीब मालूम पड़ते हो।'' बालक बोला- "जिसको सोचने के लिए मन और बुद्धि मिली हो, वह गरीब कैसा?'' बालक का उत्तर सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। राजभवन में पहुँचकर राजा ने कन्हैया के पिता को बुलाया और कन्हैया को पढ़ाने का प्रबन्ध कर दिया। पढ़ाने के बाद उसकी कुशाग्रबुद्धि से प्रभावित हो राजा ने उसे अपना मन्त्री बना लिया। कन्हैया ईमानदारी से कार्य करने लगा।

कुछ कर्मचारी कन्हैया के उत्कर्ष से जलने लगे। उन्होंने राजा से शिकायत की कि कन्हैया ने राज्य कोष से अपना घर भी भर लिया है। एक दिन राजा ने मौका पाकर उसके घर की तलाशी ली। राजा ने उसके घर की एक कोठरी का ताला लगा पाया। राजा के बहुत आग्रह करने पर भी जब उसने वह ताला नहीं खोला तो राजा को विश्वास हो गया कि इसने इसी कोठरी में सारी सम्पत्ति रखी है। तब राजा ने ताला तुड़वाया। भीतर जाकर बहुत खोजने पर एक फटा कुर्ता और एक फटी धोती मिली। जब राजा ने यह दोनों कपड़े उठाए तो उसने कहा- मेरी यही सम्पत्ति है, जिसे मैंने सम्हालकर रखा था कि जब आप मुझे नौकर नहीं रखेंगे तो यही दोनों कपड़े काम आयेंगे। राजा उसकी सरलता और ईमानदारी पर बड़ा खुश हुआ और उसने हाथ जोड़कर मन्त्री से क्षमा-याचना की और उसे बहुत से गाँव इनाम दिए।

धर्म के लिए की गयी हिंसा भी पाप है

मनुष्य अपनी अज्ञानता या स्वार्थ के कारण धर्म के नामपर जीवों की बलि करता रहा है। इसके उल्लेख हमें वैदिक काल से ही प्राप्त हाते हैं। जैन और बौद्धधर्म के प्रबल विरोध के कारण यज्ञों के नाम पर होने वाली हिंसा तो कम हो गई, किन्तु देवी-देवताओं के सामने पशुबलि देने का आज भी अनेक स्थानों पर प्रचलन है। उदाहरणार्थ टिन्नेबेली जिले के कई स्थानों में पृथ्वी पर तेज नोक वाले काले या बड़े कीले सीधे गाड़कर उनके ऊपर बड़ी भारी ऊँचाई से कई सूअर एक-एक करके इस प्रकार फेंके जाते हैं कि उसमें बिंधकर भाले के नीचे पहुँच जावें। इस प्रकार एक-एक भाले में एक के

ऊपर कई एक सुअर जीवित ही बिंध जाते हैं। बाद में उन मूक प्राणियों की बलि दी जाती है।

चिंगलपेट जिले के मादमबक्कम नामक स्थान में जीवित भेड़-बकरी के पेट को थोड़ा काटकर उसकी आंते खींच ली जाती हैं और उन्हें सेल्लीयम्मन् देवी के सामने गले में हार की तरह पहिना जाता है।

टिन्नेबली जिले में तो इतनी अमानुषिकता की जाती है कि वहाँ एक गर्भवती भेड़ के गर्भाशय को फाड़कर उसमें से बच्चों को इसलिए निकाल लिया जाता है कि उन्हें देवकोट्टा में कोयेम्मपर, गायावरम में मरियम्मापर और पालमकोट्टा में अयिरथम्मेन पर बलि चढ़ाया जाता है।

दक्षिणी अरकाट जिले के पूवानूर नामक स्थान में बकरे के गले को नेहानी या छेनी से धीरे-धीरे काटकर उसको असीम वेदना पहुँचाई जाती है। बलिदान का यह कार्य सम्भवतः कसाई के हलाल करने से भी अधिक निर्दयतापूर्ण है।

विजगापट्टम जिले के अनाकवल्ले नामक स्थान में ऐसा बलिदान किया जाता है, जिसमें भाले जैसी एक तेज नोकदार छुरी को सूअर के गुदास्थान में डालकर इतने जोर से दबाया जाता है कि वह अन्दर के भागों को फाड़ती हुई उसके मुँह में से निकल आती है।

दक्षिणी अरकाट जिले के विरूधख्लम् तालुक के मदुवेत्तिमंगलम् मन्दिर में एक साथ सात भैसों को काटकर उनकी बलि दी जाती है और यह पूजोत्सव का वहाँ एक साधारण रूप है।

टिचनापल्ली के पास पुतुर के कुलुमियायी मन्दिर में तो दो-तीन माह के भेड़ के बच्चों की गर्दनें दाँतों से काटकर अथवा छुरी से छेद करक देवी के सामने उनका रक्त चूसा जाता है। इस घोर राक्षसी कृत्य ने तो खूंख्वार जंगली जानवरो को भी मात कर दिया है।

नेलोर जिले के मोपेडू नामक स्थान पर देवी के मन्दिर के सामने एक चार फुट गड्ढा खोदकर उसमें एक भेंसे को उतारकर मजबूती से बाँध दिया जाता है। इसके पश्चात् कुछ लोग उसको भाले से छेदकर जान से मार डालते हैं। ये लोग पहले उस को इस प्रकार मारने की शपथ लेते हैं।

दक्षिणी अकर्टि जिले के विरूधचलम ताल्लुक के मदुबेतिमंगलम् नाम के स्थान में सूअर के छोटे-छोटे जीवित बच्चों को भाले से बींधकर और उसे बिंधे रूप में ही भालों पर उठाए हुए आम सड़कों पर जुलूस बनाकर चलते हैं।

उयनपल्ली जैसे स्थानों में जीवित पशुओं को बलि देते समय उसकी गर्दन को थोड़ा काट लिया जाता है, फिर उस टपकते हुए रक्त को कटोरे से देवी के सामने पिया जाता है। बेचारा पशु महावेदना भोगता हुआ तड़प-तड़पकर प्राण दे देता है।[144]

मीमांसा दर्शन दो भागों में विभाजित है - पूर्व मामांसक और उत्तर मीमांसक। इन दो प्रकार के मीमासकों में पूर्व मीमांसक वेद में कही हुई हिंसा को धर्म की कारणभूत मानते हैं। अर्चिमार्ग के विरुद्ध धूममार्ग के धारक जैमिनीय ऐसा कहते हैं कि कसाई व शिकारी के समान जो हिंसा लोभीपने से अथवा व्यसनीपने से की जाती है, वही पाप के बन्ध की कारण है; क्योंकि प्रमाद से की जाती है और जो वेदोक्त हिंसा है, वह तो पाप के बन्ध की कारण नहीं है, किन्तु उल्टी उस प्रकार की पूजा सेवा के समान धर्म की कारण है; क्योंकि देवता, अतिथि ओर पितृजनों के प्रीति को उत्पन्न करती है। जैसे वेदोक्त पूजा सेवा के करने से देवतादि प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार इस वेदोक्त हिंसा से भी देवतादि प्रसन्न होते हैं, अतः यह वेदोक्त हिंसा धर्मबन्ध की कारण है और वेदोक्त हिंसा से देवतादि के प्रीति उत्पन्न नहीं होती है, ऐसा न कहना चाहिए अर्थात् वेदोक्त हिंसा से देवतादि प्रसन्न होते ही हैं, क्योंकि कारीरी नामक यज्ञ को आदि ले जो यज्ञ हैं, उनके अपने द्वारा करने योग्य वृष्टि आदि फल में जो अव्यभिचारित्व (सफलता) है, वह उन यज्ञों से प्रसन्न किए हुए देवों के अनुग्रहरूप हेतु वाला ही है, अर्थात् कारीरी आदि यज्ञों के करने से जो वृष्टि (वर्षा) आदि फलों की प्राप्ति होती है, वह उन यज्ञों द्वारा प्रसन्न किए हुए देवों की कृपा से ही होती है। देवों की प्रीति के लिए अश्वमेध यज्ञ (जिसमें घोड़ा मारा जावे ऐसे यज्ञ) तथा गोमेध यज्ञ आदि को करने वाला आगम प्रसिद्ध ही है। "आए हुए श्रोत्रिए (वेदपाठी) के लिए

---

[144] उपर्युक्त समस्त उद्धरण आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी विद्यालंकार कृत भगवान् महावीर और उनका तत्वदर्शन, पृ० 899-906 से लिए गए हैं।

बड़े बैल को अथवा बड़े बकरे को प्रकल्पन करे", अर्थात् मारे, इत्यादि आगम अतिथि की प्रीति के लिए हिंसा करने का उपदेश देता है तथा पितरों की प्रीति के लिए "मत्स्य के मांस से दो माह तक, हिरण के मांस से तीन माह तक, मेष (मेंढ़े) के मांस से चार माह तक और शामुत (पक्षिविशेष) के मांस से पाँच माह तक पितृ जन तृप्त रहते हैं।" इत्यादि कथन करने वाला आगम है।[145]

उपर्युक्त कथन के उत्तर में आचार्य हेमचन्द्र का कहना है :-

न धर्महेतुर्विहिताऽपि हिंसा नोत्सृष्टमन्यार्थमपोद्यते च।

स्वपुत्रघातान्नृपतित्वलिप्सा सब्रह्मस्वारि स्फुरितं परेषाम्।।

- स्याद्वाद मञ्जरी

वेद में कही हुई भी हिंसा धर्म की कारण नहीं है और यदि पूर्वमीमांसक कहे कि वेदोक्त हिसा की विधि अपवादमार्ग से है, इस कारण दोष के लिए नहीं है; सो उचित नहीं है; क्योंकि उत्सर्ग वाक्य जो है, वह कारण दोष के लिए प्रयुक्त किए हुए वाक्य से अपवाद का विषय नहीं होता है अर्थात् शास्त्र में जिस प्रयोजन का अवलम्बन कर उत्सर्गवाक्य वर्तता है, उसी प्रयोजन को ग्रहण करके अपवादवाक्य भी वर्तता है। इस कारण उन मीमासको की चेष्टा अपने पुत्र को मारकर राजा बनने वाले पुरुष की चेष्टा के समान है।

यदि हिंसा है तो धर्म की कारण कैसे है? और धर्म की कारण है तो हिंसा कैसे है?

आगम हिंसा को पाप की कारण कहता है। आगम में कहा गया है- तुम धर्म के सर्वस्व को श्रवण करो और श्रवण करके हृदय में धारण करो, वह धर्म का रहस्य यह है कि तुम्हें जो कार्य बुरा लगे, वह कार्य तुम दूसरो के लिए भी मत करो, जीवों के प्राणों का त्याग करने रूप हिंसा को पाप तथा धर्म- इन दोनों की कारण कहने वालों के अपने वचन से विरोध आता है।

---

[145] मल्लिषेण सूरि : स्याद्वाद मञ्जरी - व्याख्या।।

यदि हिंसा से धर्म का होना माना जायगा तो तप करना, दान देना, ध्यान का साधना इत्यादि धर्म के कारण न रहेंगे।

वध किए जाने वाले जीवों के आर्त्तध्यान स्पष्ट दिखाई देता है। वेदोक्त विधि से मारे हुए भी वे पशु मरते समय में वेदना को भोगते हुए देखे जाते हैं। पवित्र सुवर्ण आदि द्रव्य है, उसके देने से पुण्य का उपार्जन हो सकता हे। बेचारे पशुओं के समूह को मारने से उत्पन्न हुए मांस का देना तो घृणा रहितपना ही प्रकट करता है। मरे हुए पशु उत्तम गति की प्राप्ति होने हर्षित होकर और स्वर्ग से आकर किसी को अपने उत्तम गति की प्राप्तिहोने का कथन नहीं करते हैं। यदि हिंसा के करने से भी स्वर्ग की प्राप्ति हो तो नरक के दरवाजे खूब ढक जावें। वेदोक्त विधि से यज्ञ के स्तम्भ को छेदकर, पशुओं को मारकर और रुधिर से पृथ्वी में कीचड़ मचाकर यदि यज्ञ के कर्ता स्वर्ग में जावेंगे तो फिर नरक में कौन जावेगा? अर्थात् हिसा करने वाले जब स्वर्ग में जायेगे तो नरक में कोई भी नहीं जावेगा।

अर्चिमार्ग को स्वीकार करने वाले वेदान्तवादियो ने वेदोक्त हिंसा की निन्दा की है। तत्त्व के देखने वाले कहते हैं कि जो घृणा (ग्लानि) रहित पुरुष देवता के भेंट करने रूप छल से अथवा यज्ञ करने के मिष से जीवों को मारते हैं, वे घोर दुर्गति में गमन करते हैं। वेदान्ती भी कहते हैं "जो हम पशुओं से देवादिकों की पूजा करें तो अन्धतम (सप्तम नरक) अथवा घोर अन्धकार मे डूब जावें; क्योंकि हिंसा नामक धर्म न तो कभी हुआ और न होगा", अग्निदेव मुझे इस हिसा द्वारा किए हुए पाप से मुक्त करो। श्री व्यास जी ने भी कहा है कि ज्ञान रूपी कर्दम को दूर करने वाले अत्यन्त निर्मल तीर्थ में स्नान करके जीवरूपी कुण्ड में दम रूपी पवन से दीपित, ऐसी जो ध्यान रूपी अग्नि है, उसमे अशुभकर्म रूपी काष्ठ को डालकर उत्तम अग्निहोत्र करो। धर्म, काम और अर्थ को नष्ट करने वाले शम रूपी मन्त्र से आहुति को प्राप्त हुए ऐसे दुष्ट कषाय रूपी पशुओं से ज्ञानवानो द्वारा किये हुए यज्ञ को करो। जो मूर्खचित्त का धारक मनुष्य जीव के मारने से धर्म की प्राप्ति की इच्छा करता है, वह काले सर्प के मुख रूपी कोटर से अमृत की वर्षा चाहता है।"

प्रश्न- यज्ञ के कर्त्ता पुरुषों को लोकपूज्य देखते हैं, इस कारण वेदोक्त हिसा निन्दित नहीं है।

उत्तर- यह कथन भी व्यर्थ है। मूर्ख मनुष्य ही उन यज्ञकर्ताओं की पूजा करते हैं, किन्तु निर्मल बुद्धि के धारक उनकी पूजा नहीं करते हैं। मूर्खों से पूज्यपना प्रमाण करने योग्य नहीं है; क्योंकि मूर्खों से पूज्यपना श्वान आदि में भी देखा जाता है।

यदि तुम देवों को दिए हुए आहार का स्वीकारकर्ता मानोगे तो देव मन्त्रमय शरीर के धारक हैं; तुम्हारे इस कथन में विरोध आएगा। यदि देव मन्त्रमय शरीर के धारक न हों तो एक ही समय में अनेक स्थानों में पूजा करने वालों के समीप न जा सकें।

प्रश्न- होम किए हुए पदार्थ के उपभोग से देवों के प्रीति उत्पन्न होती है।

उत्तर- होम किये जाते हुए पदार्थ का भस्म होना ही देखा जाता है, इस कारण उस होम किए हुए पदार्थ के उपभोग से देवों के प्रीति उत्पन्न होती है, अर्थात् देवों का अग्नि ही मुख है'', इस श्रुति के वचन से जो यह दक्षिणाग्नि, आहवनीयाग्नि तथा गार्हपत्याग्नि नामक तीन अग्नियों का समुदाय है, वह 33 करोड़ देवताओं का मुख है और जब त्रेताग्नि सब देवों का मुख हुआ तब एक ही मुख से भोजन करते हुए उन उत्तम, मध्यम और जघन्य श्रेणी के सभी देवों के परस्पर उच्छिष्ट खाने का प्रसङ्.ग हुआ।

मुख शरीर का 9 वाँ भाग है। वह भी जब देवों के दाहस्वरूप है अर्थात् भस्म करने वाला है, तब उन तेतीस करोड़ देवों में से जो प्रत्येक देव का पूर्ण शरीर है, वह भी यदि दाहस्वरूप हो जायगा तो वह सब देवों के सब शरीरो का दाहरूप होना तीनों लोको के भस्म करने में समर्थ ही होगा, ऐसी सम्भावना की जाती है।

प्रश्न- श्राद्ध आदि करने से पितृजनों को प्रीति होती है।

उत्तर- यह कथन भी अनैकान्तिक दोष से दूषित है; क्योंकि बहुत से पुरुष श्राद्ध आदि करते हैं, तो भी उनके करने से उनके सन्तान की वृद्धि नहीं देखी जाती है और श्राद्ध आदि के करने पर भी कितने ही लोग सन्तानरहित ही रह जाते हैं। और श्राद्धादि न करने पर भी कितने ही पुरुषों के अतिशय रूप से सन्तान की वृद्धि देखते हैं। इस कारण सिद्ध हुआ कि जो श्राद्ध आदि करना है, वह भोले मनुष्यों को ठगने रूप ही फल का धारक है। क्योंकि जो

पितृजन परलोक को चले गए, वे अपने किए हुए पुण्य तथा पापकर्म के अनुसार देवगति तथा नरकगति आदि में सुख अथवा दु:ख को भोगते हुए ही रहते हैं। यदि श्राद्ध मरे हुए जीवों की भी तृप्ति का कारण है तो तैल भी बुझे हुए दीपक की शिखा को बढ़ावे।

वचनों की प्रमाणता आप्त (यथार्थवक्ता) पुरुष के अधीन है और लोक में यथार्थवादी पुरुष के कहे हुए वचन ही प्रमाण माने जाते हैं। अत: अपौरुषेय आगम आप्तकृत न होने से प्रमाण नहीं है। इस प्रकार उस आगम की अप्रमाणता सिद्ध होने पर उस आगम का कहा हुआ और उस आगम का अनुसरण करने वाली स्मृतियों द्वारा कहा गया जो हिंसा रूप याग, श्राद्ध आदि का करना है, वह प्रमाणरहित[146] ही है।

मांस से पितृवर्ग की तृप्ति के विषय में आचार्य वामदेव का निषेध :- आचार्य वामदेव ने अपने भावसंग्रह में कहा है कि वेद के जानकार मांस के द्वारा जो पितरों को प्रसन्न करते हैं, उन्होंने अपने गोत्र का ही भक्षण कर लिया। गोत्र में उत्पन्न लोग अपने कर्मफल के परिपाक से पशुत्व को प्राप्त हुए। श्राद्ध के लिए उनका वध करने से क्या उनके मास का भक्षण नहीं होगा?

कदाचित् यदि पिता अपने कर्म के परिपाक से पशुत्व को प्राप्त हो गया तो उसे मारकर उसका मांस उसी की तृप्ति के लिए होगा।

बक नामक ब्राह्मण का पिता मरकर मृग हो गया। उसके श्राद्ध में उसी (मृग) का मांस देकर ब्राह्मणों ने उसे ही खा लिया। पुराणों में कहे गए इस कथन को सुनकर भी अज्ञानी लोग पितरो के लिए मांस तर्पण करते हैं। मांस को खाने वाले दान के पात्र नहीं होते हैं। मांसदान उत्तम भी नहीं है। मांसाहारी लोगों के द्वारा खाया गया मांस उनके पितरों को तृप्ति प्रदान करने वाला कैसे होगा? यदि यह मान लिया जाय कि दूसरो के द्वारा खाए जाने पर दूसरों को तृप्ति हो जाती है तो उन स्वर्गो को गए हुए जीव तृप्त हो जायंगे, यह निश्चित है। पुत्र के द्वारा दिए गए दान से यदि पितर स्वर्ग को प्राप्त हों तो पुत्र के द्वारा किए हुए पाप से वे दुर्गति को भी प्राप्त हो जाँय। अन्य के

---

[146] स्याद्वाद मञ्जरी - कारिका।। की विस्तृत व्याख्या।

द्वारा किए गए पुण्य और पाप के शुभ और अशुभ फल को अन्य कोई भोगता है, ऐसी विपरीत बात पृथ्वी पर कहीं भी नहीं सुनी गई। यदि जीव मरकर तत्क्षण अन्य देह को धारण कर लेता है तो पितृत्व किसके उत्पन्न हुआ। अत: पितरों की उत्पत्ति करना व्यर्थ है। अपने द्वारा किए हुए पुण्य और पाप से सुख और दु:ख की प्राप्ति होती है। समस्त प्राणियों की देह में यदि विष्णु रहता है तो वृक्षादि का घात करने पर उस विष्णु का घात क्यों नहीं माना जाएगा?[147]

मांस भक्षण का निषेध :- जिसके देखने मात्र से आत्मा में ग्लानि पैदा होती है, जो जीवों के मारने के बिना उत्पन्न नहीं होता तथा कीड़े, मूत्र, पुरीप इत्यादि महा अपवित्र पदार्थों से युक्त होता है, जिसे सज्जन पुरुष देखना तक अच्छा नही समझते, उसका स्पर्श तो दूर रहे, वह मांस खाने योग्य कैसे हो सकता है? दुष्ट लोग उसे भी खा जाते हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। मांस न तो पाषाण से उत्पन्न होता है और न काष्ठ से तथा न मिट्टी आदि से पैदा होता है, जिससे वह पवित्र और खाने के योग्य समझा जाय, किन्तु बेचारे निरपराध जीवों के वध करने से होता है। इस लोक में जिन जीवो का मैं मास खाता हूँ, परलोक में वे भी मेरे मांस को खायेंगे, बड़े-बड़े महर्षि लोग मांस शब्द की इस तरह निर्युक्ति करते हैं।[148]

जंगम और स्थावर इस तरह जीवों के दो भेद हैं। उनमे जंगम जीवो का मास होता है और स्थावरो में फल होते हैं। इस संसार में जो मांस कहा जाता है, वह निश्चय ही जीव है और जो जीव है, वह मांस नहीं है, ऐसा सब जगह सुना जाता है। जिस तरह पिता गोत्र हो सकता है, किन्तु गोत्र मात्र पिता नहीं हो सकता, उसी तरह आम्र के वृक्ष को तो वृक्ष कह सकते हैं, परन्तु वृक्ष मात्र के आम्र नहीं कह सकते। इसी तरह मांस को जीव कह सकते हैं, किन्तु जीव मात्र को मांस नहीं कह सकते। यही कारण है कि स्थावर जीव कहे जाते है, परन्तु उनमें मास का व्यवहार नहीं होता। मांस पिण्ड चाहे पका हुआ हो या पका हुआ न हो, उसमें निरन्तर निगोदिया जीव तथा सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न होते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं। इससे मांस सत्पुरुषों के खाने

---

[147] **आचार्य वामदेव : भावसंग्रह 43-45**

[148] **धर्मसग्रह श्रावकाचार 2/33-35**

के योग्य नहीं है। कदाचित् मांस के सम्बन्ध में कोई कहने लगे कि जिस तरह दूध जीव से उत्पन्न होता है, उसी तरह मांस की भी उत्पत्ति है। इसका उत्तर है कि दूध तो ग्रहण करने योग्य है, मास नहीं। विष के वृक्ष का पत्र तो रोगों को दूर करने वाला होता है और उसका मूल मृत्यु देने वाला है। जिस तरह एक ही वृक्ष से पत्र और मूल की उत्पत्ति होने से दोनों की गति विचित्र है, उसी तरह मास और दुग्ध के विषय में भी समझना चाहिए।

प्रश्न- हम पशु न तो स्वयं मारते हैं, न उसे दूसरे लोगों के द्वारा मरवाते हैं और न मरा हुआ देखते हैं। जब ये तीनों बातें नहीं देखी जाती हैं, फिर मांस के खाने में कोई दोष नहीं है।

उत्तर- अपने आप मरे हुए जीव के मांस का स्पर्श करने मात्र से जीव हिंसक हो जाता है। जो अपने शरीर की पुष्टि के लिए जीवों का मांस भक्षण करते हैं, उन पुरुषों में दयाधर्म का अंकुर भी नहीं हो सकता। जैसे अग्नि से जले हुए वृक्ष में फल, पुष्प की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इस संसार में इस जीव के जीवों के साथ अनेक बार माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, पुत्री आदि अनेक सम्बन्ध हुए हैं, इसलिए जिसने मांस की लोलुपता से बेचारे निरपराध दीन पशुओं को मारा है, समझना चाहिए कि उसने अपने माता-पिता को ही मारा है।

नेत्रों में गिरे हुए तृण की वेदना को जानते हुए भी दुष्ट लोग बेचारे निरपराध पशुओं के गले पर छुरी क्यों चलाते हैं? इस बात का खेद है। मांस के खाने वाले नीच पुरुष नरक में जाकर और वहाँ नाना तरह की दु:सह वेदनाओं को भोगकर नरक से निकलते हैं और फिर उसी पाप से तिर्यञ्च गति में भ्रमण करते हैं। उन पापी पुरुषों के लिए यह भव समुद्र गहन है। इस तरह मांस दु:ख और पाप का मूल कारण है। उसे जो बुद्धिमान् मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से मांस के स्पर्श तक को छोड़ देते हैं, वे ही लोग मास त्याग व्रती कहे जाते हैं।[149]

आधुनिक खोज :- जो लोग मास खाते हैं, वे अक्सर ग्रासनली (ईसाफेगस) के कैंसर के शिकार होते हैं। शाकाहारी इस गम्भीर रोग से इसलिए बचे रहते

---

[149] धर्मसग्रह श्रावकाचार 2/36-50

हैं, चूँकि ताजा फलों, साग सब्जियों, विशेषत: आँवला, नींबू आदि मे विटामिन "सी" होता है। विटामिन "सी" कैंसर प्रतिरोध में एक अच्छा कवच सिद्ध हुआ है।

मांसाहार के रेशायुक्त न होने के कारण उससे केरीज (दाँतों में सड़ान और उनका क्षीण होना) नामक रोग हो जाता है। शाकाहार में रेशा विपुल होने के कारण वह लार के प्रवाह को उन्नत रखता है तथा फलस्वरूप पाचन को आगे बढ़ाता है। वह कैरीज को रोकता है। अस्थिक्षय से भी वह शरीर की रक्षा करता है। मांसाहार में हायटस हर्निया (ग्रासनली और आमाशय के बीच की प्राचीर से आँत का उभार) का उत्पात प्राय: देखा जाता है। यद्यपि अभी इसका निश्चित कारण अज्ञात है, तथापि कहा जाता है कि शाकाहार में विशेषत: आमाशय के रिक्त होने में अधिक समय नही लगता उसके विपरीत मासाहार मे वसा के कारण आमाशय जल्दी खाली नहीं होता है और डाइफ्राम (मध्यच्छद) पर लगातार भारी दबाव पड़ता है, फलस्वरूप हायटस हर्निया हो जाता है।[150]

वैज्ञानिको के अनुसार मनुष्य के पूर्वज शाकाहारी थे। प्रसिद्ध नृतत्वविज्ञानी डॉ० आलन वाकर ने मनुष्य की दंत रचना के 1 करोड़ 20 लाख वर्षो मे फैले काल पटल पर गहन अध्ययन किया है। अपने अनुसन्धान मे उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि मनुष्य ईसा पूर्व 12000000 पहले भी शाकाहारी ही था। "वैजिटेरियनिज्म ए ह्यूमन इम्पेरेटिव" नामक बहुचर्चित पुस्तक मे इस सत्य का साफ तौर पर उद्घाटन किया गया है कि मिश्र सुमेरिया, भारत, चीन, रोम एवं ग्रीस के लोग पूरी तरह शाकाहारी हुआ करते थे।

मनुष्य की शारीरिक रचना की दृष्टि से शाकाहार ही उसका स्वाभाविक भोजन हें मनुष्य के दाँत सपाट बने होते हैं, जबकि मांसाहारी जीवो के दाँत नुकीले एव पैने होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपने भोजन को चबाकर खाता है, जिससे उसे पचाने में सुविधा रहती है और पचाने के लिए मनुष्य की आँत की लम्बाई उसके शरीर की तुलना में 12 गुनी होती है, जबकि मासाहारी

---

[150] अहिंसा न्यूज खंड 2, अंक 2 अप्रैल-जून 1999

जीव चबाने के बजाय सीधे निगल जाते हैं और उनकी आंत की लम्बाई उनके शरीर की तीन गुनी ही होती है।

इन सबके अलावा आज वैज्ञानिकों ने साबित कर दिया है कि शाकाहार ही स्वास्थ्य के लिए ठीक होता है। चिकित्सा विज्ञानियों का मानना है कि गले, मुंह, पेट व बड़ी आंत के कैंसर के बारे में इस बात के प्रमाण मिले हैं कि शाकाहार में मौजूद रेशे, विटामिन "सी" तथा प्रोटीन के पचने से पैदा होने वाले नाइट्रोजन यौगिक कैंसर पैदा करने वाले यौगिकों में बदल देते हैं, जो निरापद होते हैं। दुनिया भर में स्तन कैंसर के बारे में किए गए सर्वेक्षण से पता चला है कि भारत जैसे शाकाहार प्रधान देशों की तुलना में पश्चिम के देशों की महिलाओं में स्तन कैंसर का अनुपात काफी ज्यादा है। शाकाहार में कम चिकनाई, कम प्रोटीन तथा रेशों की अधिकता कैंसर को पनपने ही नहीं देती। इसके अलावा गुरदे, पित्ताशय की पथरी भी शाकाहारियों को कम होती है। पथरी मुख्यत: केल्सियम आक्सलेट के जमा हो जाने से बनती है। शाकाहारियों में यूरिक एसिड, कैल्सियम और आक्सलेट तीनों ही मूत्र त्याग के साथ शरीर में से बाहर निकल जाते हैं। इसके अतिरिक्त शाकाहारियों में मधुमेह का अनुपात भी काफी कम होता है; क्योंकि शाकाहारी भोजन में रेशों के कारण ग्लुकोज धीरे-धीरे बनता है। रेशों की वजह से ही जी०आई०पी० नामक हारमोन निकलता है, जो इन्सुलिन ज्यादा बनने नहीं देता और सोमेटोस्टेटिन की मात्रा बढ़ा देता है।

एक अध्ययन के अनुसार एक किलो मांस के उत्पादन में 10 किलो वेजिटेबिल प्रोटीन लगता है। एक एकड़ चारागाह से औसतन 105 पाण्ड बीफ का उत्पादन होता है। जबकि एक एकड़ जमीन मे ही 2000 पाउण्ड आलू का उत्पादन किया जा सकता है। विश्व का 38 प्रतिशत अनाज मवेशियों या जानवारों को खिलाया जाता है, जबकि 15 मिलियन बच्चे प्रतिवर्ष भूख के कारण मौत का शिकार होते हैं। जंगलो की कटाई के लिए हम अक्सर असभ्य संस्कृति और अवैध कटाई को दोषी ठहराते है, लेकिन वक्त आ गया है, जब हम इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि हमारी छोटी से छोटी आदतें भी उस पृथ्वी को कोई नुकसान न पहुँचाये, जिस पृथ्वी पर हमारी भविष्य की पीढ़ियाँ रहेंगी।

पशु जगत की सुरक्षा के जैन सन्दर्भ

जैन साहित्य में पशु जगत की सुरक्षा के अनेक सन्दर्भ विद्यमान हैं। इसका एक अति प्राचीन सन्दर्भ जो कि भगवान् मुनिसुव्रत नाथ के तीर्थ का है, प्राप्त होता है, उसे नारद और पर्वत के संवाद के रूप में जाना जाता है। नारद और पर्वत एक ही गुरु क्षीरकदम्बक के शिष्य थे। क्षीरकदम्बक पर्वत के पिता भी थे। वह विरक्त हो निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो गए। एक बार नारद अपने बहुत से शिष्यों के साथ गुरुपुत्र पर्वत से मिलने आया। बातचीत के मध्य नारद और पर्वत के बीच "अजैर्यष्टव्यं" पद के अर्थ के विषय में विवाद हो गया। पर्वत का कहना था कि इस पद का अर्थ है - बकरा से यज्ञ करना चाहिए; क्योंकि अज का अर्थ बकरा है।[151] नारद का कहना था कि गुरु जी ने कहा था कि जिसमें अकुर उत्पन्न होने की शक्ति नहीं है, ऐसा तीन वर्ष का पुराना धान्य अज कहलाता है, यही सनातन अर्थ है।[152] जब दोनो आपस मे निर्णय नही कर सके और पर्वत ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि इस विषय मे मै पराजित होऊं तो अपनी जीभ कटा लूँ। पर्वत की माँ यथार्थ अर्थ जानती थी, किन्तु जब वे दोनो निर्णय के लिए राजसभा में गए तो उसने पहले से ही पुत्रमोह के कारण राजा वसु को पर्वत के पक्ष में निर्णय देने हेतु राजी कर लिया। दोनो राजसभा मे गए। पूर्वपक्ष रखते हुए पर्वत ने कहा कि स्वर्ग के इच्छुक मनुष्यों को अजो द्वारा यज्ञ की विधि करना चाहिए, यह एक श्रुति है, इसमे जो अज शब्द है उसका अर्थ- चारों पावों वाला जन्तुविशेष - बकरा है।[153] नारद का कहना था कि लोक में गो आदि ऐसे बहुत से शब्द हैं, जिनका समान श्रवण समान उच्चारण होता है, परन्तु विषय भेद से उनका प्रयोग अलग-अलग होता है। जैसे गो शब्द पशु, किरण, मृग, इन्द्रिय, दिशा, वज्र, घोड़ा, वचन और पृथिवी अर्थ में प्रसिद्ध है, परन्तु सब अर्थों में उसका पृथक्-पृथक् उपयोग ही होता है। "चित्रगु" इस शब्द मे गो का अर्थ गाय और अशीतगु शब्द मे किरण ही माना जाता है। इसलिए "अजैर्यष्टव्यं" इस

---

[151] हरिवंश पुराण 17/64

[152] न स्मरत्यजशब्दस्य यथहार्थोगुरूदित·। त्रिवर्षा व्रीहयोऽबीजा अजा इति सनातन:।। हरिवंशपुराण 17/69

[153] अजैर्यज्ञविधि. कार्य स्वर्गार्थिभिरिति श्रुति:। अजाश्चात्र चतुष्पादा· प्रणीता प्राणिन· स्फुटम्।। वही 17/99

वेदवाक्य में अज शब्द का अर्थ रूढ़ितः "न जायन्ते इति अजाः (जो उत्पन्न न हो सकें, वे अज हैं, इस व्युत्पत्ति से क्रिया संम्मत तीन वर्ष का धान्य लिया गया है।[154] साक्षात् पशु की तो बात दूर रही, पशु रूप से कल्पित चून केपिण्ड से भी पूजा नहीं करना चाहिए; क्योंकि अशुभ सङ्कल्प से पाप होता है और शुभ सङ्कल्प से पुण्य होता है। जो नाम, स्थापना द्रव्य और भाव निक्षेप के भेद से चार प्रकार का पशु कहा गया है, उसकी हिंसा को कभी मन से भी नहीं करना चाहिए। यह जो कहा गया है कि मन्त्र द्वारा होने वाली मृत्यु से दुःख नहीं होता है, वह मिथ्या है; यदि दुःख नहीं होता है तो जिस प्रकार स्वस्थ अवस्था में मृत्यु नहीं हुई थी, उसी प्रकार अब भी मृत्यु नही होना चाहिए। यदि पैर बाँधे बिना और नाक मूँदे बिना अपने आप पशु मर जाये तब तो मन्त्र से मरना सत्य कहा जाय, परन्तु यह असम्भव बात है। मन्त्र के प्रभाव से मरने वाले पशु को सुखासिका प्राप्त होती है, यह भी एकान्त नहीं है, क्योंकि जो पशु मारा जाता है, वह ग्रह से पीड़ित की तरह जोर-जोर से चिल्लाता है, इसलिए उसका दुःख स्पष्ट दिखाई देता है। यदि ऐसा कहा जाए कि आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म होने से अबध्य है तो ऐसा कहना भी ठीक नही है; क्योंकि जब आत्मा स्थूल शरीर में स्थित होता है, तब स्थूल ही होता है। धर्म युक्त कार्य ही पशु के लिए सुख प्राप्ति में सहायक हो सकता है, अधर्म युक्त नहीं, जिस प्रकार माता के द्वारा दिये हुए घृत, दुग्ध आदि हितकारी पदार्थ ही बच्चे के लिए सुख प्राप्ति में सहायक होते है, विषादिक अपथ्य पदार्थ नहीं, उसी प्रकार पशु को बलात् होम देने मात्र से उसे स्वर्ग की प्राप्ति नही हो सकती, किन्तु उसके धर्मयुक्त कार्य से ही हो सकती है।[155] नारद के इतना समझाने पर भी वसु ने पर्वत के पक्ष मे ही निर्णय दिया, फलस्वरूप उसका स्फटिकमय आसन पृथिवी मे धँस गया और वह मरकर सातवे नरक गया।[156]

पद्मचरित मे इसी प्रकरण मे कहा गया है कि जो कार्य निर्दोष होता है, उसमे प्रायश्चित्त का निरूपण करना उचित नही है, परन्तु इस याज्ञिक हिसा मे

---

[154] वही 17/121-124

[155] हरिवंश पुराण 17/134-145

[156] वही 17/151-152

प्रायश्चित कहा गया है, इसलिए वह सदोष है।[157] पशु यज्ञ में "यदि पशु शब्द करे या अगले दोनों पैरों से छाती पीटे तो हे अनल! तुम मुझे इससे होने वाले समस्त दोष से मुक्त करो", इत्यादि रूप से जो दोषों के बहुत से प्रायश्चित कहे गए हैं, उनके विषय में अन्य आगम से विरोध दिखाई देता है। जिस प्रकार व्याध के द्वारा किया हुआ वध दु:ख का कारण होने से पापबन्ध का निमित्त है, उसी प्रकार वेदी के बीच में पशु का जो वध होता है। वह भी उसे दु:ख का कारण होने से पाप बन्ध का निमित्त है।[158]

पद्मचरित के षष्ठ सर्ग में वानरद्वीप का वर्णन है, वहां के वनों में वानरों की बहुलता थी। राजा श्रीकण्ठ ने बहुत से वानरों के साथ क्रीडा की, वह उन्हें किष्कु पर्वत पर भी ले गया। उसके वंश के उत्तमोत्तम राजा वानरों से प्रेम करते रहे।[159] वे उन्हें माड्.गलिक मानते थे, अत: मड्.गलमय कार्य में उनके चित्र बनाए जाते थे।[160] राजा अमरप्रभ ने रत्नादि के द्वारा वानरों के चिह्न बनवाकर मुकुटों के अग्रभाग में ध्वजाओं में, महलो के शिखरों में, तोरणों के अग्रभाग में तथा छत्र के ऊपर धारण करने का मन्त्रियो को आदेश दिया।[161] अमरप्रभ के वश के लोग वानरवंशी कहलाए।[162]

पद्मचरित के ग्यारहवें पर्व मे कहा गया है कि ब्रह्मा ने पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए की है, यदि यह सत्य है तो फिर पशुओं से बोझा ढोना आदि काम क्यों लिया जाता है? इसमें विरोध आता है। विरोध ही नहीं, यह तो चोरी कहलाएगी।[163] यदि प्राणियों का वध स्वर्ग प्राप्ति का कारण होता तो थोड़े ही दिनों में यह संसार शून्य हो जाता।[164] जो रज और वीर्य से उत्पन्न है, अपवित्र है, कीड़ो का उत्पत्ति स्थान है तथा जिसकी गन्ध और रूप दोनो ही अत्यन्त कुत्सित है ऐसे मांस को देव लोग किस प्रकार खाते हैं?[165] जिस

---

[157] पद्मचरित 11/210
[158] वही 11/214-216
[159] पद्मचरित 6/183
[160] वही 6/184
[161] वही 6/189
[162] वही 6/214
[163] वही 11/229
[164] वही 11/235
[165] वही 11/247

प्रकार सबको दुःख अप्रिय लगता है और सुख प्रिय जान पड़ता है, उसी तरह इन पशुओ को भी लगता होगा। जिस प्रकार तीन लोक के समस्त जीवों को हृदय से अपना जीवन अच्छा लगता है, उसी प्रकार समस्त जन्तुओ की व्यवस्था जानना चाहिए।[166]

महाकवि पुष्पदन्त कृत जसहरचरिउ में कहा गया है "प्राणियों का वध करना आत्मघात ही है, अतः इस प्राणिहिंसा रूपी दुष्कर्म का पुंज क्यों एकत्र किया जाय? पशुओं की हिंसा करके मनुष्य स्वयं कहाँ बच सकता है''? पापी को उसका पाप खोदकर भी खा जाता है। जो कुछ दूसरों के लिए अप्रिय सोचा जाता है वही क्षणार्द्ध में अपने घर आ पहुँचता है। दूसरों को मारने वाला दूसरे द्वारा मारा जाकर स्वयं भी मरता है। वह विघ्न रूपी महानदी के पार कैसे उतर सकता है? इस लोक और परलोक के लिए जीवहिंसा भयकारी है। जीवहिंसा दुर्निरीक्ष्य आयुक्षय होने पर क्या उपकार कर सकती है?[167] हिंसा शान्तिकारी कैसे हो सकती है? वे मूर्ख ही है जो शिला की नाव से नदी पार करना चाहते हैं।[168] हिंसाचारी अधिवक्ता, कर्ता और नेता घोर मायाचारी हैं, शोककारी है व चाण्डाल हैं। जो शास्त्र मलिन कार्य का हेतु है, वह तेजधारा से युक्त खड्ग के समान है और जो ढीठ, निकृष्ट, दर्पिष्ठ व पापिष्ठ लोग भयाकुल पशुओं को बाँधते है, रूँधते हैं, मारते और ध्वस्त करते हैं और फिर घूमते है, नाचते हैं, बाजा बजाते और गाते हैं, वे क्रमशः मलिन नरक में जाते दिखाई देते हैं। वे पहले प्रथम नरक से लेकर सप्तम नरक तक में उत्पन्न होते हैं।[169]

नरक में अपनी आयु पूरी कर वहाँ से निकलने पर वे पापी जीव भील होते हैं, गूंगे व अस्पष्टभाषी, पगुल, लूले, बहरे, अन्धे, मट्ठे होते हैं। वे काने, कानीन (कन्यापुत्र), धनहीन, दीन, दुःखी और बलक्षीण होते हैं। वे निकम्मे, गृहहीन, कान्तिहीन व कुख्यात तथा नेत्रहीन, निष्प्राण, चाण्डाल और नीच होते हैं। वे डोम, कलाल व मत्स्यजीवी मछुए तथा बड़ी दाढ़ो से युक्त, कोल (सुअर), सिंह और शार्दूल होते है। वे विकराल, सीग वाले तथा नुकीले नख

166 वही 11/271-272

167 जसहरचरिउ 2/14

168 वही 2/15

169 वही 2/17

वाले हिंसक पशु अथवा पंखो वाले पक्षी होते हैं। वे लाल आँखों वाले सर्प अथवा मांसभक्षी मच्छ भी होते हैं और वे छेदन, रूंधन, बन्धन, वंचन, लुंचन, खेंचन, कुंचन, लुट्टन, कुट्टन, घट्टन वट्टन, नाना प्रकार के पीडन, हलन व चालन तथा तलन, दलन, मलन, और मिलन के दु:ख तिर्यंचयोनियों में, नरकों में, मनुष्यों में और वृक्षों मे जन्म लेकर भोगते हैं। वे स्वर्ग कैसे जा सकते हैं? यदि पशु हिंसा से परमधर्म की उत्पत्ति हो तो बहुगुणी मुनि को छोड़कर पारिधि (बहेलिया) को क्यों न प्रणाम किया जाये?[170] चाहे मेढी हो और चाहे हरिणी, चाहे गाय हो और चाहे शूकरी, ये सब तृण चरने वाले वनचर भी अपने-अपने पाप से अपनी-अपनी पशु गति को प्राप्त हुए हैं, किन्तु जिनेन्द्र की दृष्टि मे ये सभी जीव समान हैं। गाय को देवी मानकर और उसे देवों की कामधेनु समान समझकर उसकी वन्दना करता है और फिर गोमेध यज्ञ में उसका घात भी करता है और इस प्रकार अपने को भव-संसार से पार उतारता है। जो वृषभ यज्ञ को धर्म मानकर उसमे रति करता है तथा सौदामिनी यज्ञ में मद्यपान का व्याख्यान करता है, ऐसे विप्र को प्रसन्न करने की चिन्ता नहीं करना चाहिए तथा सच्चे ऋषियों द्वारा उपदिष्ट धर्म ग्रहण करना चाहिए।[171]

जयहरचरिउ की तृतीय सन्धि में कहा गया है "अन्तत: कुत्ते वे ही होते है, जो मृगो का विदारण करते हैं और क्या कुत्तों के मस्तक पर कोई सींग होते है।''[172] अन्यत्र कहा है- जहाँ वनचर जीवों के समूह का घात कराया जाता है, वहां परभव में स्थित अपने बन्धु का भी हनन हो जाता है।[173]

स्याद्वाद मञ्जरी में मल्लिषेण सूरि ने कहा है कि बेचारे पशुओं के मास का दान करना केवल निर्दयता का ही द्योतक है। यदि कहो कि वेदोक्त रीति से पशु बध करने का फल केवल पशुओं के मांस का दान करना नहीं, किन्तु उससे विभूति की प्राप्ति होती है; क्योंकि श्रुति में भी कहा है- "ऐश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले पुरुष को वायु देवता के लिए श्वेत बकरे का यज्ञ करना चाहिए'' आदि यह भी व्यभिचार पिशाच से ग्रस्त होने के कारण ठीक नही है, क्योंकि ऐश्चर्य की प्राप्ति अन्य उपायो से भी हो सकती है। यदि

---

[170] वही 2/19

[171] जसहरचरिउ 3/30

[172] वही 3/35

[173] वही 4/1

कहो कि यज्ञ में मारे जाने वाले बकरे आदि परलोक में स्वर्ग प्राप्त करते हैं, इसलिए प्राणियों का उपकार होता है, यह भी ठीक नहीं; क्योंकि बकरे आदि यज्ञ में वध किए जाने के बाद स्वर्ग प्राप्त करते हैं, इसमें कोई प्रमाण नहीं है; क्योंकि मरने के बाद स्वर्ग में गए हुए पशु स्वर्ग से आकर प्रसन्न मन से वहाँ के समाचारों को नहीं सुनाते। यदि यज्ञ में पशुओं को बाँधने की लकड़ी को काट करके, पशुओं का वध करके और उससे पृथ्वी का सिंचन करके स्वर्ग की प्राप्ति होती है तो फिर नरक में कौन जाएगा?

यदि अपरिचित और अस्पष्ट चेतना युक्त तथा किसी प्रकार का उपकार न करने वाले मूक प्राणियों के वध से भी स्वर्ग की प्राप्ति होना सम्भव है तो परिचित और स्पष्ट चेतनायुक्त तथा महान् उपकार करने वाले अपने माता-पिता के वध करने से यज्ञिक लोगों को स्वर्ग से भी अधिक फल मिलना चाहिए। यदि आप कहें कि मणि, मन्त्र और औषध का प्रभाव अचिन्त्य होता है, इसलिए वैदिक मन्त्रों का भी अचिन्त्य प्रभाव है, अतएव मन्त्र से संस्कृत पशुओं का वध करने से पशुओं को स्वर्ग मिलता है तो यह भी ठीक नहीं; क्योकि इस लोक मे विवाह गर्भाधान और जातकर्म आदि में उन मन्त्रों का व्यभिचार पाया जाता है तथा अदृष्ट स्वर्ग आदि मे उस व्यभिचार का अनुमान किया जाता है। देखा जाता है कि वैदिक विधि के अनुसार विवाह आदि किए जाने पर भी स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं तथा सैकड़ों मनुष्य अल्पायु, दरिद्रता आदि उपद्रवों से पीड़ित रहते हैं तथा विवाह आदि के वैदक मन्त्र विधि से सम्पादित न होने पर भी अनेक स्त्री पुरुष आनन्द से जीवन यापन करते है, अतः वैदिक मन्त्रों से सस्कृत वध किए जाने पर पशुओं को स्वर्ग की प्राप्ति स्वीकार करना ठीक नहीं है। यदि आप कहे कि मन्त्र अपना पूरा असर दिखाते हैं, किन्तु यदि मन्त्रों की ठीक-ठीक विधि नहीं की जाय तो मन्त्रों का असर नही रहता, यह कथन भी ठीक नही है। इससे सशय की निवृत्ति नहीं होती; क्योकि मन्त्रों की विधि मे वैगुण्य होने से मन्त्रो का प्रभाव नष्ट हो जाता है, अथवा स्वयं मन्त्रो मे ही प्रभाव दिखाने की असमर्थता है, यह कैसे निश्चय हो? मन्त्रो के फल से अविनाभाव की सिद्धि नहीं होती।[174] तत्वदर्शी

---

[174] स्याद्वाद मन्जरी पृ० 91-92

लोगो ने कहा है - "जो निर्दय पुरुष देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अथवा यज्ञ के बहाने पशुओं का वध करते हैं, वे दुर्गति में पड़ते हैं।[175]

वेदान्तियों ने भी कहा है -

"यदि हम पशुओं से यज्ञ करें तो घोर अन्धकार में पड़ें, अतएव हिंसा न कभी धर्म हुआ, न है और न होगा।"[176]

आचार्य जिनसेनकृत हरिवंशपुराण से ज्ञात होता है कि जिस समय तीर्थकर नेमिनाथ राजीमति से विवाह करने हेतु प्रस्थान कर रहे थे उस समय मार्ग में उन्होंने ऐसे तृणभक्षी पशुओं को देखा, जिनके मन और शरीर भय से काँप रहे थे, जो अत्यन्त विह्वल थे, पुरुष जिन्हें रोके हुए थे और जो नाना जातियों से युक्त थे।[177] उन्होंने सारथि से पूछा- "ये नाना जाति के पशु यहाँ किसलिए रोके गए हैं?" सारथि ने नम्रीभूत हो हाथ जोड़कर कहा हे विभो! आपके विवाहोत्सव में जो मांसभोजी राजा आए हैं, उनके लिए नाना प्रकार का मांस तैयार करने के लिए यहाँ पशुओं का निरोध किया गया है।[178] इस प्रकार सारथि के वचन सुनकर ज्यों ही भगवान् ने मृगसमूह की ओर देखा, त्यों ही उनका हृदय प्राणि दया से सराबोर हो गया। वे कहने लगे कि वन ही जिनका घर है, वन के तृण और पानी ही जिनका भोजन-पान है और अत्यन्त निरपराध है ऐसे दीन मृगो का संसार में फिर भी मनुष्य वध करते हैं। मनुष्यों की निर्दयता को देखो। रण के अग्रभाग में जिन्होंने कीर्ति का संचय किया है, ऐसे शूरवीर मनुष्य हाथी, घोड़े और रथ आदि पर सवार हो निर्भयता के साथ मारने के लिए खड़े हुए लोगों पर ही उनके सामने जाकर प्रहार करते हैं, उन्हे लज्जा क्यो नहीं आती? जो शूरवीर पैरो में काँटा न चुभ जाए, इस भय से स्वयं तो जूता पहिनते है और शिकार के समय कोमल मृगों को सैकड़ों प्रकार के

---

[175] देवोपहारव्याजेन यज्ञव्याजेन येऽथवा।
घ्नन्ति जन्तून् गतघृणा घोरा ते यान्ति दुर्गतिम्।।
स्याद्वाद मञ्जरी में उदधृत, पृ० 94

[176] अन्धे तमसि मज्जाम पशुभिर्ये यजामहे।
हिंसा नाम भवेद्धर्मो न भूतो न भविष्यति।। वही पृ० 94

[177] हरिवंश पुराण 55/85

[178] वही 55/87

तीक्ष्ण शस्त्रों से मारते हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है।[179] यह निन्द्य मृगसमूह का वध प्रथम तो विषयसुख रूपी फल को देता है, परन्तु जब इसका अनुभव अपना रस देने लगता है तब उत्तरोत्तर छह काय का विघात सहन करना पड़ता है। यह मनुष्य चाहता तो यह है कि मुझे विशाल राज्य की प्राप्त हो, पर करता है समस्त प्राणियों का वध सो यह विरुद्ध बात है; क्योंकि प्राणिबध का फल तो निश्चित ही पापबन्ध है और उसके फलस्वरूप कटुक फल की हीप्रतीति होती है, राज्यादिक मधुर फल की नहीं।[180] इस प्रकार विचार कर उन्होंने प्रव्रज्या अङ्.गीकार कर ली।

यशस्तिलक चम्पू मे आचार्य सोमदेव ने कहा है कि पशुओं की बलि करने से देवता सन्तुष्ट होते हैं, यह कथन असत्य है। कुलदेवता यदि इन पशुओं का भक्षण करते हैं तो निश्चय से इस संसार में व्याघ्र ही स्तुति करने योग्य होवे; क्योंकि व्याघ्रादि हिंसक जन्तु तो पशुओं को मारकर स्वयं भक्षण करते हैं और देवता तो लोगो को प्रेरित कर मरण कराकर बाद में खाते है, अतः देवता स्तुतियोग्य नहीं है। यह पापी मनुष्य निश्चय से देवता का बहाना कर मांस भक्षण में अनुराग करता है। यदि इस प्रकार देव का बहाना न होता तो पापियों को दूसरा कौन सा दुर्गति का मार्ग होता?[181]

यदि प्राणियों का वध करना निश्चय से धर्म है तो शिकार की पापर्द्धि नाम से प्रसिद्धि क्यों है? एवं मांस पकाने वाले का "गृहाद्बहिर्वास" (घर से बाहर निवास करना) तथा मांस का "रावण शाक" इस प्रकार का दूसरा नाम कथन किस प्रकार है? तथा अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या व एकादशी - आदि पर्व दिनों में मांस का त्याग किस प्रकार से है? यह पौराणिक श्रुति भी किस प्रकार है कि हे युधिष्ठिर! जितने पशुओं के रोम पशु शरीरों में वर्तमान है, उतने हजारों वर्ष पर्यन्त पशु घातक नरको में पलते हैं।[182] यदि यज्ञकर्म करने वालों को स्वर्ग प्राप्त होता है तो वह स्वर्ग कसाइयों को विशेष रूप से प्राप्त

---

[179] वही 55/88-92

[180] वही 55/92-94

[181] यशस्तिलक चम्पू - चतुर्थ आश्वास, पृ० 55

[182] वही पृ० 55

होना चाहिए। यदि मन्त्रोच्चारण पूर्वक होमे गए पशुओं को स्वर्ग होता है तो अपने पुत्र आदि कुटुम्ब वर्गों से यज्ञ- विधि क्यों नहीं होती?[183]

इन्द्र की सभा में ब्राह्मणों के आचरण के प्रति विवाद करते हुए दो देवता उनके आचार की परीक्षा के लिए एक बकरा बनकर और दूसरा बकरे की जीविका करने वाले के बहाने से पटना नगर के समीपवर्ती वन में अवतीर्ण हुए। उसी अवसर पर काङ्.कायन नाम का उपाध्याय जो कि साढ़े पाँच सौ छात्रों का अध्यापन करने वाला था एवं जिसकी मर्यादा चारों वेद. व छह वेदाङ्गों व उपाङ्.गों के उपदेश देने में थी, जो साठवीं बार यज्ञ कराने का इच्छुक था, वहीं आया। उसने महाशूद्र सहित व विशाल काय वाले बैल सरीखे बकरे को देखा। फिर यह विचार कर कि आश्चर्य है कि यह बकरी का बच्चा निश्चय से यज्ञ कर्म में अच्छा है, उस बोझ ढोने वाले पुरुष से निम्न प्रकार कहा- "अरे मनुष्य! उस बकरे को यदि बेचना चाहते हो तो इधर लाओ।'' बकरा ले जाने वाले मानव ने कहा- "भट्ट! मैं तो इस बकरे को बेचने का इच्छुक हूँ, यदि आप यह मुद्रिका मेरे लिए प्रसन्न होकर अर्पण करें।'' फिर उपाध्याय ने मुद्रिका देकर उसे वापिस भेजा और शिष्य को आज्ञा दी- "कुशिक! यह बकरी का बच्चा विशेष बलिष्ठ है, अतः इसे यत्न पूर्वक दुपट्टे से बाँधकर मेरे घर पर ले जाओ। मैं भी आपके पीछे ही आऊँगा।'' जब शिष्य वैसा ही कर रहा था तब वह बकरा पृथ्वी पर बज्र से कीलित हुआ सरीखा बैठ गया। उपाध्याय के साढ़े पाँच सौ शिष्य भी मिलकर उसे उठा न सके। इस बकरे के मांस द्वारा वेदोक्त विधि से देवता, पिता, ब्रह्मण आदि तृप्ति प्राप्त करें, इस प्रकार के भाषण से उत्कट क्रोध करने वाले व जिसके नेत्र क्रोध रूप विष की उत्पत्ति से लाल हुए हैं एवं जो शीघ्र स्वंय ही वध करने के लिए उठाए हुए पर्वताकार सरीखे पाषाणों से कर्कश हो रहा था, ऐसे उपाध्याय से वह बकरा मनुष्य के समान बोला- "भट्ट का यह महान् प्रयास किस कारण से हो रहा है''? उपाध्याय भयभीत व आश्चर्यान्वित होता हुआ निम्न प्रकार बोला- "हे महा पुरुष! आपके स्वर्ग गमन के लिए मेरा प्रयास है।'' उक्त बात को सुनकर बकरे ने मन में विचार किया। दूसरे पशु जो कि यज्ञ के बहाने से आपके द्वारा भक्षण किए गए हैं, वे अकिञ्चित्कर

---

[183] वही पृ० 75

शरीरधारी थे, परन्तु विशाल शरीरधारक मेरे विषय में चट्टान की मूर्ति को चबाने के समान तुम्हारे दाँत टूटेंगे। मूझे स्वर्ग पहुँचाओ, इस प्रकार मैंने तुमसे प्राथना नहीं की। मैं तो बेरी आदि के पत्तों को चबाने ही से निरन्तर सन्तुष्ट हूँ। उत्तम वर्ण वाले तुम्हें कर्म चाण्डाल सदृश होकर मेरा वध करना उचित नहीं है। यदि तुम्हारे द्वारा यज्ञ में मारे हुए प्राणी निश्चय से स्वर्ग में जाते हैं तो तुम माता-पिताओं तथा अपने पुत्रों व बन्धु वर्गों से यज्ञ क्यों नहीं करते?[184]

वीरोदय काव्य में आचार्य ज्ञानसागर ने कहा है कि जो दूसरों को मारता है, वह स्वयं दूसरों के द्वारा मारा जाता है और जो दूसरों की रक्षा करता है, वह सर्व जगत् में पूज्य होता है। आँख में काजल लगाने वाली अंगुलि पहले स्वयं ही काली बनती है।[185]

आराधना कथा प्रबन्ध से ज्ञात होता है कि वैजयन्त अपने हाथी के प्रति अत्यधिक स्नेह करता था, यही कारण है कि वह अपने मुख्य हाथी का बिजली गिरने से मरण देखकर वैराग्य को प्राप्त हो गया।[186]

वाराणसी नगरी में राजा पाकशासन ने समस्त देश में मरी का रोग सुनकर कार्तिक शुक्ल अष्टमी प्रभृति आठ दिनों में शान्ति के लिए जीव हिंसा के निषेध की घोषणा करा दी। सात व्यसनों से अभिभूत राजश्रेष्ठी धर्म नामक पुत्र उद्यान के वन में विचरण करते हुए राजकीय मेंढा मारकर मांस का उपयोग कर हड्डियों को गड्ढे में डालकर मिट्टी के द्वारा गड्ढे को ढककर चला गया। मेढे के दिखाई न देने पर राजा ने सब जगह गुप्तचर भेजे। रात में उद्यानपाल ने अपनी पत्नी से मेंढे के मारने के वृतान्त को कहा- उसे सुनकर गुप्तचर ने राजा से कह दिया। राजा ने सेठ के धर्म नामक पुत्र को शूली लगने के स्थान में उसे लाकर यमपाल चाण्डाल को मारने के लिए बुलवाया। यमपाल चाण्डाल ने सर्वोषधि मुनि के समीप धर्म सुनकर "चतुर्दशी में जीवों को नहीं मारूँगा", इस प्रकार व्रत ग्रहण किया था। अनन्तर भार्या से (यमपाल चाण्डाल) गांव चला गया है, ऐसा तुम कह देना, इस प्रकार कहकर घर के कोने में छिपकर खड़ा हो गया। भार्या के वैसा कहने पर बहुत सोने से युक्त

---

[184] यशस्तिलक चम्पू - चतुर्थ आश्वास, पृ० 75-76

[185] वीरोदय 16/7

[116] आराधना कथा प्रबन्ध, पृ० 29

चोर के मारने के अवसर पर वह पापी आज चला गया, इस प्रकार ·यमदण्ड के वचन कहने पर उस भार्या ने हाथ के इशारे से यमपाल को दिखला दिया। निकले जाने पर भी बोलने लगा - "आज नहीं मारूँगा। राजा के आगे भी ले जाने पर यही कहने लगा कि महाराज! आज नहीं मारूँगा; क्योंकि चतुर्दशी के दिन जीवहिंसा न करने का मेरा नियम है।" अनन्तर कुपित होकर राजा ने कहा- "दोनों को ही सुंसुमार नामक तालाब में फेक दो।" यमदण्ड ने दोनों को ही वहाँ पर फेक दिया। धर्म को सुंसुमारों ने खा लिया.। यमपाल व्रत के माहात्म्य से जल देवियों के द्वारा सिंहासन पर बैठाकर पूजित किया गया।[187]

जैन कथाओं में ऐसे दृष्टान्त भी आए हैं कि पशुओं के द्वारा खए जाने पर भी मुनि किञ्चित् भी प्रतीकार न कर परम समाधि को प्राप्त हुए। स्यालिनी के द्वारा तीन रात्रि तक खाया हुआ घोर वेदना से दुःखी अवन्ति सुकुमाल भी ध्यान से आराधना को प्राप्त हुआ।[188] मौद्गिल्य नामक पर्वत पर सिद्धार्थ सेठ के पुत्र सुकोशल व्याघ्री के द्वारा खाए जाते हुए उत्तम अर्थ (रत्नत्रय के निर्वाह)[189] को प्राप्त हुए। सिंहचन्द्र मुनि के पिता की मृत्यु साँप के काटने से हुई थी। वे मरने के बाद सल्लकी वन में हाथी हुए। एक दिन वे सिंहचन्द्र को मारने के लिए दौड़ पड़े थे। उन्होंने पिता के जीव हाथी को समझाया - "गजराज! क्या आप भूल गये आप अपने पूर्वजन्म में मेरे पिता थे। मैं वही आपका प्यारा पुत्र हूँ। हाय! कितने आश्चर्य की बात है कि आप स्वयं पिता होकर अपन प्रिय पुत्र को मारने के लिए दौड़ पड़े हैं।" उनके इस प्रकार स्मरण दिलाने पर गजराज चौंक गया। अपने पूर्व जन्म की स्मृति कर उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। वह मूर्ति के समान निश्चल खड़ा रहा। सिंहचन्द्र मुनिने उसे जिनधर्म का उपदेश दे पञ्च अणुव्रत दिये। इसके बाद वह हाथी प्रासुक अन्न जल ग्रहण कर व्रत की पूर्ति करने लगा। एक दिन वह पानी पीने के लिए नदी किनारे गया, किन्तु वह कीचड़ में फँस गया। उसने कीचड़ से निकलने की लाख कोशिश की मगर वह निकल न सका। तब उसने कीचड़ में समाधिमरण की प्रतिज्ञा ली। उसी समयपूर्व जन्म का वैरी श्रीभूति का जीव मुर्गा उसके शरीर पर बैठकर उसका जीवित मांस

---

[187] आराधना कथा प्रबन्ध - कथाङ्क- 26 पृ० 96-97

[188] भगवती आराधना-1539

[189] वही 1540

खाने लगा। यद्यपि हाथी को शरीर में मुर्गा द्वारा मांस खाने से घोर वेदना होती थी, किन्तु उसने असह्य वेदना की रञ्चमात्र भी परवाह नहीं की। वह पञ्च नमस्कार मन्त्र का स्वाध्याय करने लगा। फलस्वरूप शान्ति से मरकर सहस्रार स्वर्ग का देव हुआ।[190]

रश्मिवेग मुनि को श्रीभूति के जीव भयङ्कर अजगर ने काट खाया। मुनिराज अपने अटूट ध्यान में लीन थे, उन्हें क्या परवाह थी? अन्त में उनके सारे शरीर में विष व्याप्त हो गया। वे मरकर कापिष्ठ स्वर्ग में गये।[191]

अहिछत्रपुर के राजा वसुपाल ने "सहस्रकूट'' नामक रमणीय और विशाल जिन मन्दिर का निर्माण कराया। उसमें भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित की। प्रतिमा पर लेप चढ़ाने के लिए एक प्रसिद्ध लेपकार को बुलाया। उसने बड़ी सुन्दरता से लेप चढ़ाया, किन्तु प्रातःकाल जब देखा गया तो लेप गिर चुका था। ऐसे कई दिन बीत गये। शाम को लेप चढ़ाता था और रात को गिर जाता था। इससे वहाँ के नागरिक और राजा बड़े दुःखी हुए। उसका कारण यह था कि लेपकार मांसाहारी था। उसकी अपवित्रता से प्रतिमा पर लेप गिर जाता था। चित्रकार को संयोग से एक मुनि द्वारा रहस्य मालूम हुआ उसने मांस न खाने का व्रत लिया, अनन्तर दूसरे दिन उसने लेप किया, अबकी बार वह लेप ठहर गया। राजा ने प्रसन्न होकर लेपकार का सत्कार किया।[192]

एक बगीचे में तपस्वी सागरसेन मुनि ठहरे थे। नगर निवासी गाजे बाजे के साथ उनके दर्शन के लिए आए थे। उनके लौट जाने पर एक श्रृगाल ने यह समझा कि लोग एक मुर्दा डाल गए हैं। वह खाने के लिए आया। तब मुनिराज ने उसे समझाया कि पाप का परिणाम बुरा होता है। तू मुर्दा खाने के लिए इतना व्यग्र हो रहा है, तुझे धिक्कार है। तूने जैनधर्म न ग्रहण कर आज तक तो दुःख उठाया, पर अब तू पुण्य पथ पर चलना सीख। उसके भाग्य अच्छे थे। मुनि का उपदेश सुनकर वह शान्त हो गया। मुनि ने फिर कहना आरम्भ किया- "तू व्रतों को धारण नही कर सकता, इसलिए रात्रि को खाना-पीना छाड़ दे। यह व्रत सब व्रतों का मूल है।'' श्रृगाल ने ऐसा ही

---

[190] आराधना कथा कोश (संजयन्त मुनि की कथा) प्र० भाग पृ० 60

[191] आराधना कथा कोश (संजयन्त मुनि की कथा) पृ० 63

[192] वही (अवग्रह लेने वाले की कथा) भाग-3 पृ० 65

किया। वह सदा मुनिराज के चरणों का स्मरण किया करता था। एक दिन श्रृगाल को प्यास लगी। वह एक कुयें में पानी पीने गया। कुयें के भीतर अँधेरा था। उसने समझा रात हो गयी। बिना पानी पिये ही लौट आया। वह कई बार कुयें के भीतर उतरा, पर वहाँ सूर्य का प्रकाश न देखकर लौट आता था। अन्त में वह इतना अशक्त हो गया कि अबकी बार कुये से बाहर ही न निकल सका। वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के पश्चात् उसने धनमित्रा के गर्भ से प्रीतिकर के रूप में जन्म लिया। प्रीतिकर मुनि हो गया और शुक्लध्यान पूर्वक मोक्ष गया।[193] इस प्रकार जैन साहित्य में पशुजगत् की सरक्षा के अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।

मांसाहार त्याग के आगमिक आधार

जैनागम रूपी प्रसाद जिन भित्तियों पर टिका हुआ है, उनमें अहिंसा प्रमुख है। अहिंसा का जैसा सूक्ष्म विवेचन जैन ग्रन्थों में मिलता है, वह अन्यत्र विरल है। आचाराड्.ग सूत्र में त्रसकायक जीवों की हिंसा का निषेध किया गया है। त्रसकायिक के प्रकरण में कहा गया है- "मैं कहता हूँ। कुछ व्यक्ति शरीर के लिए प्राणियों का वध करते हैं। कुछ लोग चर्म, मांस, रक्त, हृदय, पित्त, चर्बी, पंख, पूँछ, केश, सींग, विषाण, दाँत, दाढ़, नख, स्नायु अस्थि और अस्थिमज्जा के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं। कुछ व्यक्ति प्रयोजनवश प्राणियों का वध करते हैं। कुछ व्यक्ति (ये मेरे स्वजन वर्ग की) हिंसा कर रहे हैं। कुछ व्यक्ति (इन्होंने मेरे स्वजन वर्ग की) हिंसा की थी (यह स्मृति कर प्राणियों का) वध करते हैं। कुछ व्यक्ति ये मेरे स्वजन वर्ग की हिंसा करेंगे- इस सम्भावना से प्राणियों का वध करते हैं। जो त्रसकायिक जीव पर शस्त्र का समारंभ (प्रयोग) करता है, वह इन आरम्भों (तत्सम्बन्धी व तदाश्रित जीवहिंसा प्रवृत्ति) से बच नहीं पाता। जो त्रसकायिक जीव पर शस्त्र का समारंभ नहीं करता वह इन आरम्भों (तत्सम्बन्धी व तदाश्रित जीव हिंसा की प्रवृत्ति) से मुक्त हो जाता है। यह जानकर मेधावी मनुष्य स्वयं त्रस काय पर शस्त्र का समारम्भ न करे, दूसरों से उसका समारम्भ न करवाए, उसका

[193] वही (रात्रिभोजन त्याग की कथा) भाग-3 पृ० 117-118

समारम्भ करने वालों का अनुमोदन न करे।''[194] आचाराङ्ग के इस उल्लेख में मांसाहार हेतु की गई हिंसा का स्पष्ट निषेध किया गया है।

आचाराङ्ग के चौथे सम्यक्त्व नामक अध्ययन में कहा गया है कि "जगत् में कुछ श्रमण और ब्राह्मण परस्पर विरोधी मतवाद का निरूपण करते हैं। कुछ कहते हैं हमने देखा है, सुना है, मनन किया है और भली-भांति समझा है, ऊँची-नीची और तिरछी सब दिशाओं में सब प्रकार से इसका निरीक्षण किया है कि किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्व का हनन किया जा सकता है, उनका प्राण वियोजन किया जा सकता है। तुम जानो कि हिंसा में कोई दोष नहीं है। यह (हिंसा का प्रतिपादन) अनार्य वचन है।''

"हम इस प्रकार आख्यान करते हैं, भाषण करते हैं, प्रसारण करते हैं एवं प्रज्ञापन करते हैं कि किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्व का हनन नहीं करना चाहिए। उन पर शासन नहीं करना चाहिए, उन्हें दास नहीं बनाना चाहिए, परिताप नहीं देना चाहिए, उनका प्राण वियोजन नहीं करना चाहिए। तुम जानों कि अहिंसा (सर्वथा) निर्दोष है।''[195]

स्थानाङ्ग सूत्र में मधु, मांस, मद्य और नवनीत को चार महाविकृतियाँ कहा गया है।[196] स्थान-1 में मांस की नव विकृतियों में गणना की गई है।[197] स्थान-10 में औदारिक अस्वाध्याय दस प्रकारों में गणना की गई है। ये दस प्रकार हैं (1) अस्थि, (2) मांस, (3) रक्त, (4) अशुचि की समीपता, (5) श्मसान की समीपता, (6) चन्द्र ग्रहण, (7) सूर्य ग्रहण, (8) पत्तन-प्रमुख व्यक्ति का मरण, (9) राज्य विप्लव तथा (10) उपाश्रय के भीतर सौ हाथ तक कोई औदारिक क्लेवर के होने तक।[198]

जैन धर्म में हिंसा-अहिंसा का विचार जीवों की सँख्या के आधार .पर न कर भाव के आधार पर किया गया है। अतः किसी एक प्राणी की हिंसा भी की गई हो, किन्तु कषाय रूप परिणाम अधिक हुए हो तो अधिक हिंसा मानी

---

[194] आयारो, प्रथम अध्ययन, पृष्ठ उद्देशक 140-143, पृ० 40-42

[195] आयारो 4/1/20, 21, 23

[196] चत्तारि महाविगतीओ, पण्णत्ताओ, त जहा-महु, मस, मज्ज, णवणीत-ठाण 4/185

[197] वही 9/23

[198] वही 10/21

गयी है। सूत्रकृताङ्.ग में हस्ति तापसों की चर्चा है। जब आर्द्रकुमार महावीर से मिलने को प्रस्थान करते हैं तो राह में अनेक मत वाल मिलते हैं और अपने-अपने मतों की प्रधानता दिखाते हैं। उसी सिलसिले में हस्तितापस भी आते हैं और कहते हैं- बुद्धिमान् मनुष्यों को सदा अल्पत्व और बहुत्व का विचार करना चाहिए। जो कन्दमूल, फल आदि को खाकर अपना निर्वाह करने वाले तापस हैं, वे बहुत से स्थावर प्राणियों का तथा उनके आश्रित अनेक जङ्. गम प्राणियों का नाश करते हैं तथा जो लोग भिक्षा से अपनी जीविका चलाते हैं, वे भी भिक्षा के लिए इधर उधर जाते समय अनेक कीड़ी आदि प्राणियों का मर्दन करते हैं तथा भिक्षा की कामना से उनका चित्त भी दूषित हो जाता है। अत: हम लोग वर्षभर में एक महान् हाथी को मारकर उनके मांस से वर्ष भर अपना निर्वाह करते हैं और शेष जीवों की रक्षा करते हैं। अत: हमारे धर्म आचरण करने से अनेक प्राणियों की रक्षा और एक प्राणी का विनाश होता है। इसलिये यह धर्म सबसे श्रेष्ठ है।[199] भगवान् महावीर ने हस्तितापसों के उपर्युक्त मत को असमीचीन बतलाया। उपासकदशाङ्.म में आनन्द गाथापति के द्वारा अहिंसा व्रत धारण करने का प्रकरण आया है। वे भगवान् महावीर के समक्ष कहते हैं कि व्रतो के श्रेष्ठ अहिंसाव्रत के रूप में स्थूल प्राणातिपात का दो करण तथा तीन योग से करने का त्याग करता हूँ।[200]

उत्तराध्ययन सूत्र के 22 वें अध्ययन में अरिष्टनेमि का प्रकरण आया है। वे राजीमती से विवाह करने उग्रसेन के प्रासाद की ओर चतुरङ्.गणी सेना से परिवृत होकर जा रहे थे। उन्होंने वहाँ जाते हुए भय से संत्रस्त, बाड़ों और पिंजरों में निरुद्ध, दु:खी प्राणियों को देखा। वे मरणासन्न दशा को प्राप्त थे और मांसाहार के रूप में खाए जाने वाले थे। उन्हें देखकर महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने सारथि से इस प्रकार कहा-"सुख की राह चाहने वाले ये सब प्राणी किसलिए इन बाड़ों और पिजरो में रोके हुए हैं?" सारथि ने कहा- "ये भद्र प्राणी तुम्हारे विवाह कार्य में बहुत जनो को खिलाने के लिए यहाँ रोके हुए है।" अरिष्टनेमि ने सोचा यदि मेरे निमित्त से इन जीवो का वध होने वाला

---

[199] जैनधर्म मे अहिसा (डा० वशिष्ठ नारायण सिन्हा) पृ० 156

[200] तए णं से आणंद गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए तप्पढमयाए थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइ, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा।। 13, उपासकदशाङ्.ग सूत्र प्र० अध्ययन।

है तो यह परलोक में मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं होगा। ऐसा सोचकर उन्होंने रैवतक पर्वत पर जाकर सहस्राम्र वन में दीक्षा अङ्.गीकार की।[201]

उत्तराध्ययन सूत्र में अध्ययन 5 में एक स्थान पर कहा है- हिंसा करने वाला, झूठ बोलने वाला, मायावी, चुगलखोर तथा शठ मनुष्य मद्य और मांस का भोग करता है और "यह श्रेय है'' ऐसा मानता है।[202]

दशवैकालिक चूर्णि में जिनदास महत्तर ने मांस के लिए राग से हिंसा होती है, ऐसा उल्लेख किया है। उनके अनुसार प्राणातिपात द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार दृष्टिकोंण से व्यवच्छिन्न होता है।

1- द्रव्य की दृष्टि से उसका विषय छह जीवनिकाय है। हिंसा सूक्ष्म-बादर छह प्रकार के जीवों की होती है।

2- क्षेत्र की दृष्टि से उसका विषय समूचा लोक है। लोक में ही हिंसा सम्भव है।

3- काल की दृर्षट से उसका विषय सर्व काल है। रात व दिन सब समय हिंसा हो सकती है।

4- भाव की दृष्टि से उसका हेतु राग-द्वेष है। जैसे-मांस के लिए राग से हिंसा होती है। शत्रु का हनन द्वेषवश होता है।[203]

दशवैकालिक अध्ययन 4 में एक जगह कहा गया है - जो जीवों को भी जानता है, अजीवों को भी जानता है वही, जीव और अजीव दोनों को जानने वाला ही संयम को जान सकेगा।[204] जिनदास चूर्णि में कहा गया है- संयम दो प्रकार का होता है- जीव संयम और अजीव सयम। किसी जीव को नहीं मारना- जीव संयम है। मद्य, मांस, स्वर्णआदि जो संयम के घातक हैं,

---

[201] उत्तराध्ययन सूत्र 22/12-23

[202] हिसे बाले मुसावाई माइल्ले पिसुणे सढे। भुंजमाने सुर मस सेयमेय ति मन्नई।। वही 5/9

[203] इयाणि एस एव पाणइवाओ चउव्विहो सवित्थरो मण्णइ। त० दव्वओ खेत्तओ, कालओ, भावओ। दत्वओ छसु जीवणिकाएसु सहुमबादरेसु भवति। खेत्तओ सव्व लोगे, कि. कारण जेण सव्वलोए तस्स पाणाइवायस्स उप्पत्ती अत्थि, कालओ दिया वा राओ वा ते चेव सुहुमबादराजीवा ववरोविज्जंति, भावओ रागेण वा दोसेण वा, तत्थ रागेण मसादीणं अट्टाए अथवा रागेण कोइ कंचि अणुमरति, दोसेण वितिय मारेइ। जि०चू० पृ० 147

[204] दशवैकालिक 4/13

उनका परिहार करना अजीव संयम है। जो जीव और अजीव को जानता है, वही उनके प्रति संयत हो सकता है।[205]

दशैकालिक की द्वितीय चूलिका में एक स्थान पर कहा गया है- साधु मद्य और मांस का अभोजी, अमत्सरी, बार-बार विकृतियों को न खाने वाला, बार-बार कायोत्सर्ग करने वाला और स्वाध्याय के लिए विहित तपस्या में प्रयत्नशील हो।[206] मद्य और मांस भी विकृति हैं। कुछ विकृत पदार्थ भक्ष्य हैं और कुछ अभक्ष्य। चूर्णियों के अनुसार भिक्षु के लिए मद्य-मांस का जैसे अत्यन्त निषेध है, वैसे दूध दही आदि विकृतियों का अत्यन्त निषेध नहीं है। फिर भी प्रतिदिन विकृति खाना उचित नहीं होता, इसलिए भिक्षु बार-बार निर्विकृतिक भोजन करने वाले होते हैं।[207]

भगवती आराधना में कहा गया है कि जीवों का घात अपना ही घात है और जीवों पर की गयी दया अपने पर ही दया है। जो एक बार एक जीव का घात करता है, वह स्वयं अनेक जन्मों में मारा जाता है और जो एक जीव पर दया करता है, वह स्वयं अनेक जन्मों में दूसरे जीवों के द्वारा रक्षा किया जाता है। इसलिए दु:ख से डरने वाले मनुष्य को काँटे की तरह हिंसा से बचना चाहिए।[208] जो आरम्भ का त्यागी है, प्रासुक भोजन करता है, ज्ञान-भावना में मन लगाता है और तीन गुप्तियों का धारी है, वही सम्पूर्ण अहिंसा व्रत का पालक है।[209]

प्रवचन सार में श्रमण को युक्ताहारी कहा है।[210] वह युक्ताहार एक बार ऊनोदर, यथालब्ध (जैसा प्राप्त हो वैसा), भिक्षाचरण से, दिन में, रस की

---

[205] एत्थ निदरिसण जो साहु जाणइसोतप्पडिपक्खम साधुम विजाणइ, एवं जस्स जीवजीवपरिण्णा अत्थि सो जीवाजीव सयम वियाणइ। तत्थ जीवा न हतव्वा एसो जीव सजमो.... ।। जिन०चू०पृ० 161-162

[206] अमज्जमम्मासि अमच्छरीया अभिक्खणं निव्विगइ गओ य। गामे कुले वा नगरे व देसे ममत्तभाव न कहि चि कुज्जा।। दशवै०द्वि०चूलिका 7

[207] अभिक्खमिति पुणो पुणो निव्विइय करणीय। ण जधा मज्जमम्माण अच्चत पडि सेधो तथा विगतीण।। अगस्त्य चूर्णि।

[208] भगवती आराधना 793

[209] वही 813

[210] प्रवचनसार 226

अपेक्षा से रहित और मधु मांस रहित होता है।[211] इसकी टीका में आचार्य अमृतचन्द्र जी ने कहा है कि मधु-मांस रहित आहार ही युक्ताहार है; क्योंकि उसी के हिंसायतनपने का अभाव है। मधु-मांस सहित आहार तो हिंसायतन होने से युक्त नहीं है और ऐसे आहार के सेवन में अन्तरङ्ग अशुद्धि व्यक्त होने से वह आहार युक्त (योगी) का नहीं है। यहाँ मधु-मांस हिंसायतन का उपलक्षण है इसलिए "मधु-मांस रहित आहार युक्ताहार है", इस कथन से ऐसा समझना चाहिए कि समस्त हिंसायतन शून्य आहार ही युक्ताहार है।[212]

उपर्युक्त गाथा (229) की टीका में आचार्य जयसेन ने दो गाथायें उद्धृत की हैं, जिनका तात्पर्य यह है कि पके हुए, कच्चे तथा पकते हुए मांस के खंडों में उस मांस की जाति वाले निगोद अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का निरन्तर जन्म होता है। वह अनेक करोड़ जीवों के समूह को निश्चय से घात करता है।[213]

मूलाचार में कहा गया है कि नवनीत, मद्य, मांस और मधु ये चार महाविकृतियाँ हैं, क्योंकि ये काम, मद व हिंसा को उत्पन्न करते हैं।[214]

भगवती आराधना विजयोदया टीका में अपराजित सूरि ने कहा है कि मांस, मधु, मक्खन, बिना कटा फल, मूल, पत्र, अंकुरित तथा कन्द ग्रहण न करे। इनसे जो भोजन छू गया हो, उसे भी ग्रहण न करे।[215] पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय में भी कहा गया है कि मधु, मद्य, नवनीत और मांस तथा महाविकार को धारण किए पदार्थ व्रती पुरुष को भक्षण करने योग्य नहीं हैं, क्योंकि उन वस्तुओं में उसी वर्ण व जाति के जीव होते हैं।[216]

---

[211] एक्कं खलु तं भत्तं अप्पडिपुण्णोदरं जहालद्धं। चरणं भिक्खेण दिवा ण रसावेक्खं ण मधुमंसं।। प्रवचनसार - 229

[212] प्रवचनसार 229 (तत्त्वप्रदीपिका टीका)

[213] प्रवचनसार 229-1,2 (जयसेनाचार्यकृत टीका)

[214] मू०आ० 353

[215] मास, मधु, नवनीत, फल अदारित, मूल, पत्र, साङ्कुर, कन्द च वर्जयेत्। तत्सस्पृष्टानि सिद्धान्यपि विपन्नरूपरसगन्धानि . न दद्यान्न खादेत्, न स्पृशेच्च।। भगवती आराधना-विजयोदया टीका (1200)

[216] मधु मद्य नवनीत पिशित च महाविकृतयस्ता ।वल्भयन्ते न व्रतिना तद्वर्णा जन्तवस्तत्र।।पुरूषार्थसिद्ध्युपाय 7।

उपर्युक्त प्रमाण के अतिरिक्त अन्य बहुत से मांसाहार त्याग के आगमिक आधार हैं। वस्तुतः मांसाहार त्याग का आधार अहिंसा व्रत का सम्यक् परिपालन है। अहिंसाव्रत तथा उसको पुष्ट करने वाले नियमोपनियमों से जैन आगम भरा हुआ है। यहाँ उसका पूरा उल्लेख शक्य नहीं है। प्रकरणानुसार केवल मांसाहार त्याग के आगमिक आधार के कुछ उदाहरणों द्वारा ही यहाँ विषय पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है।

मांसाहार के विषय में यह भी जानना आवश्यक है कि मांस में 14 गुना ज्यादा पेस्टिसाइड टेसिडीयू मौजूद होते हैं।

लगभग 9000 अमेरिकी हर सालमांसाहार से होने वाली बीमारियों के कारण मर जाते हैं। लगभग आठ लाख लोग मांसाहार जनित बीमारियों के शिकार होते हैं।

फूड पायजनिंग की 35 फीसदी घटनायें मांसाहार के चलते होती है। बच्चों में किडनी की खराबी का सबसे बड़ा कारण इकोलाई संक्रमण है, जो मांसाहार के सेवन के चलते होता है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार लाल मांस का सेवन करने वाली महिलाओं में कोलोन कैंसर होने की सम्भावना हफ्ते में एक बार मांस का सेवन करने वाली महिलाओं की तुलना में चार गुना ज्यादा होती है।

शाकाहारियों में लो ब्लड कोलेस्टोरल होता है। मांसाहारियों में हाई ब्लड कोलेस्टोरल होता है, जो कि हृदय रोगों का एक प्रमुख कारण है।

शाकाहार एक प्राकृतिक आहार है। इसके उत्पादन मे न तो कोई क्रूरता है, न बर्बरता, न शोषण है और न हिंसा। यह किसी जीवधारी के प्राण लेकर पैदा किया गया आहार नही है। इससे न तो वातावरण दूषित होता है और न ही कोई रोग फैलता है। शाकाहार जीवन की गुणवत्ता को समृद्ध करने वाला आहार है।

रात्रि भोजन त्याग व्रत

हरिवश पुराण मे रात्रि भोजन त्याग व्रत की नियम के अन्तर्गत गणना की गयी है। प्रत्येक सद्गृहस्थ के लिए आवश्यक है कि वह रात्रि भोजन न

करे। रात्रि भोजन त्याग श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं में से छठी प्रतिमा है। आचार्य समन्तभद्र ने इसका स्वरूप निरूपण करते हुए कहा है :-

अन्नं पानं खाद्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।

स रात्रिभुक्तिविरतः सत्वेष्वनुकम्पमानमनाः।।

जो पुरुष प्राणियों पर दयार्द्र चित्त होकर रात्रि में अन्न, पान, खाद्य और लेह्य- इन चारों ही प्रकार के आहार को नहीं खाता है, वह रात्रि भुक्तिविरत श्रावक है।

स्वामी कार्त्तिकेय का कथन है कि जो ज्ञानी पुरुष खाद्य, लेह्य चूष्य और पेय- इन चारों ही प्रकार के भोजन को न स्वयं खाता है और न दूसरों को खिलाता है, वह रात्रिभोजनविरत प्रतिमाधारी श्रावक है। जो पुरुष रात्रिभोजन त्याग करता है, वह एक वर्ष में छह मास उपवास करता है, क्योंकि वह रात्रि में आरम्भ का त्याग करता है।[217]

वसुनन्दि श्रावकाचार में कहा है कि रात्रि में भोजन करने वाले मनुष्य के ग्यारह प्रतिमाओं में से पहली भी प्रतिमा नहीं ठहरती है, इसलिए नियम से रात्रिभोजन का परिहार करना चाहिए।[218] आचार्य वसुनन्दि ने छठी रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा का भिन्न स्वरूप निरूपण किया है। तदनुसार जो मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना - इन नौ प्रकारों से दिन में मैथुन का त्याग करता है, वह प्रतिमाधारी श्रावक है।[219]

रात्रि में भोजन क्यों नहीं :- जिस रात्रि में राक्षस, भूत और पिशाचों का संचार होता है, जिसमें सूक्ष्म जन्तुओं का समूह दिखायी नहीं देता है, जिसमें स्पष्ट न दिखने से त्यागी हुई भी वस्तु खा ली जाती है, जिसमें घोर अन्धकार फैलता है, जिसमें साधु वर्ग का सगम नहीं है, जिसमें देव और गुरु की पूजा नहीं की जाती है, जिसमें खाया गया भोजन संयम का विनाशक है, जिसमें जीते जीवों के भी खाने की सम्भावना रहती है, जिसमे सभी शुभ कार्यों का अभाव होता है, जिसम संयमी पुरुष गमनागमन क्रिया भी नहीं करते हैं, ऐसे

---

[217] स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा 382-383

[218] वसुनन्दि श्रावकाचार 314

[219] वही पद्य स० 296

महादोषो के आलयभूत दिन के अभावस्वरूप रात्रि के समय धर्म कार्यों में कुशल पुरुष भोजन नहीं करते हैं। खाने की गृद्धता के दोषवश वर्ती जो दुष्ट चित्त पुरुष रात्रि में खाते हैं, वे लोग भूत, राक्षस, पिशाच और शाकिनी-डाकिनियों की संगति को कैसे छोड़ सकते हैं? अर्थात् रात्रि में राक्षस पिशाचादिक ही खाते हैं, अत: रात्रिभोजियों को उन्हीं की संगति का जानना चाहिए।[220]

भोजन के मध्य गिरा हुआ चर्म, अस्थि, कीट, पतंग, सर्प और केश आदि रात्रि के समय कुछ भी दिखाई नहीं देता है, इसीलिए रात्रिभोजी पुरुष सबको खा जाता है। यदि दीपक जलाया जाता है तो भी पतंगे आदि अगणित चतुरिन्द्रिय जीव दृष्टि राग से मोहित होकर भोजन के मध्य गिरते हैं।[221]

अहिंसा व्रत की रक्षा और मूल गुणों की विशुद्धि के लिए श्रावक साहसी बनकर मन, वचन, काय से रात्रि में चारों प्रकार के आहार का परित्याग करे। रात्रि में जूँ आदि नहीं दिखाई देने से उनका भक्षण कर जलोदर आदि रोग होने की सम्भावना रहती है। जब राम लक्ष्मण और सीतावन को गए तो कुछ ही समय पूर्व सूर्यनगर के अधिपति राजा महीधर की कन्या के साथ लक्ष्मण का विवाह हुआ था। जब वनमाला को लक्ष्मण का वनवास ज्ञात हुआ तो वियोग से विह्वल हो वह आत्मघात के लिए उद्यत हुई। इसी समय अकस्मात् उसकी लक्ष्मण से भेंट हो गयी। तब उसने उनके साथ चलने का आग्रह किया। लक्ष्मण वनमाला को समझाने लगे कि मैं राम को इष्ट स्थान में पहुँचाकर वापिस आता हूँ। जब वह सन्तुष्ट नहीं हुई तब लक्ष्मण ने उसे विश्वास दिलाने के लिए अनेक शपथें खायीं। किन्तु वन-माला ने लक्ष्मण से यह शपथ करायी कि राम को इष्ट स्थान में पहुँचाकर यदि मैं वापिस नहीं आऊँ तो रात्रिभोजन के पीप से लिप्त होऊँ? इस प्रकार रात्रि-भोजन में महादोष है। जिस रात्रि में सत्पात्रदान, स्नान और देवपूजा आदि कोई भी शुभकर्म नही किया जाता है, उस पापपूर्ण रात्रि के समय कौन आत्म हितैषी भोजन करेगा? अर्थात् कोई नहीं।[222]

---

[220] अमितगति श्रावकाचार 5/40-43

[221] वसुनन्दि श्रावकाचार 315-316

[222] सागार धर्मामृत 4/27-24

भोजन पकते समय उस अन्न की वायु चारों ओर फैलती है, इसलिए उस वायु के कारण उन पात्रों में अनन्त जीव आ-आकर पड़ते हैं। रात्रि भोजन विष मिले हुए अन्न के समान त्याज्य है। रात्रि में सुपारी, जवित्री आदि भी नहीं खाना चाहिए; क्योंकि कीड़ों की सम्भावना रहती है।[223]

रात्रिभोजन के दुष्परिणाम :- रात्रिभोजन करने वाले मनुष्य को रोग, शोक, कलह करने वाली तथा भय देने वाली राक्षसी के समान स्त्री मिलती है, दुष्कर्म के उदय से उत्पन्न हुई निरन्तर आपदायें देने वाली, रोगिणी, दुर्भाग्य वाली कन्यायें पैदा होती हैं। दुर्व्यसन और कुकर्म करने में चतुर साँपों के समान सदा भय देने वाले पुत्र उत्पन्न होते हैं, अपात्रदान के फल स्वरूप निरन्तर दु:खों की वृद्धि करने वाली दरिद्रता निरन्तर प्राप्त होती है, नीच पुरुष के धन के समान अनेक छिद्रों से व्याप्त, संकटों से भरा अन्धकारमय घर प्राप्त होता है तथा शील, शौच, शम और धर्म का निर्गमन होता है। पर का अपकार करने वाले दुर्जनों के समान नाना प्रकार के दु:खों को देने वाली व्याधियाँ घेरे रहती हैं।[224]

जो अज्ञानी सदा रात्रि में भोजन करते हैं, उनके इस लोक में कोढ़ व वायु आदि के अनेक प्रकार के महारोग उत्पन्न होते हैं,[225] लक्ष्मी भाग जाती है, अगले जन्म में नरक गति प्राप्त होती है, परलोक में गीदड़, कुत्ते, बिल्ली, बैल आदि नीच गतियों में जाकर उत्पन्न होते हैं। रात्रिभोजन के पाप से यह मनुष्य भव में अन्धा, बौना, कुब्जा, दरिद्री, कुरूप, बदसूरत, लंगड़ा, कुशीली, बुरे व्यसनों का सेवन करने वाला, दु:खी, डरपोक, अपनी ही अपकीर्ति फैलाने वाला, थोड़ी आयु वाला, पापी, कुजन्मा, अङ्‌गभङ्‌ग शरीर वाला, दुर्गतिगामी, कुमार्गगामी और अतिनिंद्य होता है। अधिक कहने से क्या संसार में जो कुछ दु:ख हैं, वे सब मनुष्यों को रात्रिभोजन के पाप से ही उत्पन्न होते हैं। संसार में एक बार प्राणो का नाश करने वाला हाला हल विष खा लेना अच्छा है, परन्तु अनेक भवों तक दु:ख देने वाला रात्रिभोजन अच्छा नहीं है।[226] यदि रात्रि मे भोजन करते समय मक्खी खाने में आ जाय तो वह जलोदर रोग को कर

---

[223] प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 22/80, 84

[224] अमितगति श्रावकाचार 5/57-60

[225] प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 22/94-104

[226] प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 22/110

देती है। पूर्वकाल में रात्रिभोजन करते हुए किसी ब्राह्मण ने मुख में गिरा हुआ मेढक भी खा लिया तो फिर सूक्ष्म जन्तुओं की क्या बात है?[227] जो लोग धर्मबुद्धि से रात्रि में भोजन करते हैं, वे कमलवन को उसकी वृद्धि के लिए अग्नि में आरोपण करते हैं।[228] जो लोग सुकृत की आकांक्षा से सारे दिन भूख को सहकर रात्रि में खाते हैं, वे कल्पवृक्ष का संवर्द्धन कर उसे भस्म करते हैं।[229]

जो स्त्री रात्रि में भोजन करती है, वह मरकर रात्रि भोजन के पाप से सूकरी, भीलनी, बकरी, धीवरी, रोहिणी (गाय), कूकरी, सदा शोक और क्लेश भोगने वाली, अभागिनी, निःसन्तान, निर्धन और पतिरहित विधवा स्त्री होती है।[230]

रात्रिभोजन त्याग के गुण :- जो मनुष्य सदा रात्रिभोजन से विमुख रहता है, उसके कमल पत्र के समान नयन वाली, प्रियभाषिणी, लक्ष्मी के समान मनोहारिणी प्रियतमा प्राप्त होती है, सुन्दर आकार वाली, कलाओं की जानने वाली, पुण्य की पंक्ति के समान शरीर को धारण करने वाली उत्तम कन्यायें होती हैं। व्यसनों से रहित, निर्मल दुराचरण एवं व्यापार करने वाले, चन्द्र के समान पावन शान्ति देने वाले पुत्र पैदा होते हैं। अन्धकार से रहित, प्रचुर रत्न राशि से भरपूर, इन्द्र के भवन के समान सुन्दर मन्दिर प्राप्त होता है। मन चिन्तित पदार्थों को देने वाला महान् पुण्य के पुञ्ज के समान उज्जवल स्थिर रहने वाला वैभव प्राप्त होता है। सर्व रोगों के समूह से रहित नीरोग देह मिलती है। सभी सुखों के समुदाय से युक्त निवास प्राप्त होता है। सर्व मनोवाछित सम्पदाओं के देने में प्रवीण सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की विभूति प्राप्त होती है तथा रात्रिभोजन त्यागी पुरुष के सर्व लोकों के स्वामियों से पूजनीयता प्राप्त होती है।[231]

जो स्त्री दिन में भोजन करती है, वह उसके पुण्य से परभव मे बान्धवों से अर्चित पुत्रों से वन्दित, भूषणों से आभूषित, व्याधियो से वर्जित, श्रीमती,

---

[227] धर्मोपदेशपीयूष वर्ष श्रावकाचार 60-61

[228] वही उक्त च कहकर उद्धृत

[229] वही 66

[230] अमितगति श्रावकाचार 5/6

[231] अमितगति श्रावकाचार 2/61-64

लज्जावती, बुद्धिमती धर्म करने वाली और सदा सुख भोगने वाली स्त्री होती है। रात्रिभोजन का त्याग करने वाले जीवों के जिन महान् गुणों की प्राप्ति परभव में होती है, उन्हें कहने के लिए तीन जगत् में एक जिननाथ को छोड़कर और कोई समर्थ नहीं है।[232]

गुणवान् उत्तम पुरुष दिन में दो बार भोजन करते हैं, किन्तु जो रात-दिन निरन्तर भोजन करता है, वह अधम पुरुष कहा गया है। इन्द्रियों रूपी घोड़ों को जतीने वाले जो पुरुषदिन की आदि और अन्तिम दो घड़ी समय को छोड़कर भोजन करते हैं, वे ही पुरुष संसार के भार से रहित होते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो पुरुष देव और गुरु का पूजन करके दिन के निर्मल प्रकाश में निराकुल होकर भोजन करते हैं, वे शीघ्र ही मोहरूप महा अन्धकार का नाश कर सहसा महान् उदय वाले होते हैं, अर्थात आर्हन्त्य लक्ष्मी प्राप्त करते हैं। जो पुरुष मन, वचन, काय से रात्रि में भोजन का परित्याग करके सदा दिन में ही भोजन करता है, पाप से रहित उस पुरुष का रात्रि में भोजन करने से आधा जन्म उपवास के साथ व्यतीत होती है। जो मूढ़ पुरुष रात्रि में भोजन की निवृत्ति नहीं करके दिन में ही भोजन करते हैं, उनके उसका कुछ भी फल नहीं होता है। उनका भावी जन्म दिवाभोजी कुल में होना सम्भव है।[233] जो ज्ञानी लोग सदा ही दिन की आदि और अन्त की दो दो घड़ी काल को मन, वचन, काय से छोड़कर भोजन का नियम धारण करते हैं, वे प्रत्येक मास में निश्चय से दो उपवास करते हैं।[234] जो विद्वान् रात्रि में चारों प्रकार का आहार त्याग कर देते हैं, उन्हें प्रत्येक माह में पन्द्रह दिन उपवास करने का फल प्राप्त होता है। यही समझकर मनुष्यों को धर्म की सिद्धि के लिए, तप के लिए व मोक्ष प्राप्त करने के लिए रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग सदा के लिए करना चाहिए। जो मनुष्य व्रत पालन करने के लिए रात्रि में अन्नपान आदि सब प्रकार के आहार का त्याग कर देता है, उसके आत्मा को शुद्ध करने वाला अपार पुण्य होता है। रात्रि में आहार का त्याग कर देने से इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं और इन्द्रियों के वशीभूत होने से जीवों के वात, पित्त आदि से उत्पन्न हुए सब रोग नष्ट हो जाते हैं। जो गृहस्थ रात्रि में स्वयं

---

[232] वही 5/65-67

[233] वही 5/46-50

[234] अमितगति श्रावकाचार 5/56

पानी तक का त्याग कर देते हैं, उनके लिए तीनों लोकों में रहने वाली लक्ष्मी अपने आप आ जाती है। रात्रिभोजन का त्याग करने से प्राणियों के सब रोग नष्ट हो जाते हैं, उनके शरीर में लावण्य आ जाता है, अनेक गुण आ जाते हैं और वे सब तरह से सुन्दर हो जाते हैं। रात्रि भोजन का त्याग करने से जीवों को अनेक भोगोपभोगों से भरे हुए अपरिमित सुख से भरे हुए राज्य की प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। रात्रि में आहार, पानी का त्याग कर देने से जीवों को स्वर्ग में देवों की विभूतियों से सुशोभित निर्मल सुख की प्राप्ति होती है।[235] जिन्होंने पूर्वजन्म में रात्रि भोजन का त्याग किया है, वे मनुष्य उत्तम स्वर एवं निर्मल अंग के धारक और दिव्य वस्त्राभूषण वाले होते हैं।[236] मदोन्मत्त हाथियों पर आरूढ़ श्वेत चामरों से वीज्यमान जो मनुष्य स्वजनों के साथ आज जाते हुए दिखायी देते हैं, वे रात्रि भोजन त्याग से ऐसी सम्पदा को प्राप्त हुए हैं।[237]

रात्रि भोजन त्याग मूल गुण :- रात्रि भोजन त्याग मूल गुण है। यदि कोई शंका करे कि मूल गुणों के वर्णन में रात्रि भोजन के त्याग का उपदेश नहीं देना चाहिए; क्योंकि रात्रि भोजन का त्याग करने वाली छठी प्रतिमा के वर्णन में इसके त्याग का वर्णन करना चाहिए। इसके उत्तर में कहा गया है कि छठी प्रतिमा में तो रात्रि भोजन का त्याग पूर्ण रूप से है और मूल गुणों के वर्णन में स्थूल रूप का त्याग है। मूल गुणों में स्थूल रूप से भी रात्रि भोजन त्याग अपने अनुभव और आगम सिद्ध है। मूल गुणों में जो रात्रि भोजन का त्याग है, वह अतिचार सहित है। छठी प्रतिमा में रात्रि भोजन का त्याग है, वह अतिचार रहित है, उसमें रात्रि भोजन के सब अतिचारों का त्याग है। मूलगुण रूप व्रत में केवल अन्नादिक स्थूल भोजनों में पानी, पान, सुपारी, इलायची, औषधि आदि समस्त पदार्थों का सर्वथा त्याग बतलाया है। अतः छठी प्रतिमा धारण करने वाले को औषधि या जल आदि पदार्थ प्राणों का नाश होने का समय आने की स्थिति में भी रात्रि में कभी नहीं खाना चाहिए। रात्रि भोजन का त्याग करना पाक्षिक श्रावक का कुलाचार है। इसके बिना कोई मनुष्य दर्शन प्रतिमाधारी पाक्षिक नहीं हो सकता। जो मांस का त्यागी है और रात्रि भोजन

---

[235] प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 22/86-93

[236] पूज्यपाद श्रावकाचार 88

[237] वही 90

नहीं करता है, वह सबसे जघन्यव्रती श्रावक है तथा जो उससे नीच है अर्थात् जो मांस और रात्रि भोजन का त्याग नहीं करता है, उसके कोई भी क्रिया नहीं समझना चाहिए।[238] छठी प्रतिमा को धारण करने वाला श्रावक रात्रि में गन्ध, पुष्पमाला आदि का सेवन नहीं कर सकता, न कोई लेप लगा सकता है तथा अपने किसी रोग को शान्त करने के लिए रात्रि में तेल लगाना या उबटन लगाना आदि भी नहीं कर सकता।[239]

वैदिक परम्परा में रात्रि भोजन निषेध :- महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है :-

श्वभ्रद्वाराणि चत्वारि प्रथमं रात्रिभोजनम्।

परस्त्रीगमनं चैव सन्धानानन्तकायकम्।।

ये रात्रौ सर्वदाऽऽहार वर्जयन्ति सुमेधयः।

तेषा पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते।।

नरक में जाने के चार द्वार हैं, जिनमे सबसे पहला रात्रि के समय भोजन करना है। दूसरा रास्ता परस्त्रीगमन है, तीसरा अचार मुरब्बे आदि का खाना और चौथा अनन्त काय अर्थात् जमीकन्द (आलू, मूली, गाजर, प्याज, अर्बी आदि) खाना है। जो श्रेष्ठ बुद्धि सदैव रात्रि के समय आहार नहीं करते, उनके एक माह में पन्द्रह दिन के उपवास का फल हो जाता है।

मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है :-

अस्तंगते दिवानाथे आपोरुधिरमुच्यते। अन्न मांस समं प्रोक्त मार्कण्डेय

महर्षिणा।। - मार्कण्डेय पुराण 33/53

दिवानाथ (सूर्य) के अस्त हो जाने पर पानी रुधिर पीने के समान और अन्न मांस खाने समान है। अतः सूर्यास्त के बाद अन्न, जल ग्रहण करना मनुष्य के लिए वर्जित है।

मृते स्वजनमात्रेऽपिं सूतकं जायते किल।

[238] लाटी संहिता 1/39-46

[239] वही 6/20

अस्तं गते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम्।। 23/39

पातव्यं नोदकमति रात्रावत्र युधिष्ठिरं।

तपस्विनां विशेषेण गृहिणां च विवेकिनाम्।। म०पु० 30/33

जब अपना कोई स्वजन मर जाता है तो सूतक लग जाता है और उस समय भोजन नहीं किया जाता है, जब सूर्य अस्त हो जाय तो जब तक वह अस्त रहे, तब तक भोजन न किया जाय।

मार्कण्डेय ऋषि ने युधिष्ठिर से कहा है कि युधिष्ठिर! रात्रि के समय तो जल भी तपस्वियों और साधुओं को तो क्या, गृहस्थों को भी नहीं पीना चाहिए।

स्कन्द पुराण में कहा है :-

एकभक्ताशनान्नित्यमग्निहोत्र फलं भवेत्।

अनस्तभोजिनो नित्यं तीर्थयात्रा फलं भवेत्।। (स्कन्ध पुराण, अध्याय 7)

जो दिन में एक बार ही भोजन करता है, उसे अग्निहोत्र के फल के समान फल हो जाता है और सदैव सूर्यास्त के बाद भोजन न करने वाला तीर्थ यात्राओ से होने वाले फल को घर में ही लेता है।

महाभारत में ज्ञानपर्व में कहा है :-

उलूक काकमार्जार गृध्रशं वर शूकराः।

अहि वृश्चिकगोधाश्च जायन्ते रात्रिभोजनात्।। 70/203

रात के समय याने सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय के पहले भोजन करने वाले मनुष्य को मरकर उस पाप के फल से उल्लू, कौवा, बिलाव, गीध, शंबर, सूअर, साँप, बिच्छू, गोध आदि निकृष्ट पशु पक्षी योनियों में जन्म लेना पड़ता है।

योगवाशिष्ठ पूर्वार्द्ध पद्य सं० 108 में बतलाया है :-

नक्तं न भोजयद्यस्तु चातुर्मास्ये विशेषतः।

सर्वकामानवाप्नोति हीहलोके परत्र च।।

जो रात्रि के समय भोजन नहीं करता, विशेषकर चातुर्मास में नहीं करता, उसकी सब इच्छायें इस लोक और परलोक में भी पूर्ण हो जाती हैं।

अरण्य पुराण में भी कहा है :-

मृते स्वजनमात्रेऽपि सूतकं जायते किल।

अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम्।।

रक्ता भवन्ति तोयांनि अन्नानि पिशितानि च।

रात्रिभोजन सक्तस्य ग्रासेन मांसभक्षणम्।।

नैवाहुतिर्नच स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम्।

दानं न विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः।।

उदम्बरं भवेन्मासं मांसं तोयमवस्त्रकम्।

चर्मवारिभवेन्मासं मांसं चनिशिभोजनम्।।

उलूक काक मार्जारगृध्रशंबर शूकराः।

अहि वृश्चिक गोधाद्या जायन्ते निशिभोजनात्।। (अरण्य पुराण)

अपने किसी मनुष्य के मरने पर भी सतूक हो जाता है। सूतक के समय भोजन करना वर्जित है। ऐसी स्थिति में सूर्य के अस्त हो जाने पर भोजन कैसे किया जावे? रात्रि के समय पानी रुधिर हो जाता है, अन्न मांस हो जाता है। रात्रि भोजन करने वाला प्रत्येक ग्रास में मांसभक्षण ही करता है। रात्रि के समय न जप होम आदि में आहुति दी जाती है, न श्राद्ध किया जाता है, न देव पूजा ही की जाती है। रात्रि के समय दान भी उचित नहीं है। विशेष रूप से भोजन करना तो बिल्कुल ही वर्जित है। गूलर, बड़फल, पीपल आदि उदम्बर फल मास ही है। चमड़े भरा हुआ पानी भी मांस ही है और रात्रि में भोजन करना भी मांसभक्षण करना ही है। रात्रि के समय भोजन करने से कौवा, बिलाव, गीध, शबर, शूकर, साँप, बिच्छू व गोध योनियो मे जन्म लेना पड़ता है।

सुश्रुत संहिता में कहा गया है :-

प्रातः साय मनुष्याणामशनं श्रुतिचोदनम्।

नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्र समाविधि।।

सुबह और सायं मनुष्यों का भोजन करना वेदानुसार है। इसके बीच में भोजन करना चाहिए। सुबह, शाम ही भोजन करना अग्निहोत्र के समान विधि का फलदायक है।

मांस का परित्याग करने वाले खदिरसार भील की कथा :- विन्ध्याटवी में खदिरसार नामक एक भील रहता था एक दिन उसने श्री समाधिगुप्त मुनिराज को देखा और उन्हें प्रणाम किया। उस समय मुनिराज ने उस भील से कहा कि "तुझे धर्म लाभ हो"। "तुझे धर्म लाभ हो", इन वचनों को जब भील ने सुना तो मुनिराज से पूछा - महाराज आपने जो धर्मलाभ कहा, वह धर्म क्या है? और उसका लाभ क्या है? तब मुनिराज ने कहा - मांस, मदिरा, मधु आदि अपवित्र पदार्थों के त्यागने को धर्म कहते हैं और इनके त्याग रूप धर्म की प्राप्ति होने को लाभकहते हैं। इस धर्म को जो पुरुष धारण करते हैं, उन्हें स्वर्गादि के उत्तम सुख संकल्प मात्र से मिलते हैं। मांस के छुड़ाने रूप मुनिराज के वचनों को सुनकर भील विचार में पड़ गया कि मांस के छोड़ने को तो मैं समर्थ नहीं हूँ, अब क्या करना चाहिए। मुनिराज ने उसके अभिप्रायों को समझकर भील से कहा - हे वत्स! तूने पहले काक का मांस खाया है या नहीं? इन वचनों का सुन कर भील ने कहा - महाराज! मैंने अभी तक काक का मांस नहीं खाया। यह सुनकर मुनिराज ने कहा- यद्यपि तूने अभी तक काक का मांस नही खाया है, परन्तु इससे तेरे व्रत नहीं हो सकता; क्योंकि किसी वस्तु का जो त्याग होता है, वह नियमपूर्वक होता है। जब नियम होता है, तभी धर्म होता है; क्योकि नियम के बिना धर्म हो ही नहीं सकता। किसी को धन देने पर भी जब तक उससे ब्याज आदि का निर्द्धार नहीं किया जाता, तब तक दिए हुए धन की वृद्धि नहीं होती। यही कारण है कि धनवान् लोग द्रव्य के उधार दे समय ब्याज बगैरह का निश्चय कर लेते है। उसी तरह नियम के बिना वस्तु का छोड़ना लाभकारी नही हो सकता, इसलिए किसी वस्तु का त्याग नियमपूर्वक करना चाहिए।

इस तरह मुनिराज के वचनों को सुनकर उस भील ने व्रत को ग्रहण किया और मुनिराज को नमस्कार करके अपने घर गया। कुछ समय बाद उस भील के अत्यन्त दु:सह रोग उत्पन्न हुआ। भील के रोग को बढ़ता हुआ

देखकर उसके घरवालों ने रोग की शांति के लिए वैद्य को बुलाया। वैद्य ने रोग की परीक्षा करके कहा कि यह रोग जब तक इसे काक का मांस न खिलाया जायगा, तब तक कभी शांत नहीं होगा। जब भील ने सुना कि काक के मांस के बिना रोग नहीं जायगा तब बोला कि मेरे प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु मैं काक का मांस कभी नही खाऊँगा; क्योंकि प्राणों का नाश तो केवल यहीं दु:ख के लिए होगा और व्रत भंग तो जन्म-जन्म में दु:खों का देने वाला है। मुनिराज के पास जो मैंने व्रत लिया है, उसे प्राणों के चले जाने पर भी नहीं छोड़ूँगा। ग्रहण किए गए व्रत को छोड़ देने में क्या पुरुषत्व कहा जा सकता है? घर वालों ने समझा कि यह किसी तरह काक का मांस नही खायगा, इसलिए उन्होंने विचार किया कि उसके मित्र को बुलाना चाहिए।

उस समय घर वालों ने श्रीसौरपुर के रहने वाले उसकी बहिन के पति सूरवीर के बुलाने के लिए पत्र भेजा और उसमें लिखा कि तुम जल्दी आओ। सूरवीर भी पत्र के देखने मात्र से अपने घर से चला। मार्ग में आते समय उसने किसी वट वृक्ष के नीचे यक्षी को रोती हुई देखा। उसने उस रोती हुई यक्षी से पूछा कि हे सुन्दरि! तू कौन है और यहाँ क्यों रोती है सूरवीर के वचनों को सुनकर यक्षी बोली कि मैं तो यक्षी हूँ और वह तुम्हारा साला खदिरसार व्रत के प्रभाव से मेरा स्वामी होगा। तुम वहाँ जाकर उसे काक का मांस खिला दोगे तो उसके व्रत भंग के पाप से वह नरक चला जायगा फिर मेरा पति नहीं होने पावेगा। इसलिए रोती हूँ।

इस प्रकार उस यक्षी के वचन सुनकर सूरवीर ने कहा- हे यक्षी! तुम हमारे वचनो पर विश्वास करो, मैं कभी उसे काक का मांस नहीं खिलाऊँगा। इस तरह उस यक्षी को विश्वास दिलाकर वह सूरवीर क्रम से उस भील के ग्राम में जाकर उसके घर पहुँचा। हे प्रिय श्याल! अनेक तरह के रोगों को दूर करने वाले काक के मांस को क्यों नहीं खाते हो? तुम्हें अवश्य खाना चाहिए। इसके बाद सूरवीर ने फिर उसकी परीक्षा करने के लिए काक के मास को खाने के लिए आग्रह किया। इस तरह सूरवीर के वचनों को सुनकर वह भील बोला- तुम मेरे प्राणों के समान अत्यन्त प्रिय मित्र हो, तुम्हे ऐसे निन्द्य वचन कहना योग्य है?

जब शूरवीर ने समझा कि यह अपने धारण किए हुए व्रत से कभी च्युत नहीं होगा तो मार्ग में यक्षी सम्बन्धी वृतान्त को कह सुनाया। उस वृत्तन्त को सुनकर भील को और दृढ़ श्रद्धान हो गया। उसी से उसने शेष सब श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिए। मरण के अन्त में वह भील सौधर्म स्वर्ग में उत्तम देव हुआ। वह सूरवीर भी अपने साले की पारलौकिक क्रिया के बाद उसी मार्ग से वापिस आया। उसने उस यक्षी से पूछा कि वह भील तुम्हारा भर्त्ता हुआ है या नहीं? सूरवीर के वचन को सुनकर यक्षी ने कहा - वह व्रत के माहात्म्य से सौधर्म स्वर्ग का देव हुआ है। मेरा स्वामी नहीं हुआ। यक्षी के वचन सुनकर सूरवीर ने अपनी बुद्धि को सद्धर्म में दृढ़ करके उन्हीं समाधिगुप्त मुनि के पास गृहस्थ धर्म को अंगीकार किया। इसके बाद दो सागर पर्यन्त स्वर्गजनित उत्तम सुखों को भोगकर वह देव कुणिक नामक राजा और श्रीमती महारानी के श्रेणिक नामक पुत्र हुआ।[240]

मांस का सेवन करने में हिंसा अनिवार्य है :- बिना प्राणियों के वध हुए मांस की उत्पत्ति नहीं हो सकती, इसलिए मांस का सेवन करने वाले पुरुष को हिंसा अनिवार्य है।[241]

मांस में अनन्त जीव :- मांस यद्यपि अपने आप मरे हुए भैंस, बैल आदि पशुओं का भी होता है, वहाँ भी उस मांस के आश्रित निगोद जीव राशि के घात होने से निश्चय से हिंसा होती है।[242]

पक्व मांस में भी जीव राशि है :- कच्ची, पकी हुई, पकती हुई भी मांस की डलियो में उसी जाति के निगोत जीव राशियों की निरन्तर उत्पत्ति होती रहती है।[243] जो कच्ची अथवा पकाई हुई मांस की डली को खाता है अथवा स्पर्श करता है, वह अनन्त जीव राशियों के निरन्तर संचित किए हुए पिण्ड को नष्ट कर देता है।[244]

---

[240] धर्मसग्रह श्रावकाचार 2/52-77

[241] पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 64

[242] वही 66

[243] पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 67

[244] वही 68

त्रस हिंसा तो छोड़ ही दीजिए :- धर्म अहिंसा रूप है, इस बात को भले प्रकार जानते हैं, फिर भी जो पुरुष स्थावर हिंसा के छोड़ने में असमर्थ हैं, वे भी त्रस हिंसा को तो छोड़ दें।[245]

सामान्य और विशेष त्याग :- सामान्य रूप त्याग कृत, कारित और अनुमोदना के भेद से, वचन, काय और मन के भेदों से नौ प्रकार का कहा जाता है। अपवाद रूप त्याग अनेक प्रकार कहा जाता है।[246]

निरर्थक स्थावर हिंसा भी त्याज्य है :- इन्द्रिय विषयो का न्याय पूर्वक सेवन करने वाले गृहस्थों को थोड़े से एकेन्द्रिय घात को छोड़कर बाकी स्थावर जीवों के मरने का त्याग भी करना योग्य है।[247]

अहिंसा पालकों को दृढ़ रहना चाहिए :- अमृतत्व का कारणभूत अहिंसा रूपी रसायन को पाकर मूर्खो के अयोग्य तथा प्रतिकूल व्यवहार को देखकर व्याकुल नहीं होना चाहिए।[248]

धर्म के लिए कभी भी हिंसा नहीं करना चाहिए :- भगवान् का बनाया हुआ धर्म सूक्ष्म है। जो मूर्ख व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि धर्म के लिए हिसा करने में दोष नहीं है, उन मूर्खो की बातों में मुग्ध होकर कभी भी प्राणी नहीं मारने चाहिए। इस प्रकार अविवेकपूर्ण कुबुद्धि को पाकर प्राणी हिंसा नहीं करना चाहिए।[249]

बहुत से प्राणियों को मारने की अपेक्षा एक बड़े प्राणी को मारने में भी हिंसा है :-

जो लोग ऐसा कहते हैं कि बहुत से प्राणियों के घात करने से तैयार होने वाले भोजन से एक प्राणी के घात से उत्पन्न भोजन श्रेष्ठ है उन्हें इस प्रकार विचार करके एंक विशाल त्रस प्राणी की हिसा कभी नहीं करंना चाहिए। इस एक जीव की हिंसा से बहुत से जीवों की रक्षा होती है, ऐसा

---

[245] वही 75

[246] वही 76

[247] वही 77

[248] वही 78

[249] वही 79-80

मान करके हिंसा करने वाले प्राणियों की भी हिंसा नहीं करना चाहिए।[250] ये बहुत जीवों की हिंसा करने वाले हिंसक जीव जीते हुए बहुत पाप को इकट्ठा करते हैं, इस प्रकार दया को करके हिंसा करने वाले शरीरधारी जीव नहीं मारना चाहिए।[251]

दु:खी भी नहीं मारना चाहिए :- बहुत दु:ख स सताए प्राणी शीघ्र ही दु:ख नाश को पा जायेंगे। इस प्रकार विचार रूपी तलवार को लेकर दु:खी जीव नही मारने चाहिए।[252] जैन सिद्धान्त कहता है कि दु:ख जीवों के अपने दृष्कर्म का फल है। जीवों ने जैसे खोटे कर्म किए हैं, उन्हीं के अनुसार उनके अशुभ कर्मों का बन्ध हुआ है, वे ही कर्म उदय मे आकर उन्हें दु:ख पहुँचाते हैं। जब तक वे कर्म उदय में आते रहेंगे तब तक जीव को दु:ख पहुँचाते रहेंगे, जीव चाहे वर्तमान पर्याय में हो या मरकर दूसरी पर्याय में चला जाय, कर्मों का फल उसे भोगना ही पड़ेगा।

सुखी भी नहीं मारना चाहिए :- सुख की प्राप्ति बड़ी कठिनता से होती है, इस लिए सुखी जीव मारे हुए सुखी होते हैं, इस प्रकार तर्क रूपी तलवार सुखी पुरुषों के घात के लिए नहीं पकड़ना चाहिए।[253] यह बात मिथ्या है कि मरकर सुखी जीव सुख में ही रहेगा। सम्भव है कि इस पर्याय में उसे सुख रहा है, मरकर यदि वह नरक या तिर्यञ्चगति में चला जाय तो महान् कष्ट को भोगेगा। सबसे बड़ा कष्ट तो मारने में ही है। जबकि वह बिना आयु पूर्ण हुए हठात् मारा जा रहा है तो यह ही उसके लिए वज्र के समान कष्ट है। इसलिए इस प्रकार की कुबुद्धि धारण कर मनुष्यों को दया के स्थान में जीवघात कर हिंसाजनित पाप के भागी नहीं बनना चाहिए।[254]

स्वगुरु का शिरच्छेद करना भी पाप है :- बहुत से अभ्यास से सुगति का कारणभूत समाधि के सार तत्त्व को प्राप्त करने वाले अपने गुरु का शिर सुधर्म की अभिलाषा करने वाले शिष्य के द्वारा नहीं काटा जाना चाहिए।[255] तात्पर्य

---

[250] पुरुषार्थ सिदध्युपाय 82-83

[251] वही 84

[252] वही 85

[253] वही 86

[254] पुरुषार्थ सिदध्युपाय - प० मक्खनलाल कृत टीका

[255] पुरुषार्थ सिदध्युपाय 87

यह कि कोई मिथ्यादृष्टि यह श्रद्धान कर बैठते हैं कि हमारे गुरु ने बहुत दिनों तक अभ्यास किया है और अब समाधि मेंलीन हो रहे हैं, इस समय यदि इनका प्राणान्त कर दिया जाय तो वे उच्चपद को प्राप्त हो जायेंगे। ऐसा मिथ्या श्रद्धान कर शिष्य को अपने गुरु का सिर काटना योग्य नहीं है। गुरु महाराज तो अपने अभ्यास आदि का फल आप ही आगे या पीछे पा लेंगे, शिष्य को पापकर्म के बन्ध के सिवा और क्या मिलेगा? कुछ नहीं। गुरु का जीवन जब तब वे जीवित रहेंगे, अधिक आत्मोन्नति कर सकता है।[256]

खारपटिकों का मत :- धन के प्यासे शिष्यों को विश्वास दिलाने के लिए शीघ्र ही घट के फूटने से उड़ने वाली चिड़िया के समान मोक्ष को दिखाने वाले खारपटिक-गेरुआ आदि वस्त्र पहनकर झूठा वेष धारण करने वाले पुरुषों के मत पर श्रद्धा नहीं रखना चाहिए।[257]

खारपटिक मत के मानने वाले कहा करते हैं कि जैसे कोई चिड़िया घड़े मे बन्द हो तो जितना जल्दी उस घड़े को फोड़ दिया जाय, उतनी ही जल्दी उस चिड़िया की मुक्ति हो जाती है, ठीक उसी प्रकार यदि किसी के शरीर का नाश कर दिया जावे तो बन्धन से रहित होकर जीव की मुक्ति हो जाती है। ऐसा मिथ्या श्रद्धान कर किसी भी जीव को अपने तथा अन्य के शरीर का कभी भी नाश नहीं करना चाहिए; क्योंकि किसी का वध करने से यद्यपि स्थूल शरीर छूटेगा, परन्तु अष्ट कर्मो रचा हुआ सूक्ष्म शरीर नहीं छूट सकता है वह तो आत्मध्यान की अग्नि से ही जल सकता है।[258]

भूखे को मांसदान करना पाप है :- भोजन के लिए सामने आते हुए किसी भूखे जीव को देखकर अपना मास देकर अपनी भी हिंसा नहीं करना चाहिए।[259]

कुछ लोगो का ऐसा कहना है कि जो मांसभक्षी जीव हैं, उनको भूखा देखकर अपना मांस तक दे देना चाहिए। इसके निषेध में आचार्य कहते है कि ऐसा नहीं करना चाहिए। दया का लक्षण वही है, जिसमें निज, पर के

256 वही 87 प० टोडरमल जी कृत टीका।
257 पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 88
258 वही प० टोडरमल जी कृत टीका।
259 पुरुषार्थ सद्ध्युपाय - प० मक्खनलाल शास्त्रीकृत टीका।

परिणामों की रक्षा हो। वह भूखा भी दयापात्र नहीं कहा जा सकता, जो अनन्त जीवों का पिण्डस्वरूप मांस जैसी घृणित वस्तु खाने के लिए तैयार है और न वह दयालु ही कहा जा सकता है, जो कि निज शरीर का मांस देकर परिणामों को कलुषित बनाता है और दूसरे की आत्मा को पापमय प्रवृत्ति में लगाता हैं इसलिए इस प्रकार किसी भूखे को भी मांसादि अभक्ष्य पदार्थ कभी नहीं देना चाहिए और न किसी प्रकार धर्म के निमित्त आत्मघात में प्रवृत्तहोना चाहिए, आत्मघात के बराबर कोई दूसरा पाप नहीं है।[260]

हिंसा के 432 भेद :- सरंभ, समारम्भ और आरम्भ इस त्रिक को मन, वचन, काय की तीन-तीन प्रवृत्तियों से तथा क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों और कृत, कारित, अनुमोदना से क्रम से गुणन करने पर हिंसा के भेद 108 होते हैं तथा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन कषायों के उत्तर भेदो से गुणन करने पर 432 भेद भी हिंसा के होते हैं। अत: प्रमाद को छोड़कर भावों की शुद्धि के लिए जीवों की सन्तति को बन्ध की दृष्टि से अवलोकन करो।[261]

हिंसा के दोष :- जीवों के घात करने से पापकर्म उपार्जन होता है, उसका जो फल दु:ख नरकादिक गति में जीव भोगते हैं, वह वचन के अगोचर है अर्थात् वचन के कहने में नहीं आ सकता। हिंसा ही नरक रूपी घर में प्रवेश करने के लिए प्रतोली है तथा जीवों के काटने के लिए कुठार और विदारण के लिए निर्दय शूली है। जो धर्मरूप वृक्ष क्षमादिक परम उदार यमों से बहुत काल से बढ़ाया है, वह हिंसा रूप कुठार से क्षण मात्र में नष्ट हो जाती है। हृदय में क्षण भर भी स्थान पायी हुई हिंसा, तप, यम, समाधि और ध्यानाध्ययनादि कार्यो में निरन्तर पीड़ा देती है। विषय से पीड़ित पाखण्डी हिंसा का उपदेश देने वाले हैं, वे सातवें नरक के रौरवादिक बिलों मे प्रवेश करते हैं और वही पर जीवों को घात करने वाले पीड़ित करते हैं। वह घात भी जीवो को शीघ्र ही नरक में डालता है। हिंसा ही दुर्गति का द्वार है, पाप का समुद्र है तथा घोर नरक और महाअन्धकार है। जो हिंसक पुरुष हैं, उनकी निस्पृहता, महत्ता, आशारहितता, दुष्कर तप करना, कायक्लेश और दान सब व्यर्थ हैं।

---

[260] पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय - प० मक्खनलाल शास्त्रीकृत टीका।

[261] ज्ञानार्णव 8/10-11

कुलक्रम से चली आई हिंसा कुल का नाश करने के लिए ही कही गई है तथा विघ्न की शान्ति के लिए जो हिंसा की जाती है, वह विघ्नसमूह को बुलाने के लिए ही है। सुख के अर्थ की गई हिंसा दु:ख की परिपाटी करती है, मंगलार्थ की हुई हिंसा अमंगल करती है तथा जीवनार्थ की हुई हिंसा मृत्यु को प्राप्त कराती है। जो अधम धर्म की बुद्धि से जीवों को मारता है, वह पाषाण की शिलाओं पर बैठकर समुद्र तैरने की इच्छा करता है। जो अधम शास्त्रों का प्रमाण देकर जीवो का वध करना धर्म बताते हैं, वे मृत्यु होने पर नरक में शूली पर चढ़ाए जाते हैं। जिसमे दया नहीं है, ऐसे शास्त्र तथा आचरण से क्या लाभ? क्योंकि ऐसे शास्त्र के अंगीकार मात्र से जीव दुर्गति को चले जाते हैं।[262]

समस्त प्राणियों पर अनुककम्पा करने वाला तो एक अक्षर ग्राह्य है, किन्तु इन्द्रियों का पोषण करने वाला धूर्तों के द्वारा रचा हुआ कुशास्त्र पापरूप है तथा श्रेष्ठ नहीं है। नैवेद्य, मन्त्र तथा औषधि के लिए अथवा अन्य किसी कार्य के लिए की गई हिंसा नरक ले जाती है। जो पुरुष गर्व से उद्धत हैं और इन्द्रियो के विषय तथा कषायों से ठगे गए हैं, वे ही मन्दकषाय तथा उपशम रूप शील से चिह्नित दयामयी, जीवों का हित करने वाले, गुणों की खानि दयामय धर्म को छोड़कर दु:ख की शान्ति के लिए हिंसा को भी धर्म कहकर उपदेश देते हैं। जो अधम धर्म की बुद्धि से जीवघात रूप पाप को कहते हैं, वे अपने जीवन की इच्छा से हलाहल विष पीते हैं। यही तो शास्त्र का सर्वस्व है, सिद्धान्त का प्राण है, जो जीवों की रक्षा के लिए है यही भावशुद्धिपूर्वक दृढ़ व्रत है।[263] यदि कुलाचल सहित सात द्वीप की पृथ्वी भी दान कर दी जाय तो भी एक प्राणी को मारने का पाप दूर नहीं हो सकता है। यदि कोई किसी मनुष्य को मर जाने के बदले में नगर, पर्वत और सुवर्ण, रत्न और धन, धान्य आदि से भरी समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का दान करे तो भी अपने जीवन को त्याग करने मे उनकी इच्छा नहीं होगी। जिस पुरुष ने किसी की प्रीति के भ्रम से अथवा किसी के भय से हिसा का समर्थन किया तो ऐसा समझो कि उसने अपनी आत्मा को उसी समय नरक रूपी समुद्र में डाल

[262] ज्ञानार्णव 8/12-25

[263] ज्ञानार्णव 8/26-30

दिया। जो त्रिशूल, चक्र, तलवार और धनुष इत्यादि से जीवों का घात करने के लिए उद्यत हैं, ऐसे देवताओं को निर्दय पुरुष स्थापित करते हैं, वे अधम हैं। जो बलवान् इस लोक में निर्बल का पराभव करता है। वह परलोक में उससे अनन्तयुग पराभव सहता है। जिनके अंग भय से कम्पित हैं, जिनका कोई रक्षक नहीं, जो अनाथ हैं, जिनको जीवन ही एकमात्र प्रिय है, ऐसे प्राणियों को जो मारते हैं, उन्होंने क्या अपने को अजरामर जान लिया? यह बड़ा आश्चर्य है कि अपने पुत्र, पौत्रादि सन्तान को बड़े यत्न से पालते हैं और दूसरों की सन्तान का घात करते हैं। न मालूम इसमें क्या हेतु है?[264] जिस पुरुष का चित्त जीवों के लिए शस्त्र के समान है, उसका तप करना और शास्त्र का पढ़ना आदि कार्य केवल क्लेश के लिए ही होते हैं। वध करने वाला और वध की अनुमोदना करने वालों का संकल्प बुरा है। स्वयम्भूरमण समुद्र में शालिसिक्थ्य मत्स्य महामत्स्य के साथ अशुभ परिणामो के कारण नरक गया।[265] जो मनुष्य तृण भी शरीर में चुभने पर अपने को दु:खी मानता है, वह निर्दय होकर पर के शरीर पर शास्त्र कैसे चलाता है?[266] दु:ख, शोक और भय का बीज हिंसा ही है।[267]

शाकाहार द्वारा कई गम्भीर रोगों से बचा जा सकता है

भारत ही नहीं, विश्व में अपनी गौरवशाली परम्पराओं के लिए प्रसिद्ध बॉम्बे हास्पिटल (मुम्बई) में रोगियों को उसके स्थापना काल से ही शाकाहारी भोजन परोसा जाता है। अस्पताल के विशेषज्ञों ने "रोल ऑफ वेजीटेरियन डाइट इन हैल्थ एण्ड डिसीज" (1986) में ऐसे दस्तावेजी अनुभव और विवरण प्रस्तुत किए हैं, जिनसे पता चलता है कि शाकाहार द्वारा कई गम्भीर रोगों से बचा जा सकता है।

जो लोग मांसाहार करते हैं वे अक्सर ग्रासनली (ईसाफेगस) के कैंसर के शिकार हो जाते हैं। शाकाहारी इस गम्भीर रोग से इसलिए बचे रहते हैं, क्योंकि ताजा फलो, साग-सब्जियो विशेषत: आँवला, नीबू आदि मे विटामिन

---

[264] वही 8/34-40

[265] वही 8/44-46

[266] वही 8/48

[267] वही 8/57

"सी" होता है। विटामिन "सी" कैसर प्रतिरोध में एक अच्छा कवच सिद्ध हुआ है।

मांसाहार के रेशायुक्त न होने के कारण उससे केरीज (दाँतों में सड़ान और उनका क्षीण होना) नामक रोग हो जाता है। शाकाहार में रेशा विपुल होने के कारण वह लार के प्रवाह को उन्नत रखता है तथा फलस्वरूप पाचन को आगे बढ़ाता है। वह केरीज को रोकता है। अस्थिक्षय से भी वह शरीर की रक्षा करता है।

मांसाहार में हायटस हार्निया (ग्रसनली और आमाशय के बीच की प्राचीर से आँत का उभार) का उत्पात प्रायः देखा जाता हे। यद्यपि अभी इसका निश्चित कारण अज्ञात है, तथापि कहा जाता है कि शाकाहार में विशेषतः आमाशय के रिक्त होने में अधिक समय नहीं लगता। इसके विपरीत मांसाहार में वसा के अधिक होने के कारण आमाशय जल्दी खाली नहीं होता और डायफ्राम (मध्यच्छद) पर लगातार भारी दबाव पड़ता है, फलस्वरूप हायटस हार्निया हो जाता है।[268]

मांसाहारी लोगों को हृदयरोग का खतरा ज्यादा रहता है; क्योंकि खून में कालेस्ट्रॉल का स्तर बढ़ने से हृदय को कार्य करने के लिए जरूरी आक्सीजन मिलने में कठिनाई होने लगती है और रक्त के थक्के बनने का खतरा बढ़ जाता है, जब कि शाकाहारी लोगों को ये खतरा कम रहता है; क्योंकि साग सब्जियाँ कोलस्ट्राल से लगभग मुक्त रहती हैं। हृदय रोगी के लिए सोया, दूध, चना और विभिन्न प्रकार के फल एवं सब्जियाँ लाभदायक होती है, क्योंकि उनमे उच्चकोटि के घुलन-शील रेशे होते हैं जो कोलस्ट्राल की मात्रा घटाकर हृदय रोग पर अंकुश लगाते हैं। मांसाहार के कारण कोलोन और स्तन कैंसर तो होते ही हैं, मधुमेह, पथरी, उच्च रक्त चाप का खतरा भी बना रहता है। मासाहार मे परोसे जाने वाले मुर्गे-बकरे प्रायः रोगग्रस्त और संक्रमित होने के कारण बीमारियों के वाहक होते हैं। वहीं जब उनकी हत्या की जाती है तो उनके शरीर से एक खास किस्म का स्राव होता है, जो मासभक्षण करने वाले को हिसक बनाता है।[269]

---

[268] Ahinsa news Vol. 2 (2) April-June-1999 P.2.

[269] अहिंसा सन्देश - 1 दिसम्बर 2000, पृ० 6

इंसान को इंसान बनाओ पहले

पिछले माह मुझे एक समाज सेवी द्वारा भोजन का निमंत्रण मिला। रात के दस बज गए। मैं जल्दी वापस आना चाहता था, पर मित्र मेरे पीछे ही पड़ गया कि उसे दक्षिण भारत से एक संस्था ने अद्भत वीडियो केसेट भेजी है, मैं उसे देखकर जाऊँ।

मैंने उसे "फिर कभी'' कहकर टालने की बहुत कोशिश की, परन्तु उसकी जिद के समक्ष मुझे झुकना पड़ा। यह बात मेरी जिज्ञासा का विषय अवश्य थी कि मेरा मित्र उस कैसेट को 'अद्भुत' क्यों कह रहा है?

टी०वी० के पर्दे पर जब पहला दृश्य दिखा तो मैं चकरा गया। एक लम्बे बालों वाला सूअर था उसके बाद उद्घोषक ने बताया कि इस सुअर के बालों से बड़ा कीमती "हेयर ब्रश'' बनता है, जिसकी यूरोप और अमरीका में इतनी माँग है कि पूरी नहीं हो पा रही। इसके बाद हेयर ब्रश निर्माण की प्रक्रिया के बारे में जब बताया जाने लगा तो मुझे बड़ी पीड़ा हुई। उसने बताया कि जो बाल इस ब्राश में इस्तेमाल किए जाते हैं, उन्हें जीवित सूअर के शरीर से खींचकर निकालना पड़ता है और तब ही वह प्रयुक्त हो सकते हैं। आधे बाल तो बाह्य चर्म के बाहर थे और आधे अंदर शरीर में थे।

चिमटे की सहायता से बालों का खींचा जाना, सूअर की छटपटाहट और धीरे-धीरे सारे शरीर की लहुलुहान होते देख मैं विचलित हो उठा। मैंने मित्र से कहा कि इस कैसेट को बंद कर दे परन्तु न जाने वह क्यों इस बात उतारू था कि मुझे पूरी कैसेट देखनी होगी। शायद उसकी भावना यह भी रही हो कि "प्रिंट मीडिया'' में इस तथ्य को लाया जा सकेगा।

दूसरा दृश्य एक नवजात मेमने का था। पैदा होने के दो घंटों के अंदर अगर जीवित मेमने की खाल खीच ली जाए तो इससे विशेष प्रकार के "फरकोट'' बनाए जाते है। मेमना किस नस्ल का था, यह तो मैने नोट नहीं किया, परन्तु उसकी खाल खींचे जाने का दृश्य मुझे पूरी तरह झकझोर गया।

इसी तरह मगरमच्छ, खरगोश, हाथी और कुछ अन्य पशुओ और पक्षियो के मारे जाने के दृश्य उसमें थे। किसी की खाल से बेल्ट और जूते बनाए जाते हैं, किसी से परफ्यूम और किसी से अन्य सौंदर्य प्रसाधन।

उस रात मैं सो न सका। रात करवट बदलते बीती। सुबह जब नींद आई तो अजीब-सा स्वप्न देखा। मैंने देखा कि मैं आगे-आगे दौड़ रहा हूँ और मेरे पीछे वे तमाम पशु-पक्षी चले आ रहे हैं, मानो वह मुझे नोच लेना चाहते हों। नींद खुलने पर फोन से एक ऐसे मित्र से मैंने बात की जो "तंत्रशास्त्र" के भी ज्ञाता हैं और स्वप्न विश्लेषण भी करते हैं। हालांकि उन्होंने मुझे यही कहा कि रात की घटना (वीडियो कैसट) से उपजी वेदना के कारण ऐसा स्वप्न आया पर मैं पूरी शिद्दत से यही महसूस करता रहा हूँ कि वास्तव में पशुता की परकाष्ठा पर हम हैं या वे मूक पशु, जिनका यह हश्र हम मात्र सौंदर्य प्रसाधनों के लिए करते हैं।

इसमें कोई दो मत नहीं कि आज सारे राष्ट्र में जागृति आई है। कई संस्थाएँ ऐसी हैं, जिन्होंने इस क्रूरता को रोकने की दिशा में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। श्रीमति मेनका गाँधी ने भी इस दिशा में एक उदाहरण अवश्य प्रस्तुत किया है, जो अनुकरणीय है। व्यक्तिगत तौर पर कई बार मैं इस बात को सोचता हूँ कि सर्कस और चिड़ियाघर, यह दोनों भी प्रत्यक्ष या परोक्ष, हमारी निर्दयता का ही एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अभी हाल ही मे उड़ीसा के नंदनकानन में जो भी घटा, उसने एक बार यह साबित अवश्य कर दिया है कि प्रकृति की हरीतिमा में स्वच्छंद और उन्मुक्त विचरण करने वाले वनराज को लोहे की सीखचों के अंदर बंद करके रखने का हमें कोई नैतिक अधिकार नहीं है। जहाँ तक नेशनल पार्क की अवधारणा है वह तो ठीक है, इससे प्रकृति संरक्षण में भी बड़ी सहायता मिलती है, पर इस बात पर ध्यान दिया जाना भी उतना ही जरूरी है कि वन्य जीवन शिकारियों के हाथो से बचाया जाए। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

झारखण्ड मे पलामू नामक स्थान में एक बड़ा ही प्रसिद्ध नेशनल पार्क है, जिसका नाम है बेतला नैशनल पार्क। यहाँ पर हिरणों की संख्या इतनी अधिक है कि कभी-कभी आश्चर्य होता है। चूँकि बिहार का कानून और व्यवस्था की स्थिति इतनी दयनीय है कि यह स्थान घुमंतुओं के लिए उतना सुरक्षित नहीं रहा, पर अभी भी दुर्गा पूजा के अवसर पर कलकत्ता के सैलानियों का यह मुख्य आकर्षण है।

प्रकृति ने इस प्रदेश के दक्षिण भाग को अद्‌भुत छटा अवश्य प्रदान की है परन्तु हिरणों की हत्या करके उनकी खाल बेचना यहाँ के इर्द-गिर्द के गाँवों में एक कुटीर उद्योग धंधा की तरह पनप चुका है। अभी हाल ही में ऐसे ही एक सैलानियों के दल से मुझे मिलने का अवसर मिला और उसने वहाँ की स्थिति पर गहरी चिंता भी जताई। उस दल के लोगों ने बताया कि केड़, गारु, छिपादोहर, वरवाडीह, केचकी आदि स्थानों में हर जगह ऐसे दलाल मिल जाऐंगे जो "एडवांस" लेने के बाद जानवरों को मार कर खाल बेचते हैं। यह तो सरकार का ही कर्त्तव्य है कि वह वस्तुस्थिति की सत्यता का पता लगाए।

गोधन के बारे में भी इधर काफी संस्थाओं ने शोध किया है। उन संस्थानों का निष्कर्ष है कि गाय दूध न भी दे तो भी उसके गोबर और गोमूत्र से बहुत सी दवाइयाँ बनाई जा सकती हैं और खाद में भी इनका प्रयोग होता है।

मात्र व्यवसायिक दृष्टिकोण से भी निरीह पशु-पक्षियों का वध बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण है। मुझे एक जानकार व्यक्ति ने बताया कि 5,76,000 बत्तखों को मारा जाए तो उनके पंखों से 36,000 शटल काक बनते हैं, जो बैडमिंटन खेलने में प्रयुक्त होते है। उसने मुझे यह भी बताया कि जीवित खरगोश की आँख निकालकर उससे अति महंगे किस्म का "परफयूम" बनता है, जिसकी पश्चिम एशिया के देशों में खपत बहुत अधिक है।

ऐसे में मुझे इंसान की फितरत पर बड़ा तरस आता है। किसी शायर ने शायद ठीक ही कहा है :-

इसान को भगवान बनाने वालो

इंसान को इसान बनाओ पहले।

(-पंजाब केशरी से साभार)

सुन्दरता औरत की - शामत बेजुबान जानवरों की

जहाँ कृत्रिम सौन्दर्य प्रसाधन स्वास्थ्य का नाश करते हैं दूसरी ओर इनके निर्माण में अनगिनत पशु-पक्षी भी मौत के घाट उतारे जाते हैं। इस सम्बन्ध में शोधकर्ताओं ने आत्मग्लानि से भर देने वाले तथ्य प्रस्तुत किए हैं। इनके अनुसार लोशन में गिनीपिग की खाल डाली जाती है। लिपस्टिक में कई

जानवरों का रक्त मिलाया जाता है। पाउडर में बंदर की आँख और हृदय के कुछ तत्व मिलाए जाते हैं। सैंट में लोसले नामक पदार्थ के लिए बिच्छू के शरीर को बुरी रह पीसा, खरोंचा जाता है। खरगोश की आँख के पास की चर्बी शैम्पो तैयार करने के काम में ली जाती है।

सुन्दर दिखने की आकांक्षा गहराई से दूसरों का प्रेम प्राप्त करने की लालसा से ही जन्मती है। उसके लिए अपने व्यक्तित्व को गुणों से सम्पन्न और चरित्र की नैतिक आदर्शों से सँवारने का मार्ग ही सही मार्ग है। शरीर को सजा-संवार कर रखने की प्रवृत्ति भी व्यावहारिक कही जा सकती है। सौंदर्य स्वाभाविक है जिसे प्रकृति का वरदान ही कहा जा सकता है। जिस प्रकार फूल अपनी विशेषता से ही सुन्दर लगता है, तितली की सुन्दरता प्रकृति प्रदत्त है, उसी प्रकार मनुष्य के नैसर्गिक सौंदर्य में स्वस्थता, स्वच्छता और सौम्य सज्जनता का समावेश है किन्तु आज का विकृत दृष्टिकोण सुन्दर दिखने की लालसा को श्रृंगार प्रसाधनो के आधार पर पूरी करता दिखाई पड़ता है।

सर्वविदित सच तो यह ठीक है लेकिन उसके लिए कुछ भी कर गुजरना नासमझी है। यह नासमझी कभी-कभी क्रूरता की हद तक पहुँच जाती है। शरीर पर रंग-रोगन लपेट लेने और चमड़ी पर पाउडर पोत लेने भर से कोई भी सुन्दर बन सकता है। सौंदर्य प्रसाधनो के लिए धन का अपव्यय तो होता ही है साथ ही ऐसी वस्तुओ का प्रयोग हानिकारक भी है। कुछ वस्तुएँ ऐसी भी है जिनके निर्माण के लिए पशु-पक्षियों का निदर्यतापूर्वक वध भी किया जाता है।

एक विशेष सुगध की उत्पादिका जैक्स लील का कहना है कि सुगन्ध बनाने के लिए अफ्रीकी जगलो में पाई जाने वाली बिल्ली सिवेटक के प्राण तक ले लिए जाते है क्योकि इस बिल्ली के पेट की विशेष ग्रंथि में यह सुगंध पाई जाती है। उसके पेट मे लकड़ी घोपकर घायल कर दिया जाता है जिसके दर्द के कारण वह पागल जैसी अवस्था मे पहुँच जाती है। इस क्रूरता से तैयार किए गए इत्र का नाम रखा गया है चैनल न०3 जिसका बाजार भाव सोने की कीमत से लगभग पाँच गुना ज्यादा होता है।

ऐसे ही शेम्पो, आफटर शेव लोशन, यूडी कोलोन आदि के परीक्षण के लिए खरगोश का उपयोग किया जाता है। इन वस्तुओं के परीक्षण के लिए

खरगोश की आँखों में शैम्पो डाला जाता है जिससे प्रयोक्ता में जलन, खुजली व चिनचिनाहट का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रयोग में खरगोश अंधा हो जाता है। इसी प्रकार लोशन की जाँच के लिए इस मूक प्राणी की चमड़ी में टेप चिपकाकर उसे झटके से खींचा जाता है। यह क्रिया तब तक दोहराई जाती है जब तक उसका मांस दिखाई न पड़े। बाद में लोशन या कोलोन लगाकर 3-4 दिन तक खरगोश को हिलने-डुलने नहीं दिया जाता। कभी-कभी खरगोश प्रयोग पूरा होने से पहले ही मर जाता है। श्रृंगार में इक्ट्रोजन नामक जो पदार्थ प्रयुक्त किया जाता है वह गर्भवती घोड़ी के पेशाब से प्राप्त होता है। इसके लिए घोड़ी के जींस को ऐसा नियंत्रित किया जाता है कि वह लम्बे समय तक कष्ट सहते हुए भी गर्भ धारण किए रहती है। उसे अधिक पेशाब करने वाली विषाक्त औषधियाँ दी जाती हैं।

इसी प्रकार तेल, क्रीम, साबुन के लिए व्हेल मछली को बेरहमी से मारा जाता है। इन सौंदर्य प्रसाधनों के निर्माण में कितना समय, धन, श्रम लगा एवं कितने जीवों को जान गँवानी पड़ी इसका पुख्ता हिसाब तो नहीं है लेकिन विदेशी आँकड़ों के अनुसार पश्चिमी जर्मनी में 40 लाख जन्तुओं की हत्या की गई। इंग्लैंड में 55 लाख, अर्जेंटीना में 20 लाख, उत्तरी कोरिया में 42 लाख, रूस में 25 लाख, फ्रांस में 70 लाख, जापान में 52 लाख पशु-पक्षियों का वध किया गया।

इन सौंदर्य प्रसाधनों के लगातार इस्तेमाल से धन, हानि, प्राणी जगत् की हानि तो है ही, कैंसर जैसे असाध्य रोग भी आमंत्रित हो जाते हैं। नेल पालिश, लिपस्टिक व बिन्दी से चर्म रोग आम बात हो गई है। काजल से आँखों में कुकरे के रोगियों की संख्या बढ़ रही है।

शरीर को स्वस्थ व सुन्दर बनाने के लिए किसी प्रसाधन की आवश्यकता नहीं अपितु उचित खान-पान द्वारा ही हम अपने को कांतिमय बना सकते हैं।

यदि कुछ लगानाही चाहें तो कई प्राकृतिक चीजें हैं, जो उपयोग में लाई जा सकती हैं जैसे क्रीम की जगह पर कच्चा दूध या मलाई, हल्दी भी त्वचा को सुन्दर बनाती है। गुलाब जल के नियमित प्रयोग से त्वचा की झुर्रियां कम हो जाती हैं।

बालों को काला करने के लिए आँवले का प्रयोग करें। मेंहदी लगाने से बालों की चमक बनी रहती है।

तथ्य यही है कि स्वास्थ्य एवं सुन्दरता को प्राकृतिक ढंग से बेहतर बनाया जा सकता है। हमारे देश में प्राकृतिक जड़ी-बूटियों का अनोखा भंडार है। यदि इन घरेलू प्राकृतिक नुस्खों को अपनाएँ तो सौदर्य में निखार तो आएगा ही, साथ ही रासायनिक वस्तुओ की हानियों से भी बचा जा सकता है।[270]

शिकार खेलने में हिंसा :- जो मुक्तकेश हैं अर्थात् भय के मारे जिनके रोंगटे खड़े हुए हैं, पराङ्.मुख हैं और दाँतों में तृण को दाबे हुए हैं, ऐसे अपराधी भी दीन जीवों को शूरवीर पुरुष नहीं मारते हैं। भय के कारण नित्य भागने वाले, घास खाने वाले तथा निरपराधी और वनों में रहने वाले मृगों को निर्दयी पुरुष कैसे मारते हैं? यह महा आश्चर्य हैं यदि गो, ब्राह्मण और स्त्रीघात का परिहार करने वाले पुरुष को धर्म होता है तो सभी जीवों की दया से वह क्यो नहीं होगा? जिस प्रकार गो, ब्रह्ममण और स्त्रियों के मारने में महा पाप है, उसी प्रकार अन्य प्राणियो के घात में भी महापाप होता है, उसमें कोई सन्देह नहीं है। चिरकाल तक मधु, मद्य और मांस का सेवन करने वाला जिस घोर पाप को प्राप्त होता है उस पाप को शिकारी पुरुष एक दिन भी शिकार खेलने से प्राप्त होता है।[271]

नवनीत के भक्षण करने में हिंसा :- जिसके भीतर सूक्ष्म शरीर वाले नाना प्रकार के प्राणी निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं, ऐसे नवनीत का सेवन मनुष्यों को उस पाप का सचय देता है, जिससे बड़ा और कोई पाप संसार में नहीं है। नाना प्रकार के जीव समूह के विनाश का स्थान ऐसा नवनीत देखकर भी जो लोग उसे खाते हैं उनमे संयम का लेश भी नही है, फिर धर्म साधन की तत्परता कैसे हो सकती है? जिस नवनीत में दो मुहूर्त के बाद जीवराशि सदा उत्पन्न होती रहती है, उस नवनीत को जो लोग यहाँ पर खाते है, वे कौन सी गति को जाते हैं, यह हम नही जानते है।[272]

---

[270] कचन गुप्ता (अदिति) तथा उर्वशी का लेख - सुन्दरता औरत की शामत बेजुबान जानवरों की।

[271] वसुनन्दि श्रावकाचार 95-99

[272] अमितगति श्रावकाचार 5/34-36

पाँच उदुम्बर फलों का भक्षण करने में हिंसा :- जिनमें नाना प्रकार के सूक्ष्म शरीर के धारक प्राणी उत्पन्न होते हैं, ऐसे बड़, पीपल, पाकर, गूलर और कठूमर - इन पाँच प्रकार के उदुम्बर फलों को शुद्ध मानस वाले मनुष्य नहीं खाते है। जो अधम पुरुष क्षीरी वृक्षों से उत्पन्न हुए नाना प्रकार के जीवों से भरे इन उदुम्बर फलों को खाते हैं वे ससार सागर में निपात के कारणभूत कौन से पाप का इस लोक में संचय नही करते हैं? अर्थात् सभी पापों का सचय करते हैं।[273]

अहिंसा व्रत की रक्षा और मूलव्रत की विशुद्धि के लिए रात्रि भोजन का त्याग :-

अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए और मूलव्रतों को विशुद्ध रखने के लिए इस लोक और परलोक में दु:ख देने वाले रात्रिभोजन का त्याग कर देना चाहिए।[274] जो पुरुष खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय - इन चारों ही प्रकार के भोजन को रात्रि में न तो स्वयं करता है और न दूसरों को कराता है, वह रात्रि भोजन विरत प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है। जो पुरुष रात्रि में आरम्भ का त्याग करता है, वह एक वर्ष में छह उपवास करता है; क्योंकि वह रात्रि में आरम्भ का त्याग करता है।[275] जिस रात्रि में राक्षस, भूत और पिशाचों का संचार होता है, जिसमें खाया गया भोजन संयम का विनाशक है, जिसमें घोर अन्धकार फैलता है, जिसमें साधुवर्ग का संगम नहीं है, जिसमें देव और गुरु की पूजा नहीं की जाती है, जिसमें खाया गया भोजन संयम का विनाशक है, जिसमें जीते जीवों के भी खाने की सम्भावना रहती है, जिसमें सभी शुभ कार्यो का अभाव होता है, जिसमें संयमी पुरुष गमनागमन भी नहीं करते हैं, ऐसे महा दोषों के आलयभूत दिन के अभाव स्वरूप रात्रि के समय धर्म कार्य मे कुशल पुरूष भोजन नहीं करते हैं।[276] जिस कारण रात्रि भोजन करने वालों के अनिवार्य हिसा होती है, इसलिए हिंसा से विरत होने वाले पुरुषों को रात्रि भोजन भी छोड़ देना चाहिए।[277] भोजन का त्याग नहीं करना रागादि के उदय

---

[273] अमितगति श्रावकाचार 5/68-69

[274] यशस्तिलक चम्पू 6/310

[275] स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षागत श्रावक धर्म वर्णन 81-82

[276] अमितगति श्रावकाचार 5/40-42

[277] पुरु० 129

के परतन्त्र होने से अर्थात् समाधिक्य होने से हिंसा को बचा नहीं सकता, तब रात्रिदिन खाने वाले को हिंसा क्यों नहीं लगेगी? अर्थात् उसे अवश्य हिंसा लगती है।[278] प्रश्न-यदि ऐसा है कि दिन रात भोजन करने से हिंसा होती है तो दिन में भोजन का परिहार करना योग्य है और रात्रि में भोजन करना चाहिए। ऐसा करने से अर्थात् दिन में भोजन का त्याग और रात्रि में भोजन करने से हिंसा सदैव नहीं होती है।

उत्तर - इस प्रकार कुतर्क नहीं करना चाहिए; क्योंकि दिन में भोजन करने की अपेक्षा रात्रि में भोजन करने पर राग अधिक होता है। अन्न के खाने की अपेक्षा मांस के खाने में जैसे अधिक राग होता है। सूर्य के प्रकाश के बिना रात्रि के अन्धकार में भोजन करने वाला दीपक के जला लेने पर भी भोजन में प्रीतिवश गिरने वाले सूक्ष्म जन्तुओं की हिसा को कैसे बचा सकता है? अर्थात् नहीं बचा सकता। बहुत कहने से क्या लाभ है उपर्युक्त विवेचन से यह बात सिद्ध हो जाती है कि जो मन, वचन, काय से रात्रि-भोजन का त्याग करता है, वह निरन्तर अहिंसाव्रत को पालता है।[279]

अनंतकाय का सेवन करने में हिंसा :- क्योकि एक भी अनन्तकाय से भरे हुए पिण्ड को जो नष्ट करने की इच्छा करता है, वह अनन्त जीवों को मार डालता है, इसलिए समस्त अनन्तकाय वाले पदार्थों का अवश्य त्याग करना चाहिए।[280]

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि साधारण तथा अनन्तकाय किसे कहते हैं? स्थावर जीव पाँच प्रकार के होते हैं- पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और वनस्पति। इनमें से वनस्पति के दो भेद हैं- साधारण और प्रत्येक। साधारण उसे कहते हैं, जिसके एक शरीर में अनन्त जीव स्वामी पाये जावें जैसे - कंद। कंद कभी भी प्रत्येक अवस्था को प्राप्त नही होते, साधारण ही रहते हैं। कन्द का शरीर ही जीवराशि का पिण्ड होता है, उसमे अनन्त जीव उत्पन्न होते रहते हैं और उस कन्द को बढ़ाते रहते है। प्रत्येक वनस्पति उसे कहते है जिसके एक शरीर मे एक ही जीव स्वामी पाया जावे। प्रत्येक वनस्पति के भी

---

[278] वही 130

[279] पुरु० 131-134

[280] वही 162 -

दो भेद होते हैं- सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित। निगोद सहित प्रत्येक वनस्पति को अप्रतिष्ठित कहते हैं। दूब, बेल, छोटे वृक्ष आदि या ऐसी वनस्पति में जिनमें लम्बी-लम्बी रेखाये, गाँठें या सन्धियें नजर न आवें अथवा जो काटने के बाद फिर उग सकें, जिनके तन्तु न हों अथवा जिनमें तोड़ने पर तन्तु न लगे रहें, सप्रतिष्ठित कहलाती हैं। निगोद रहित प्रत्येक वनस्पति को अप्रतिष्ठित कहते है। जिनमें रेखा, गाँठें, सन्धियें साफ नजर आवे, जो काटने के बाद फिर न उग सकें, जिनमें तन्तु होवें और जिनमे तोडने पर तन्तु लगे रहें, उन्हें अप्रतिष्ठित कहते हैं।

उपर्युक्त सप्रतिष्ठित वनस्पति को साधारण भी कहते हैं। इस साधारण वनस्पति में अनन्त जीव पाए जाते हैं। इस कारण इसको अनन्तकाय कहते हैं। उदाहरण- अदरक आदि साधारण वनस्पतियो में लोक के जितने प्रदेश हैं, उनसे असंख्यात गुणे जीव तो प्रत्येक शरीर में पाए जाते हैं, जिन्हें स्कन्ध कहते हैं। जैसे-अपना शरीर। इन स्कन्धों में असंख्यात लोक प्रमाण अन्डर पाए जाते हैं, जैसे- हाथ-पाँव में उंगली में तीन पोरी। एक आवास में असख्यात लोक प्रमाण निगोद पाए जाते हैं, जैसे - अंगुली के एक भाग में अनेक रेखायें पायी जाती है। एक निगोद शरीर में सिद्ध समूह से अनन्त गुणे जीव पाए जाते हैं। जैसे - एक रेखा में अनेक प्रदेश। इस प्रकार एक सप्रतिष्ठित वनस्पति के टुकड़े में अनन्त जीवों का अस्तित्व पाया जाता है। एक हरित काय में अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर असंख्यात या संख्यात पाये जाते हैं। उनमें जितने शरीर होते हैं, उतने ही जीव पाए जाते हैं। इसलिए जिह्वा इन्द्रिय के जरा से स्वाद के लिए अनन्त जीवों का घात करना सर्व प्रकार-अनुचित है।[281]

असत्यवचन में हिंसा :- जो कुछ भी प्रमाद के योग से असत्य कथन कहा जाता है, वह असत्य है। असत्य के भी चार भेद हैं। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से विद्यमान भी वस्तु जिस वचन मे निपिद्ध की जाती हैं, वह पहला असत्य है। जैसे-यहाँ पर देवदत्त नहीं है। जिस वचन में अविद्यमान भी वस्तुस्वरूप उन भिन्नक्षेत्र, भिन्नकाल, भिन्न भावों द्वारा कहा जाता है, वह दूसरे प्रकार का झूठ है। जैसे इस जगह घट है। अर्थात् जिस जगह घड़ा नहीं

281 पुरु० 162 (प० उग्रसेन जैन कृत टीका) पृ० 123-124

रखा है, किसी से यह पूछने पर कि इस जगह घड़ा है या नहीं? यह उत्तर देना कि इस जगह घड़ा रखा है, यह दूसरे प्रकार का असत्य है। जिस वचन में अपने स्वरूप से वस्तु उपस्थित है तो भी परस्वरूप से कहा जाता है, यह झूठ का तीसरा भेद समझना चाहिए, जिस प्रकार गौ को घोड़ा कह देना। जो वचनस्वरूप निन्दनीय, दोषरहित और अप्रिय-कठोर होता है, यह चौथा झूठ सामान्य रीति से तीन प्रकार कहा गया है। चुगलखोरी, कर्कशवचन, कुछ का कुछ असंबद्ध वचन तथा प्रलाप करना एवं अन्य भी जो वचन जिनेन्द्र आज्ञा से विरुद्ध हैं, वह सब वचन निंद्य है। छेदना, भेदना, मारण, खेती, वाणिज्य और चोरी आदि का जो वचन है, वह दोष सहित वचन है, क्योंकि इन वचनों से प्राणियों का वध आदि हिंसा के कार्य होते हैं। चित्त में आकुलता पैदा करने वाला एवं धैर्य को नष्ट करने वाला विद्वेषोत्पादक, भय उत्पन्न करने वाला, चित्त मे खेद उत्पन्न करने वाला, शत्रुता उत्पन्न करने वाला, शोक उत्पन्न करने वाला, कलह उत्पन्न करने वाला और जो भी दूसरे को संताप उत्पन्न करने वाला वचन है, वह समस्त अप्रिय वचन समझना चाहिए। इन समस्त वचनों में प्रमाद योग है, इसलिए झूठ वचन में भी हिंसा नियम से होती है।[282] समस्त झूठ वचनों का प्रमाद योग को ही कारण बतलाने पर त्याज्य बात के छोड़ने का विधान असत्य नही है। जो पुरुष भोग और उपभोग सामग्री के इकट्ठा करने मे कारणमात्र पापयुक्त वचन को छोड़ने में असमर्थ हैं वे भी बाकी समस्त झूठ को सदा ही छोड़ देवें।[283] जो वचन सन्देह रूप हो तथा पाप रूप और दोषों से सयुक्त हो तथा ईर्षा को उत्पन्न करने वाला हो, वह अन्य के पूछने पर भी नहीं कहना चाहिए तथा किसी प्रकार सुनना भी नही चाहिए। मर्म का छेदन करने वाला, मन मे शल्य उपजाने वाला, स्थिरता रहित, विरोध उपजाने वाला तथा दयारहित वचन कष्टगत प्राप्त होने पर भी नही बोलना चाहिए।[284] दावाग्नि से दग्ध हुआ वन तो किसी काल मे हरा हो भी जाता है, किन्तु जीभ रूपी अग्नि से पीड़ित हुआ लोक बहुत काल बीत जाने पर भी हरित (प्रसन्नमुख) नही होता है।[285]

---

[282] पुरु० 91/99

[283] वही 100-101

[284] ज्ञानार्णव 9/12-13

[285] वही 9/21

सत्यवचन की प्रशंसा :- जिनेन्द्र भगवान् ने जो यमों का समूह कहा है, वह अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए कहा है। अहिंसाव्रत यदि असत्यवचन से दूषित हो तो वह उत्कृष्ट पद को प्राप्त नहीं होता है।[286] जीवों को जिस प्रकार कर्णप्रिय वाणी सुखी करती है, उसी प्रकार चन्दन, चन्द्रमा, चन्द्रमणि, मोती तथा मालती के पुष्पों की माला आदि शीतल पदार्थ सुखी नहीं कर सकते हैं।[287] तीनलोक में चन्द्रमा के समान आनन्द को बढ़ाने वाला, सत्य वचन से उत्पन्न प्रयोजन को सिद्ध करने वाला मौन ही हितकारी है और यदि वचन कहना ही पड़े तो ऐसा कहना चाहिए, जो सबका प्यारा हो।[288]

चोरी में हिंसा :- जो प्रमाद के योग से बिना दिए हुए परिग्रह का ग्रहण करता है, वह चोरी जानना चाहिए और वही वध का कारण होने से हिंसा है।[289] जितने भी धन, धान्य आदि पदार्थ हैं, वे पुरुषों के बाह्य प्राण हैं, जो पुरुष जिसके धन का हरण करता है, वह उसके प्राणों का नाश करता है।[290] हिंसा की और चोरी की अव्याप्ति नहीं है, क्योकि दूसरों के द्वारा स्वीकार की गई द्रव्य के ग्रहण करने में प्रमादयोग अच्छी तरह घटता है, इसलिए हिंसा वहाँ होती ही है। प्रमादयोग रूप एक कारण का विरोध होने से और कर्म के ग्रहण करने में वीतराग मुनि के प्रमादयोग का अभाव होने से चोरी और हिंसा - इन दोनो मे अतिव्याप्ति भी नहीं है।[291] इस विषय को तत्त्वार्थवार्तिक में और अधिक स्पष्ट किया है :-

वन्दना आदि क्रियाओं के निमित्त से जो पुण्य का सचय होता है, उसमें चोरी की शंका नही करना चाहिए; क्योंकि जहाँ लेन-देन का व्यवहार होता है, वहीं चोरी का दूषण आता है। प्रमादपूर्वक अन्य की वस्तु को ग्रहण करना चोरी है। यत्नवान्, अप्रमत्त और ज्ञानी साधु के शब्दादि ग्रहण करने पर अचौर्य प्रसिद्ध है। सामान्य से वे शब्द, द्वार, गली आदि सबके लिए खुली हुई वस्तुऐ है। वे उसमें ही प्रवेश करते है। अत: शब्दादि इन्द्रियो के विषय और दरवाजा

---

[286] वही 9/12

[287] ज्ञानार्णव 9/20

[288] वही 9/7

[289] वही 9/102

[290] वही 9/103

[291] वही 9/105

आदि अदत्त नहीं हैं; क्योंकि ये साधु उस द्वार आदि में प्रवेश नहीं करते, जिनके किवाड़ बन्द हैं अथवा जो सार्वजनिक नहीं हैं।[292]

जो पुरुष कूपजल आदि के हरण करने की निवृत्ति को करने के लिए असमर्थ हैं, उन पुरुषों के द्वारा भी दूसरा समस्त बिना दिया हुआ द्रव्य सदा छोड़ देना चाहिए।[293]

मैथुन में हिंसा :- जिस प्रकार तिलनाली में तपाए हुए लोहे के छोड़ने पर तिल पीड़े जाते है- भुन जाते है, उसी प्रकार योनि में मैथुन करते समय अनेक जीव मारे जाते हैं। जो भी कुछ काम के प्रकोप से अनंगक्रीडन आदि किया जाता है, वहाँ पर भी रागादिक की उत्पत्ति प्रधान होने से हिंसा होती है।[294] जो पुरुष चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से अपनी स्त्रीमात्र को छोड़ने के लिए निश्चय से नहीं समर्थ है, उन्हे भी बाकी की समस्त स्त्रियों का सेवन नहीं करना चाहिए।[295]

अहिंसादि गुण को बढ़ाने वाला होने से ब्रह्म कहलाता है। जिसका परिपालन करने से अहिंसादि गुणों की वृद्धि होती है, वह ब्रह्म कहलाता है। ब्रह्म का अभाव अब्रह्म है। वह अब्रह्म ही मैथुन है। अब्रहम्चारी के हिंसादि दोष होते हैं, क्योकि मैथुन सेवनाभिलाषी व्यक्ति त्रस, स्थावर, जीवों का घात करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है और सचेतन एवं अचेतन परिग्रहों का संचय भी करता है।[296]

परिग्रह की सत्ता, असत्ता में हिंसा, अहिंसा :- सचित्त और अचित्त दोनों प्रकार के परिग्रहों का छोड़ना अहिंसा है, दोनो प्रकार के परिग्रहों का ग्रहण करना हिंसा है। अन्तरङ्.ग परिग्रहों मे हिंसा के पर्याय होने से हिंसा सिद्ध है। बहिरग प्ररिग्रहों मे तो नियम से मूर्छा ही हिंसापने को सिद्ध करती है।[297] मिथ्यात्व, पुंवेद, स्त्रीवेद, नपुसक वेद, तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा - ये छह दोष तथा चार कषाय - ये चौदह आभ्यन्तर परिग्रह हैं।

---

[292] तत्वार्थवार्तिक 7/15
[293] पुरुषार्थ सिदध्युपाय 9/105
[294] वही 108-109
[295] वही 110
[296] तत्वार्थवार्तिक 7/16
[297] पुरुषार्थ सिदध्युपाय 118-119

बाह्य परिग्रह के अचेतन और सचेतन दो भेद हैं। यह दोनों प्रकार का परिग्रह कभी भी हिंसा का अतिवर्तन नहीं करता है।[298]

अन्तरङ.ग परिग्रह मिथ्यात्व और कषायभाव हैं, वे तो स्वयं हिंसास्वरूप ही हैं, कारण हिंसा उसे ही कहते है, जहाँ प्रमाद योग से प्राणों का अपहरण हो। जहाँ कषायभाव है या मिथ्यात्व है, वहाँ आत्मा के शुद्ध भावों का नाश एवं प्रमाद परिणाम है, इसलिए अन्तरंग परिग्रह तो स्वयं हिंसा स्वरूप है। बहिरंग परिग्रह स्वयं हिंसा रूप नहीं है, किन्तु उनमें ममत्वपरिणाम होता है, इसलिए वे हिंसा जनक हैं यह भाव हिंसा का निरूपण है। बहिरंग परिग्रह से होने वाली द्रव्यहिंसा को दृष्टि में लेने से द्रव्यहिसा भी उनसे नियमित है। इसलिए वास्तव में हिंसास्वरूप, हिंसा का उत्पादक, हिंसा का फल, हिंसा का कारण परिग्रह ही है। यदि उसका सम्बन्ध छोड़ दिया जाय तो फिर न कभी किसी निमित्त से ममत्वपरिणाम उत्पन्न हों, न किसी प्रकार का आरम्भ हो और न आत्मीय परिणाम ही विकार रूप धारण करें।[299]

प्रश्न- यदि ऐसा है अर्थात् बहिरंग परिग्रहों में मूर्च्छा का उत्पन्न होना ही हिंसा है तो बिल्ली और हरिण के बच्चे आदि के विषय में कुछ विशेष नहीं होगा। हरे तृणों के अकुरो को चरने वाले मृग के बच्चे में मंद मूर्छा होती है मूषों के समूह को नष्ट करने वाली बिल्ली में वही मूर्च्छा तीव्र होती है। कारण विशेष से कार्य विशेष निश्चय से निर्बाध रीति से सिद्ध होता है। दूध में मधुरता मन्द और खाँड में अधिक है।[300]

परिग्रह ही सब दोषों का मूल कारण है :- भट्ट अकलंक देव ने कहा है कि परिग्रह समस्त दोषों का मूल कारण है। "यह मेरा है", ऐसा संकल्प होने पर उसके रक्षण आदि की व्यवस्था करनी होती है और उसमें हिंसा अवश्यंभाविनी है, उस परिग्रह के लिए झूठ भी बोलता है, चोरी करता है, मैथुन कर्म में भी प्रयत्न करता है अर्थात् परिग्रहाभिलाषी सर्व कुकर्म करता है।

[298] पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 116-117

[299] वही 119 प० मक्खनलाल जी कृत टीका

[300] वही 120-123

इस परिग्रह के ममत्व के कारण नरकादि में अनेक प्रकार के दु ख भोगता है। इस लोक में भी निरन्तर दु:ख रूपी महासमुद्र में अवगाहन करता है।[301]

सब व्रतों में अहिंसा प्रधान है :- सत्य आदि सर्व व्रतों के परिपालन में कारण होने से अहिसा व्रत सर्व व्रतों में प्रधान कारण है। सत्यादि व्रत बाड़ के समान हैं और अहिंसा धान्य के समान है। जैसे - धान्य की रक्षा के लिए खेत के चारों ओर बाड़ लगा दी जाती है, उसी प्रकार सत्यादि सर्व व्रत चारों ओर से अहिंसा रूपी धान्य की रक्षा करने वाले हैं।[302]

अहिंसा की प्रशंसा :- समस्त मतों के समस्त शास्त्रों में यही सुना जाता है कि अहिंसा लक्षण तो धर्म है और इसका प्रतिपक्ष हिंसा करना पाप है।[303] अहिसा ही जगत् की माता है, अहिंसा ही आनन्द की पद्धति है, अहिंसा ही उत्तम गति और शाश्वती लक्ष्मी है।[304] तप श्रुत यम (महाव्रत) ज्ञान, ध्यान और दान करना तथा सत्यशील व्रतादिक जितने कार्य हैं, उन सबकी माता एक अहिंसा ही है।[305] यह अहिसा की अकेली जीवो को जो सुख, कल्याण व अभ्युदय देती है, वह तप, स्वाध्याय और यम नियमादि नहीं दे सकते हैं।[306] अहिसा जीवों की माता के समान रक्षा करने वाली है और स्त्री के समान चित्त को आनन्द देने वाली है तथा सदुपदेश देने के लिए सरस्वती के समान है।[307] जिनका चित्त दयालु है, उन पुरुषों को जो सम्पदा होती है, उसका वर्णन चिरकाल तक सरस्वती भी नहीं कर सकती।[308] जिस महापुरुष ने जीवों की प्रीति का आश्रय लेकर अभयदान दिया उस महात्मा ने कौन सा तप नहीं किया और कौन सा दान नही दिया? मनुष्यो के हृदय में जैसे-जैसे करुणाभाव स्थिरता को प्राप्त करता है, वैसे वैसे विवेक रूपी लक्ष्मी उससे परम प्रीति प्रकट करती रहती है।[309] जिस प्रकार ज्योतिश्चक्र मे प्रधान स्वामी चन्द्रमा है

---

[301] तत्वार्थवार्तिक 7/17

[302] वही 7/1/6

[303] ज्ञानार्णव 8/31

[304] वही 8/32

[305] वही 8/42

[306] वही 8/47

[307] वही 8/50

[308] वही 8/53

[309] वही 8/54-55

तथा देवों में इन्द्र, ग्रहों में सूर्य, वृक्षों में कल्पवृक्ष, जलाशयों में समुद्र, पर्वतों में मेरु और देवों में मुनियों के नाथ वीतरागदेव प्रधान हैं, उसी प्रकार शील और व्रतों में शमभाव, यम (महाव्रत) और तपों में अहिंसा प्रधान है।[310]

लोक सेवक को जो भेंटें मिलती हैं, वे उसकी निजी चीज कदापि नहीं हो सकतीं :-

महात्मा गाँधी ने अपने लोक जीवन की एक घटना का इस प्रकार वर्णन किया है :-

जब मैं हिन्दुस्तान लौटने लगा तो नैटाल के हिन्दुस्तानियो ने मुझे प्रेमामृत से नहला दिया। स्थान-स्थान पर अभिनन्दन पत्र दिए गए और हर एक जगह से कीमती चीजें नजर की गई। 1896 ई० में जब मैं देश आया था तब भी भेंटें मिली थीं, पर इस बार की भेंटों और सभाओं के दृश्यों से मैं घबराया। भेंट में सोने-चाँदी की चीजें तो थी हीं, पर हीरे की चीजें भी थीं।

इन सब चीजों को स्वीकार करने का मुझे क्या अधिकार हो सकता है? यदि मै इन्हे मजूर कर लूँ तो फिर अपने मन को यह कहकर कैसे मना सकता हूँ कि मैं पैसा लेकर लोगों की सेवा नहीं करता था। मेरे मवक्किलों की कुछ रकमों को छोड़कर बाकी चीजें मेरी लोक सेवा के उपलक्ष्य में दी गई थीं। पर मेरे मन में तो मवक्किल और दूसरे साथियों में कुछ भेद न था। मुख्य-मुख्य मुवक्किल सब सार्वजनिक काम में भी सहायता देते थे।

फिर उन भेंटों में एक पचास गिनी का हार कस्तूरबाई के लिए था। मगर उसे जो चीज मिली वह भी थी मेरी ही सेवा के उपलक्ष्य मे। अतएव उसे पृथक् नहीं मान सकते थे।

जिस शाम को इनमें से मुख्य मुख्य भेंटें मिलीं, वह रात मैंने एक पागल की तरह जागकर काटी। कमरे में यहाँ से वहाँ टहलता रहा, परन्तु गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी। सैकड़ों रुपयो की भेंटे न लेना भारी पड़ रहा था, पर ले लेना उससे भी भारी मालूम होता था।

मैं चाहे इन भेटों को पचा भी सकता, पर मेरे बालक और पत्नी उन्हें तालीम तो सेवा की मिल रही थी। सेवा का दाम नहीं लिया जा सकता था,

---

[310] वही 8/59

यह हमेशा समझाया जाता था। घर में कीमती जेवर आदि मैं नहीं रखता था। सादगी बढ़ती जाती थी। ऐसी अवस्था में सोने की घड़ियाँ कौन रखेगा? सोने की कण्ठी और हीरे की अँगूठी कौन पहनेगा? गहनों का मोह छोड़ने के लिए मैं उस समय भी औरों से कहता रहता था। अब इन गहनों और जवाहरात को लेकर मैं क्या करूँगा?

मैं जानता था कि धर्म पत्नी को समझाना मुश्किल पड़ेगा। मुझे विश्वास था कि बालकों को समझाने में जरा भी दिक्कत पेश नहीं आयेगी। अतः उन्हें वकील बनाने का निश्चय किया।

बच्चे तो तुरन्त समझ गए। वे बोले - "हमें इन गहनों से कुछ मतलब नहीं। ये सब चीजें हमें लौटा देनी चाहिए और यदि जरूरत होगी तो क्या खुद नहीं बना सकेंगे?''

मैं प्रसन्न हुआ। "तो तुम बा को समझाओगे न? मैंने पूछा। जरूर जरूर। वह वहाँ इन गहनों को पहनने चली हैं। वह रखना चाहेंगी भी तो हमारे ही लिए न। पर जब हमें ही इसकी जरूरत नहीं है तब फिर क्यों जिद करने लगीं?

परन्तु काम अन्दाज से ज्यादा मुश्किल साबित हुआ।

"तुम्हें चाहे जरूरत न हो और लड़को को भी न हो। बच्चों का क्या? जैसा समझा दें समझ जाते हैं। मुझे न पहनने दो, पर मेरी बहुओं को तो जरूरत होगी। और कौन कह सकता है कि कल क्या होगा? जो चीजें लोगों ने इतने प्रेम से दी है, उन्हे वापिस लौटाना ठीक नहीं।'' इस प्रकार वाग्धारा शुरू हुई और उसके साथ अश्रुधारा आ मिली। लड़के दृढ़ रहे और मैं भला क्यों डिगने लगा?

मैंने धीरे से कहा, पहले लड़कों की शादी तो हो लेने दो। हम बचपन में तो इनके विवाह चाहते ही नही है। बड़े होने पर जो जी चाहे सो करें। फिर हमे क्या गहनो और कपड़ो की शौकीन बहुयें खोजनी है? फिर भी अगर कुछ बनवाना ही होगा तो मैं कहाँ चला गया हूँ?''

"हाँ जानती हूँ तुमको। वही न हो जिन्होंने मेरे गहने उतरवा लिए हैं। लड़कों को तो अभी से वैरागी बना रहे हो। इन गहनों को मैं वापस नहीं दूँगी

और फिर मेरे हार पर तुम्हारा क्या हक है?" "पर यह हार तुम्हारी सेवा के खातिर मिला है या मेरी" मैंने पूछा।

"जैसा भी हो तुम्हारी सेवा मे क्या मेरी सेवा नहीं है? मुझसे जो रात दिन मजूरी कराते हो, क्या वह सेवा नहीं है? मुझे रुला रुलाकर जो ऐरे गैरे को घर में रखा और मुझसे सेवा टहल कराई, वह भी कुछ नहीं"

ये सब बाण तीखे थे। कितने ही तो मुझे चुभ रहे थे। पर गहने वापस लौटाने का मैं निश्चय कर चुका था। अन्त मे बहुतेरी बातों में जैसे तैसा सम्मति प्राप्त कर सका। 1896 और 1901 में मिली भेंटें लौटाईं। उनका ट्रस्ट बनाया गया और लोक सेवा के लिए उसका उपयोग मेरी अथवा ट्रस्टियों की इच्छा के अनुसार होने की शर्त पर वह रकम बैंक में रखी गई। इन चीजों को बेचने के निमित्त से मैं अनेक बार रुपया एकत्र कर सका हूँ। आपत्ति कोष में वह रकम आज भी मौजूद है और उसमें वृद्धि होती जाती है।

इस बात के लिए मुझे कभी पश्चाताप नहीं हुआ। आगे चलकर कस्तूरबाई को भी उसका और औचित्य जँचने लगा। इस तरह हम अपने जीवन में बहुतेरे लालचों से बच गए हैं।

मेरा यह निश्चित मत हो गया है कि लोक सेवक को जो भेंटें मिलती है, वे उसकी निजी चीज कदापि नहीं हो सकतीं।[311]

अहिंसा गाँधी जी की दृष्टि मे :- महात्मा गाँधी ने अहिंसा के विषय में अपने विचार निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त किये हैं:-

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ होता है - "न मारना।" किन्तु मेरे लेख में उसका अर्थ बहुत व्यापक है। यदि मैं उसका अर्थ केवल "न मारना" करता तो यह शब्द जिन ऊँचे, अनन्त ऊँचे मनोमय लोक तक ले जाता है, उस तक मैं कभी न पहुँच पाता।" अहिसा का वास्तव में यह अर्थ है कि आप किसी का मन न दुखाये। जो अपने को अपका शत्रु मानता है, उसके बारे मे कोई अनुदार विचार मन मे न रखे। इसी बात मे जो सावधानी है, कृपया उस पर ध्यान दें। मैंने "आप जिसे शत्रु समझते है", नहीं कहा, "जो आपको अपना शत्रु समझता है", कहा है। क्योंकि जो व्यक्ति अहिंसा के सिद्धान्त का पालन

---

[311] गाँधी सस्मरण और विचार, पृ 23-24

करता है, उसके लिए तो किसी को अपना शत्रु मानने की गुंजाइश ही नहीं है - वह शत्रु का अस्तित्व मानता ही नहीं है। किन्तु ऐसे लोग हो सकते हैं जो उसे अपना शत्रु मानें; इसमें तो उसका कोई वश नहीं है। इसलिए इस बात पर जोर दिया गया है कि ऐसे व्यक्तियों के प्रति भी कोई दुर्भावना न रखी जाय। यदि हम घूँसे का जवाब घूँसे से देते हैं तो अहिंसा के सिद्धान्त से च्युत हो जाते हैं। मैं तो इससे भी आगे आता हूँ। यदि हम किसी मित्र अथवा तथाकथित किसी शत्रु के किसी काम पर आक्रोश भी करते हैं तो इस सिद्धान्त पर खरे नहीं उतरते। किन्तु जब मैं यह कहता हूँ कि हमें आक्रोश नहीं करना चाहिए तो उसका यह अर्थ नहीं है कि हमें (किसी गलत बात के आगे) सिर झुकाकर रह जाना चाहिए। आक्रोश न करने से मेरा तात्पर्य यह है कि हम ऐसी इच्छा न करें कि हमारे अथवा किसी और के काम के जरिए या कहिए दैवीय सत्ता के द्वारा भी शत्रु को नुकसान पहुँचे या वह हमारे मार्ग से हटा दिया जाय। यदि ऐसा ख्याल भी हमारे मन में हो तो हम अहिंसा के सिद्धान्त से हटते हैं।

उसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम इस सिद्धान्त का पूर्ण रूप से पालन कर लेते हैं। यह आदर्श है, हमें इस तक पहुँचना है। यह ऐसा आदर्श है, जिसे यदि हममें वैसी शक्ति हो तो हमें इसी क्षण प्राप्त करना है। किन्तु यह रेखागणित का कोई साध्य नहीं है, जिसे हम रट लें। न यह गणित के कठिन प्रश्न को हल करना है - यह इनको हल करने से कई गुनी कठिन बात है। गणित के कठिन प्रश्नो को हल करने में आपमें से अनेक आधी-आधी रात तक जागे हैं। किन्तु इस आदर्श को अपने जीवन में उतारने के लिए इतने से काम नहीं चलेगा। आपको अनेक रातें जागकर काटनी होंगी, मनोमथन और अन्तर्वेदना के जाने कितने प्रसंगों से गुजरना होगा, और तब कहीं आप इस आदर्श तक या यह कहना ठीक होगा कि इस आदर्श के समीप पहुँच सकेंगे। इस सिद्धान्त पर मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कहूँगा कि जो व्यक्ति इस सिद्धान्त की प्रभावकारी शक्ति में विश्वास रखता है, वह अपनी मंजिल के एकदम समीप आते-आते समस्त संसार को अपने चरणों के समीप खड़ा पाएगा। यह नहीं कि वह सारे संसार को अपने पावों पर पड़ा हुआ देखना चाहता है, किन्तु यह फल है अवश्यंभावी। यदि आप अपना प्रेम,

अपनी अहिसा वृत्ति इस प्रकार व्यक्त करें कि उसकी आपके कथित शत्रु पर अमिट छाप पड़ सके तो वह भी प्रेम से देगा।

इसी से दूसरा विचार यह निकलता है कि इस सिद्धान्त में संगठित रूप से की गई हिंसा की, हत्याओं की, फिर वे लुप-छिपकर नहीं दिन दहाड़े ही क्यों न की जायँ, गुंजाइश नहीं है और फिर अपने देश के लिए हिंसा का कोई स्थान नहीं है। ऐसी मान रक्षा कोई मान रक्षा भी नहीं है। अहिंसा का यह सिद्धान्त कहता है कि जो व्यक्ति ऐसा अनाचार करता है, हम अपने आपको उसके हाथों में सौंपकर अपने आश्रितों के मान की रक्षा करें और इसके लिए हाथापायी से अधिक शारीरिक और मानसिक साहस की जरूरत है। सम्भव है आपमें कुछ शारीरिक और मानसिक शक्ति हो- साहस मैं नही कहूँगा - और आप उस शक्ति का प्रयोग भी करें, किन्तु उस शक्ति के चुक जाने पर क्या होगा? सामने वाला व्यक्ति क्रोध या आवेश से भरा होता है, उसकी हिसा का मुकाबला हिंसा के द्वारा करके आप रोष को और अधिक बढ़ा देते है, वह आपको मौत के घाट उतारकर आपके आश्रितों पर टूट पड़ता है और शेष क्रोध इस प्रकार शान्त करता है। किन्तु यदि आप द्रव्याक्रमण न करें, अपने आश्रितो और प्रतिद्वन्दी के बीच दृढ़ता से खड़े रहें, वह जो वार करता है, उस का प्रत्युत्तर दिये बिना उन्हें सहते रहें तो क्या होगा? मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि उसकी सारी हिंसा आप पर बरस कर चुक जायगी और आपके आश्रित अक्षत रहेंगे। जीवन की इस पद्धति मे देश भक्ति की वह कल्पना भी नहीं है, जिसके बल पर आज यूरोप में होने वाले युद्धो का समर्थन किया जाता है।[312]

महात्मा गाँधी का अहिंसा पर दृढ़ विश्वास था। एक बार विलायत मे उन्हें पसली के वरम की शिकायत हो गयी। उस समय वे भोजन में मूँगफली, कच्चे और पक्के केले, नींबू, जैतून का तेल, टमाटर, अंगूर इत्यादि वस्तुये लेते थे। दूध, अनाज, दाल बगैरह बिलकुल नहीं लेते थे। उनकी देखभाल जीवराज मेहता करते थे। उन्होने गांधी जी को दूध और अनाज लेने पर बड़ा जोर दिया। इसकी शिकायत गोखले तक पहुँची। गोखले के आग्रह को न मानना गांधी जी के लिए कठिन था। उनके दूध त्याग में धर्म भावना की प्रधानता

---

[312] गाँधी : संस्मरण और विचार, पृ० 64-265

थी। कलकत्ता में गाय-भैंस का दूध जिन घातक विधियों के द्वारा निकाला जाता है, उसका दृश्य उनके सामने था। इसलिए उन्होंने दूध त्याग का दृढ़ निश्चय किया। गोखले ने उन्हें डाक्टर की सलाह मानने के लिए कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि दूध की बनी चीजें तथा मांस नहीं लूँगा। इनके न लेने से यदि मौत भी आती हो तो उसका स्वागत कर लेना उन्होंने धर्म माना। गोखले ने उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति देखकर उनकी बात मान ली।

गांधी जी टालस्टाय की "ब्रेड लेबर" वाली बात मानते थे। ब्रेड लेबर का सीधा अर्थ है कि जो शरीर खफाकर मजदूरी नहीं करता उसे खाने का अधिकार नहीं है। हम भोजन के मूल्य के बराबर मजदूरी कर डालें तो जो गरीबी दिखाई देती है, वह दूर हो जाय। एक आलसी दो भूखों को मारता है; क्योंकि उसका काम दूसरों को करना पड़ता है। टालस्टाय ने कहा कि लोग परोपकार करने के लिए प्रयत्न करते हैं, उसके लिए पैसे खरचते हैं। परन्तु ऐसा न करके थोड़ा सा ही काम करें और दूसरों के कन्धे पर से नीचे उतर जायें, बस यही काफी है और यही सच्ची बात है। यह नम्रता का वचन है। करें तो परोपकार और ऐशो-आराम लेशमात्र भी न छोड़ें यह तो ऐसा ही हुआ जैसे निहाय की चोरी और सुई का दान।

गाँधी जी टालस्टाय से विशेष प्रभावित थे टालस्टाय का मानना था कि शरीर बल की अपेक्षा आत्मबल अधिक शक्तिशाली होता है। यही सब धर्मो का सार है। संसार से दुष्टता मिटाने का यही मार्ग है कि बुरे के साथ बुराई के बदले भलाई करें। दुष्टता अधर्म है। अधर्म का इलाज अधर्म नहीं हो सकता, धर्म ही हो सकता है। धर्म में तो दया का ही स्थान है। धर्मी व्यक्ति अपने शत्रु का भी बुरा नहीं चाहता, अतः धर्म पालन करते रहना इष्ट है तो नेकी ही करना चाहिए।

मांसाहार से गांधी जी तथा उनकी पत्नी कस्तूरबा को बहुत घृणा थी। एक बार कस्तूरबा बीमार पड़ी। डाक्टर जानते थे कि गांधी जी से बिना पूछे कस्तूरबा को शराब या मास दवा मे अथवा भोजन मे नहीं दिया जा सकता। उन्होने गाधी जी को जोहन्सबर्ग टेलीफोन किया, आपकी पत्नी को मांस का शोरबा और "बीफ टी" देने की जरूरत समझता हूँ। मुझे इजाजत दीजिए।

गांधी जी ने उत्तर दिया "बीमार से मैं ऐसी बातें नहीं पूछना चाहता। आप खुद ही यहाँ आ जाइए। जो चीज मैं बताता हूँ, उसके खाने की इजाजत यदि आप न दें तो मैं आपकी जिन्दगी के लिए जिम्मेदार नहीं हूँ।"

यह सुनकर गांधी जी उसी दिन डरबन रवाना हुए। डाक्टर से मिलने पर उन्होंने कहा - "मैंने तो शोरबा पिलाकर आपको टेलीफोन किया था।" गांधी जी ने कहा- डाक्टर, यह तो विश्वासघात है।"

"इलाज करते वक्त मैं दगा-बगा कुछ नहीं समझता। हम डाक्टर लोग ऐसे समय बीमार को व उसके रिश्तेदार को धोखा देना पुण्य समझते हैं। हमारा धर्म तो है- "जिस तरह हो सके रोगी को बचाना।" डाक्टर ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर गांधी जी को बहुत दु:ख हुआ, किन्तु उन्होंने शान्ति धारण की। डाकटर से पुन: कहने पर उसने स्पष्ट कर दिया कि मैं जो उचित समझूँगा, दवा में दूँगा, यदि आपको मंजूर न हो तो अपनी पत्नी को घर ले जाइए। गांधी जी ने कस्तूरबा से पूछा। उन्होंने उत्तर दिया- "मैं मांस का शोरबा नहीं लूँगी। यह मनुष्य देह को मैं भ्रष्ट न होने दूँगी।"

गांधी जी ने उन्हें बहुत समझाया कि तुम मेरे विचारों के अनुसार चलने को बाध्य नहीं हो, परन्तु वे अपनी बात से बिलकुल नहीं डिगीं और मुझसे कहा- मुझे यहाँ से ले चलो। यह देखकर गांधी जी बहुत प्रसन्न हुए। वे बा को फिनिक्स ट्रैन से ले जाने लगे। फिनिक्स में एक स्वामी जी ने मासाहार की निर्दोषता पर एक व्याख्यान झाड़ा। मनुस्मृति के श्लोक सुनाए, किन्तु कस्तूरबा के सामने उनकी एक न चली। उन्होंने स्वामी जी से स्पष्ट कह दिया कि मैं मांस का शोरबा खाकर चंगी होना नहीं चाहती।

गांधी जी की अहिंसा वीरों की अहिंसा थी। उनका कहना था कि जहाँ चुनाव सिर्फ कायरता और हिंसा के बीच करना हो, वहाँ मैं हिंसा को ही चुनने की सलाह दूँगा। एक बार उनके बड़े लड़के ने उनसे पूछा कि 1908 में उन पर घातक हमला किया गया था, उस समय मौके पर यदि वह मौजूद होता तो उसका क्या कर्तव्य था? मेरी हत्या होते देखना और भाग निकलना या अपनी शारीरिक शक्ति का उपयोग करके मुझे बचाना गांधी जी ने उत्तर दिया कि उस हालत में हिंसा करके मेरी रक्षा करना उसका कर्त्तव्य था।

गांधी जी के विचारों के अनुसार अहिंसा हिंसा से लाख दर्जे अच्छी चीज है। क्षमाशीलता मे दण्ड देने की अपेक्षा अधिक पौरुष है। कहा भी है - "क्षमा वीरस्य भूषणम्।'' अर्थात क्षमा वीरों का भूषण है। लेकिन अपना हाथ रोके रखने में क्षमाशीलता तभी है, जब उस व्यक्ति में दण्ड देने की शक्ति हो। दीन और असहाय व्यक्ति की क्षमा निरर्थक है। यदि कोई चूहा किसी बिल्ली को अपने शरीर के चिथड़े कर लेने दे तो उसका मतलब यह नहीं होगा कि उस चूंहे ने बिल्ली को क्षमा कर दिया। इसलिए जो लोग जनरल डायर और उनके अन्यायी साथियों को सजा देने की आवाज उठाते हैं, उनकी भावना को गाधी जी समझते थे। यदि उनका वश चले तो जनरल डायर के चिथड़े कर देते। किन्तु वे नहीं मानते थे कि भारत दीन और असहाय है। वे इतना ही चाहते थे कि भारत की और उनकी इच्छा शक्ति का उपयोग एक बड़े उद्देश्य के लिए हो।

गांधी जी ने अपने एक प्रसिद्ध लेख खड्ग बल का सिद्धान्त मे कहा था :-

मै स्वप्नदर्शी नही हूँ। मै एक व्यावहारिक आदर्शवादी होने का दावा करता हूँ। अहिंसा धर्म केवल ऋषियो और सन्तो के लिए ही नही है। यह उत्तम लोगों के लिए भी है। जैसे पशु जगत् का नियम हिंसा है, वैसे ही मनुष्य जाति का नियम अहिंसा है। पशु की आत्मा सोई रहती है और वह शारीरिक बल के अलावा और कोई नियम नही जानता। लेकिन मनुष्य का गौरव एक उच्चतर नियम-आत्मा की शक्ति के निर्देश पर चलने में है।

इसलिए मैंने भारत के सामने आत्म बलिदान के प्राचीन नियम को रखने का साहस किया है। सत्याग्रह और उसकी शाखायें- अर्थात् असहयोग और सविनय अवज्ञा ये सब और कुछ नहीं, कष्ट सहने के नियम के ही नये-नये नाम है। जिन ऋषियो ने पूर्ण हिसा के बीच अहिंसा के नियम को खोज निकाला, वे न्यूटन से अधिक मेधावान् थे। वे अग्रेज जनरल वेलिग्टन (जिसने नेपोलियन को पराजित किया था।) से भी बड़े योद्धा थे। वे स्वय शस्त्र प्रयोग मे निष्णात थे। अत: उन्होने उसकी निरर्थकता समझी और इसलिए थके हारे संसार को उन्होंने सिखाया कि उसकी मुक्ति का मार्ग हिसा नही अहिसा है।

सक्रिय अहिंसा का मतलब है - स्वेच्छा से कष्ट सहन। इसका मतलब अन्याय की इच्छा के आगे दीनतापूर्वक झुक जाना नहीं है। इसका मतलब तो अपनी आत्मा की समस्त शक्ति से अत्याचारी का विरोध करना है। हमारे अस्तित्व को सार्थक बनाने वाले इस नियम का अनुसरण करके कोई व्यक्ति अकेला भी अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी रक्षा करने के लिए एक अन्यायी साम्राज्य की समस्त शक्ति को चुनौती दे सकता है और उस सम्राज्य के पतन या पुनरुद्धार का कारण बन सकता है।

यथार्थ में गाधी एक अध्यात्मवादी सन्त थे। उन्होंने इस अध्यात्मवाद की जड़ अहिसा में देखी थी। अहिंसा को उन्होंने सब क्षेत्रों में अपनाया। उसका प्रयोग उन्होने राजनीति में भी किया और सफल हुए। बापू को नरसी मेहता का "वैष्णव जन तो तेने कहिए, जो पीड़ पराई जानेरे" भजन अत्यन्त प्रिय था, जिसमे सेवाभाव की बात कही गई है। सेवा की यह भावना अन्य धर्मों का भी केन्द्र बिन्दु रही है। कुरान मे यह बात बार-बार कही गई है कि "मेरे बंदो की खिदमत मे ही मेरी इबादत है। ईसामसीह ने "सर्मन ऑन दि माउण्ट" मे कहा है, यदि तुम मेरे लोगों की सेवा करते हो तो मेरी ही सेवा करते हो। विभिन्न धर्मो के बीच इसी समानता को देखकर बापू ने "हरिजन" पत्रिका 14 मई 1938 के अक मे लिखा था - कहा जाता है कि इस्लाम भाईचारे मे विश्वास करता है। लेकिन वह भाईचारा केवल मुस्लिमों का ही नहीं, बल्कि मानव मात्र का है। मुसलमानों का अल्लाह वही है, जो ईसाईयों का प्रभु और हिन्दुओ का ईश्वर। जैसे हिन्दू धर्म मे ईश्वर के अनेक नाम हैं, वैसे ही इस्लाम मे भी हैं। ईश्वर में विश्वास का अर्थ है - मानवमात्र के भ्रातृत्व को स्वीकार करना। महाभारत मे कहा है :-

अहिसार्थाय भूताना धर्मप्रवचनम् कृतम्।

य: स्यादहिसया युक्त स धर्म इति निश्चय:।।

अथात् जिस कार्य से दूसरो का कल्याण होता हो और किसी को कष्ट न पहुँचता हो, वही धर्म है।

गाँधी जी के जीवन का एक प्रेरक प्रसंग :- महात्मा गांधी ने अपने बचपन का एक सस्मरण लिखा है-

सिगरेट के टुकड़े चुराने तथा उसके लिए नौकर के पैसे चुराने से बढ़कर चोरी का एक दोष मुझसे हुआ है और उसे मैं इससे ज्यादा गम्भीर समझता हूँ। बीड़ी का चस्का तब लगा जब मेरी उम्र 12-13 साल की होगी। शायद इससे भी कम हो। दूसरी चोरी के समय 15 वर्ष की रही होगी। यह चोरी थी मेरे मांसाहारी भाई के सोने के कड़े के टुकड़े की। उन्होंने 250 रू० के लगभग कर्जा कर रखा था। हम दोनों भाई इस सोच में पड़े कि यह चुकावें किस तरह। मेरे भाई के हाथ में सोने का एक ठोस कड़ा था। उसमें से एक तोला काटना कठिन न था।

कड़ा कटा। कर्ज चुका, पर मेरे लिए यह घटना असह्य हो गई। आगे से कदापि चोरी न करने का मैंने निश्चय किया। मन में आया कि पिता जी के सामने जाकर चोरी कबूल कर लूँ। पर उनके सामने मुँह खुलना मुश्किल था। यह डर तो न था कि पिता जी खुद मुझे पीटने लगेंगे; क्योंकि मुझे याद नहीं पड़ता कि उन्होंने हम भाईयों में से किसी को पीटा हो। पर यह खटका जरूर था कि यह खुद बड़ा सन्ताप करेंगे, शायद अपना सिर भी पीट लें। फिर भी मैंने मन में कहा - "यह जोखिम उठाकर भी अपनी बुराई कबूल कर लेनी चाहिए, इसके बिना शुद्धि नहीं हो सकती।

अन्त में मैंने यह निश्चय किया कि चिट्ठी लिखकर अपना दोष स्वीकार कर लूँ। मैंने चिट्ठी लिखकर खुद ही उन्हें दी। चिट्ठी में सारा दोष कबूल किया था और उसके लिए सजा चाही थी। आजिजी के साथ यह प्रार्थना की थी कि आगे मैं कभी ऐसा नहीं करूँगा।

पिता जी को चिट्ठी देते हुए मेरे हाथ कांप रहे थे। उस समय वह भगंदर की बीमारी से पीड़ित थे। अतः खटिया के बजाय लकड़ी के तखतों पर उनका बिछौना रहता था। उनके सामने जाकर बैठ गया।

उन्होंने चिट्ठी पढ़ी। आँखों से मोती के बूंद टपकने लगे। चिट्ठी भीग गई। थोड़ी देर के लिए उन्होंने आँखे मूँद लीं। चिट्ठी फाड़ डाली। चिट्ठी पढ़ने को जो वह उठ बैठे थे सो फिर लेट गए। मैं भी रोया। पिता जी के दुःख को अनुभव किया। यदि मैं चितेरा होता तो आज भी उस चित्र को हूबहू खींच सकता। मेरी आँखों के सामने आज भी वह दृश्य ज्यों का त्यों दिखाई दे

रहा है। इस मोती-बिन्दु के प्रेमबाण ने मुझे बींध डाला। मैं शुद्ध हो गया। इस प्रेम को तो वही जान सकता है, जिसे उसका अनुभव हुआ है।

रामबाण वाग्यारे होय ते जाणे।[313]

मेरे लिए यह अहिंसा का पाठ था। उस समय तो मुझे इसमें पितृ वात्सल्य से अधिक कुछ न दिखाई दिया, पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा के नामसे पहचान सकता हूँ। ऐसी अहिंसा जब व्यापक रूप ग्रहण करती है, तब उसके स्पर्श से कौन अलिप्त रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसा को नापना असंभव है।

ऐसी शांतिमय क्षमा पिता जी के स्वभाव के प्रतिकूल थी। मैने तो यह अन्दाज किया था कि वह गुस्सा होगे, सख्त वचन कहेंगे, शायद अपना सिर भी पीट लें। पर उन्होंने तो असीम शान्ति का परिचय दिया। मैं मानता हूँ कि वह अपने दोष को शुद्ध हृदय से मंजूर करने का परिणाम था।

जो मनुष्य अधिकारी व्यक्ति के सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदय से कह देता है और फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा करता है, वह मानों शुद्धतम प्रायश्चित करता है। मैं जानता हूँ, मेरी इस दोष स्वीकृति से पिता जी मेरे सम्बन्ध मे नि:शंक हो गंए और उनका महाप्रेम मेरे प्रति और भी बढ़ गया।[314]

अस्तेय के विषय में गांधी जी की अवधारणा :- अस्तेय के सम्बन्ध में गांधी जी ने अन्यत्र लिखा है- मैं कहना चाहता हूँ कि हम (सब) एक अर्थ में चोर हैं। जिस चीज की मुझे तत्काल जरूरत नहीं है अगर मैं उसे लेकर रख लेता हूँ तो किसी को उससे वंचित कर रहा हूँ। मैं यह कहने का साहस करूँगा कि यह प्रकृति पर्याप्त चीजें पैदा करती है और यदि हम जितना आवश्यक है, अपने लिए केवल उतना ही लिया करें तो संसार में दारिद्रय हो ही नहीं, कोई आदमी यहाँ भूखा न मरे। किन्तु जब तक विषमता है तब तक (समझ लीजिए) चोरी चल रही है। मै समाजवादी नहीं हूँ और जिनके पास जायदाद आदि है, उनसे छीन नहीं लेना चाहता। तथापि मैं यह अवश्य कहना

---

[313] प्रेम बाण से जो बिंधा हो, वही उसके प्रभाव को जानता है।

[314] गांधी संस्मरण और विचार, पृ० 18-19

चाहता हूँ कि जो अँधेरे में उजाला देखना चाहते हैं। उन्हें व्यक्तिगत रूप से यह नियम मानना चाहिए। मैं किसी का कुछ छीनना नहीं चाहता। वह तो अहिंसा व्रत से च्युत होना कहलाएगा। यदि मुझसे किसी के पास ज्यादा है तो हो, किन्तु जहाँ तक मेरे जीवन के अनुशासन का सम्बन्ध है, मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि मुझे जितने की जरूरत है, मुझसे उससे कुछ भी ज्यादा रखने की हिम्मत नहीं है। भारत मे तीन करोड़ लोगो को आज से बेहतर खाना और कपड़ा नहीं मिलता तब तक तीन करोड़ लोगों को बेहतर खाना और कपड़ा नहीं मिलता तब तक आपको और मुझे, सच कहें तो, किसी चीज पर कोई हक नहीं है। हम लोगो को वस्तुस्थिति का अधिक ज्ञान है, इसलिए हमें अपनी जरूरतो मे काट-छाँट करनी चाहिए। यहाँ तक कि स्वेच्छा से भूख सहन करनी चाहिए ताकि इन लोगों को भोजन और कपड़ा मिल सके, उनका पोषण हो सके।[315]

हिंसा में आनन्द मानने वाले के रौद्रध्यान :- क्रूर आशय वाले प्राणि को रुद्र कहा है। उस रुद्र प्राणी के कार्य अथवा उसके भाव (परिणाम) को रौद्र कहते हैं। जीवों के समूह को अपने से अथवा अन्य के द्वारा मारे जाने पर, पीड़ित किए जाने पर तथा ध्वंस करने पर और घातने के सम्बन्ध मिलाए जाने पर जो हर्ष मनाया जाय उसे हिंसानन्द नामक रौद्रध्यान कहते है।

जो पुरुष निरन्तर निर्दय स्वभाव वाला हो तथा स्वाभाव से ही क्रोधकषाय से प्रज्वलित हो तथा मद से उद्धत हो, जिसकी बुद्धि पाप रूप हो तथा जो कुशील हो, व्यभिचारी हो, नास्तिक हो, वह रौद्रध्यान का घर है अर्थात् ऐसे पुरुष मे रौद्रध्यान बसता है। जीवों के हिंसाकर्म मे प्रवीणता हो, पापोपदेश में निपुणता हो, नास्तिक मत मे चातुर्य हो, जीव घातने में निरंतर प्रीति हो तथा निर्दयी पुरुषो की निरुतर सगति हो, स्वाभाव से ही क्रूरता हो, दुष्टभाव हो, उसके रौद्रध्यान होता है। इस जगह जीवों का घात किस उपाय से हो, यहाँ घात करने मे कौन मारा जायगा? इन जीवो को मारकर, बलि देकर कीर्ति और शान्ति के लिए द्विज, गुरु और देवो की पूजा करूँगा, इत्यादि प्रकार से हिंसा करने में जो आनन्द हो, उसे रौद्रध्यान कहते है।

---

[315] वही पृ० 266

नभश्चर पक्षी, जलचर मत्स्यादिक और स्थलचर पशु इन जीवों का खण्ड करने, दग्ध करने, बाँधने, छेदने, घातने आदि में यत्न करना तथा इनके चर्म, नख, हाथ, नेत्रादिक के नष्ट करने में जो कौतूहल रूप परिणाम हो, वही रौद्रध्यान है। युद्ध मे इसका घात हो और उसकी जीत हो, इस प्रकार स्मरण करे, उसे भी रौद्रध्यान कहा है। जीवो के वध, बन्धनादिक तीव्र दु:ख व अपमान के देखने, सुनने व स्मरण करने में जो हर्ष होता है, वह भी रौद्रध्यान है। यह दु:ख रूपी अग्नि को ईन्धन के समान है।

इस पूर्वकाल के वैरी का अनेक प्रकार के घात से मै किस समय बदला लूँगा, ऐसी चिन्ता भी रौद्रध्यान है।[316]

कोई व्यक्ति यदि ऐसा विचार करे कि हम क्या करे? शक्ति न होने के कारण शत्रु अभी तक जीते हैं, नहीं तो कभी के मार डालते, अस्तु इस समय तो न सही, परलोक में समय और शक्ति को प्राप्त होकर किसी समय अवश्य मारेंगे, इस प्रकार सकल्प करना भी रौद्रध्यान है। जो अन्य का बुरा चाहे तथा पर को कष्ट, आपदा रूप बाणो से भेदा हुआ दु:खी देखकर सन्तुष्ट हो तथा गुणो से गरिष्ठ देख बथवा अन्य की सम्पदा देखकर द्वेषरूप हो अपने हृदय मे शल्यसहित हो वह निश्चित रूप से रौद्रध्यानी है। हिसा के उपकरण (शस्त्रादिक) का सग्रह करना, क्रूर जीवों पर अनुग्रह करना और निर्दयतादिक भाव रौद्रध्यान के धारियो के बाह्य चिह्न है।[317]

मद्यपान में हिंसा :- मद्य मन को मूर्छित कर देती है। मोहित चित्त वाला पुरुष धर्म को भूल जाता हे। धर्म को भूला हुआ जीव बिना किसी प्रकार की शका के हिसा का आचरण करता है।[318] मद्य बहुत से रस से उत्पन्न जीवो की योनि कही जाती है। अत: मद्य पीने वाले की हिसा अवश्य होती है।[319] अभिमान, भय, गलानि, हास्य, दु:ख, शोक, कामवासना, क्रोध आदि सभी हिंसा के पर्याय है। ये सभी मदिरा के निकटवर्ती है।[320] मद्य के पीने से मद्य में उत्पन्न होने वाले स्थावर और त्रस जीवो का घात होता है, इसलिए मद्य का

---

[316] **आचार्य शुभचन्द्र : ज्ञानार्णव 26/2-11**

[317] **ज्ञानार्णव 16/12-15**

[318] **पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 62**

[319] **वही 63**

[320] **वही 64**

परित्याग करना चाहिए। यदि मद्य में उत्पन्न होने वाले जीव फैलने लगें तो संसार को निश्चय से पूर्ण कर देंगे।[321]

तम्बाकू का सेवन मत कीजिए

तम्बाकू का सेवन आत्महिंसा या परहिंसा है; क्योंकि -

तम्बाकू एक मीठा जहर है। जिस प्रकार दीपक के तेल को जलाकर उसका काजल एकत्रित किया जाता है, उसी प्रकार अमेरिका के दो प्रोफेसर ग्रेहम और वाइन्डर ने तम्बाकू जलाकर उसके धुयें की स्याही एकत्रित की। उस तम्बाकू की स्याही को अनेक स्वस्थ चूहों के शरीर पर लगाया। परिणाम यह हुआ कि कितने चूहे तो तत्काल मर गए। अनेक चूहों का मरण दो चार मास बाद हुआ, जबकि अन्य अनेक चूहों को त्वचा का कैंसर हो गया और वे घुट-घुटकर मर गए। जिन चूहों को तम्बाकू की स्याही नहीं लगाई गई थी, वे स्वस्थ रहे।

तम्बाकू के धुयें में 43 रासायनिक पदार्थ ऐसे हैं, जिनसे मानव शरीर में कैंसर उत्पन्न हो सकता है। जब हम बीड़ी या सिगरेट पीते हैं तो तम्बाकू के जलने से निकोटीन धुये में बदल जाता है और उसके चारो ओर छोटे छोटे कण लग जाते हैं। ये कण धूम्रपान करने वालों की साँस की नली और फेफड़े के इर्द-गिर्द जमा हो जाते है और बाद में उसके रक्त में मिल जाते है। फेफड़ो के कैसर का मुख्य कारण तम्बाकू है। पुरानी खाँसी भी बीड़ी पीने के कारण होती है।

तम्बाकू मे मोनोआक्साइड होता है। यह रंगहीन और गंधहीन गैस होती है। ज्यादा सिगरेट पीने वाले और तम्बाकू का सेवन करने वालों को आक्सीजन ग्रहण करने में कठिनाई होती है और शरीर की रोगों से लड़ने वाली प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है।

तम्बाकू मे अत्यन्त खतरनाक रसायन "थार" होता है, जो शरीर के लिए अत्यन्त हानिप्रद है। निकोटीन रक्त के दबाव और दिल पर बुरी असर डालता है, जबकि थार रसायन तो कैसर जैसे रोगों का वाहक है। एक सिगरेट मे प्राय: 0.7 से 1.9 मिलीग्राम तक निकोटीन होता है और 13 से 21 मिलीग्राम

---

[321] धर्मसंग्रह श्रावकाचार 2/19-20

थार पाया जाता है। जबकि एक बीड़ी में 2.3 से 3.5 मिलीग्राम निकोटीन और 25 से 45 मिलीग्राम थार पाया जाता है।

तम्बाकू जनित पान मसाला निरन्तर खाते रहने से जबड़ों की स्पन्दनशीलता समाप्त हो जाती है और व्यक्ति तुतलाकर या हकलाकर बोलने के लिए मजबूर हो जाता है। यदि मुँह में छाले हैं अथवा मुँह के अन्दर फोड़ा हो जाता है तो इसकी तत्काल जाँच करानी चाहिए, अन्यथा यह छाला कैन्सर बन सकता है।

धूम्रपान के कारण पुरुषों के जननांगों की धमनियाँ (रक्त ले जाने वाली नलिकायें) सिकुड़ जाती हैं और इस कारण पुरुष नपुंसकता के शिकार हो जाते हैं। गर्भावस्था के दौरान धूम्रपान करने से बच्चा समय से पहले अथवा मरा हुआ पैदा होने का खतरा रहता है।

विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार तम्बाकू के कारण मौतें बढ़कर चार लाख तथा 2020 में 15 लाख होने की आशंका है।[322]

कोकाकोला में शराब

एक विदेशी लेखक मार्क पेंडरग्रास्ट ने अपने शोध के हवाले से कोकके ट्रेड सीक्रेट की अपनी किताब "फार गाड कंट्री एण्ड कोका कोला" में खुलासा किया है। पेन्डर ग्राण्ट के मुताबिक इसमें स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाने वाले अन्य रसायनों के साथ साथ शराब का भी इस्तेमाल होता है। पुस्तक के अनुसार कोका कोला में कैफीन, वैनिला, फलेवरिंग, एफई कोको, साइटिक एसिड, नींबू का रस, चीनी और पानी मिला होता है। ऐसे रसायनों से कार्बन डाई आक्साइड (कार्बोनेट वाटर) कैफीन, कोकीन, पोटेशियम बेंजोएट और दूसरे जहरीले रसायन शरीर में पहुँचते हैं। इससे आमाशय व अतड़ियो मे घाव, हड्डियो का गलना (आस्टोपेशिश), मोटापा, दाँत गिरना, हृदय रोग, गुर्दे में पथरी और कैफीन का नशेड़ी बना देने जैसे रोग हो सकते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार यूरोप और अमेरिका मे दाँतों का जल्दी गिरना इसी वजह से है। हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ० के०के० अग्रवाल कहते है कि इन्सुलिन

---

[322] जैन गजट 18 मई 2000 मे श्री महेन्द्र कुमार जैन का प्रकाशित लेख - तम्बाकू, पान, मसाला, गुटका जिन्दगी मे जहर घोलते है।

की कमी वाले लोगों में चीनी की अधिकता वाले साफ्ट ड्रिंक हृदय रोगों की आशंका बढ़ाते हैं।

कोकाकोला बनाने की विधि भी उस पुस्तक मे दर्शायी गई है, जो इस प्रकार है- कैफीन एसिड और नीबू के रस को एक क्यूविक उबलते हुए पानी में मिलाने के बाद उसके ठंडा होने पर उसमें वैनिला और फलेवर मिलाया जाता है और बाकी बचे रसों और अल्कोहल को उसमें मिलाकर चौबीस घण्टों के लिए छोड़ दिया जाता है। 24 घटे बाद कोक तैयार हो जाता है। माना जाता है कि इसमें चीनी नही होती। इसमें कैफीन और फासफोरिक एसिड के साथ साइट्रिक एसिड और कृत्रिम मिठास के लिए आस्पटेम, सेक्रीन और खराब होने से बचाने वाला सोडियम वेंजोमेंट होता है। एक आँकड़े के मुताबिक अमेरिका मे आस्परटेम के कारण 400 लोगों ने सरदर्द, सुस्ती, धुँधलेपन और झुरझुराहट की शिकायत की। वेस्टइंडीज में तो डाइट कोकाकोला पर "बच्चो के लिए नहीं है", चेतावनी तक छपी रहती है। इतना स्पष्ट होने के बाद भी कोकाकोला कम्पनी कोक बनाने के अपने फार्मूले को छिपाए हुए है।[323]

मधु भक्षण में अत्यन्त हिंसा :- लोक मे मधु का एक छोटा सा भी खण्ड बहुधा मक्खियो की हिसा का स्वरूप होता है। जो मूढ़ बुद्धि रखने वाला मधु का सेवन करता है, वह अत्यन्त हिसक होता है।[324] जो पुरुष मधु के छत्ते से अपने आप गिरे हुए अथवा छल से गिरे हुए मधु को ग्रहण करता है। वहाँ पर भी उसके आश्रयभूत प्राणियो के घात से हिंसा होती है।[325] मधु मक्खियो के अण्डो के निचोड़ने से पैदा हुए मधु का जो रज और वीर्य के मिश्रण के समान कलल आकृति वाला है, सज्जन पुरुष कैसे सेवन करते हैं? मधु का छत्ता व्याकुल शिशु के गर्भ की तरह है और अंण्डे से उत्पन्न होने वाले जन्तुओं के समुदाय वाला है।[326] उससे बहेलिए, शिकारी आदि जीविका करते है। उसमे माधुर्य कहाँ मे आया?[327] सात ग्रामो के जलाने के पाप के साथ भी

---

[323] क्रान्तिकारी सकेंत 25 नवम्बर 2000 ई०

[324] पुरुषार्थ सिद्धयुपाय 69

[325] वही 70

[326] यशस्तिलक चम्पू 6/279

[327] वही 6/280

मधु भक्षी के पाप की समानता नहीं है। अंजली में भरे जल के साथ समुद्र के जल की समानता कभी नहीं हो सकती है।[328] मधु का खाया हुआ एक कण भी बहुत काल से संचित किए पुण्य के पुंज को क्षणमात्र में नष्ट कर देता है। विषम वहि्न का एक कण क्या वृक्षों से व्याप्त वन को जला नहीं देता है? अर्थात् जला देता है। जो पुरुष औषधि की इच्छा से भी मधु को खाता है, वह भी शीघ्र उग्र दु:ख को पाता है। क्या जीने की इच्छा से खाया गया विष शीघ्र ही जीवन को नष्ट नहीं करता है? करता ही है।[329] भोजन के मध्य में पड़ी हुई मक्खी को भी देखकर यदि मनुष्य उसे उगल देता है, तो आश्चर्य है कि वह मधु मक्खियों के अण्डो के निर्दयतापूर्वक निकाले हुए घृणित रस को निर्दय बनकर कैसे पी जाता है?[330] जिस प्रकार मांस में सूक्ष्म निगोदराशि सदा उत्पन्न होती रहती है, उसी प्रकार शहद में भी रक्त, मांस के सम्बन्ध से सदा निगोदराशि उत्पन्न होती रहती है। मधु किसी भी अवस्था में क्यो न हो, उसमे सदा जीव उत्पन्न होते रहते हैं। उन जीवों से रहित शहद कभी भी नहीं रहता।[331]

गोरक्षा के विषय में गांधी जी के विचार

गाधी जी ने कहा था- "गाय की रक्षा केवल तपश्चर्या से ही हो सकती है। गाय के लिए प्राण देना मेरी अन्तिम तपश्चर्या होगी।''

ऐसी घोर तपश्चर्या करने का भी सब हिंन्दुओं का अधिकार नहीं है। दूसरो को पापकर्म से विमुख करने वालों को स्वयं पापकर्म से मुक्त होना चाहिए। हिन्दू जगत् गाय और गोवंश पर बहुत बड़ा बत्याचार कर रहा है। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारी गायों की वर्तमान दशा है। जिनका रक्त मास सूख गया है, जिनकी चमडी के भीतर हड्डी का ढाँचा साफ नजर आता है, जिन्हें पूरी खुराक नहीं मिलती है, जिन पर मनमाना बोझ लाद दिया जाता है और जिन्हें पूछ मरोड़कर या पैने मारकर हाँका जाता है, ऐसे हजारों बैलों को जब मैं देखता हूँ तो मेरा हृदय रोता है, मेरा शरीर काँपने लगता है और मै सोचता

---

[328] अमितगति श्रावकाचार 5/28

[329] वही 5/31-32

[330] वसुनन्दि श्रावकाचार 81

[331] लाटी सहिता 1/74

हूँ कि जब तक हम ऐसी घोर हिंसा करने से बाज नहीं आते तब तक मुसलमान भाईयों से क्या कह सकते हैं? हमारी स्वार्थ बुद्धि इतनी प्रबल है कि गाय का सारा दूध दुहते हुए हमें शर्म नहीं आती। कलकत्ते की डेरियों में तो बछड़ों को मां के दूध के बिना ही रखा जाता है। वहाँ फूंके की क्रिया से गायों का सारा दूध निकाल लिया जाता है। इन डेरियों के मालिक और व्यवस्थापक सब हिन्दू ही होते हैं और दूध पीने वालों में भी बड़ी संख्या हिन्दुओं की है। जब तक ऐसी डेरियाँ चलती हैं और उनका दूध हम पीते हैं, तब तक हमें मुसलमान भाईयों से एक शब्द भी कहने का क्या अधिकार है? यह भी विचारने लायक बात है कि सारे भारत के बड़े शहर कसाईखाने बन गए हैं। वहाँ हजारो गायो और बैलों का वध होता है और अधिकांश अंग्रेज भाईयों को वहीं से मांस दिया जाता है। इस विषय में सारा हिन्दू जगत् चुप है और उस हत्या को बन्द कराने में वह अपने आपको असमर्थ मानता है।

जब हम अपना हिसा दोष स्वीकार कर लेंगे। तब हमारी गोशालाओं का प्रबन्ध भी बदल जायगा। तब हम अपनीं गोशालाओं में केवल कमजोर गायों को ही नहीं रखेंगे, बल्कि हृष्ट-पुष्ट गायों और बैलों को भी रखेंगे। वहाँ हम ढोरों की नस्ल सुधारने का प्रयत्न करेंगे और शुद्ध दूध, घी आदि भी पैदा कर सकेंगे। यह प्रश्न केवल धार्मिक ही नहीं है। इसमें हिन्दुस्तान की आर्थिक उन्नति की बात भी आ जाती है। अर्थशास्त्रियों ने अकाट्य आँकड़े देकर यह सिद्ध कर दिखाया है कि हिन्दुस्तान के बहुत से ढोर इतने कमजोर हैं कि कितने ही गाय, बैलों को रखने में जो खर्च पड़ता है, उसकी तुलना में दूध बहुत कम मिलता है। हम अपनी गोशालाओं को अर्थशास्त्र के अध्ययन और इस बड़ी समस्या के केन्द्रों में परिणत कर दें। गोशालाओं में अभी जो अधिक खर्च आता है, उसे हमें जैसे-तैसे पूरा करना पड़ता है। मेरी कल्पना की गोशाला अर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होगी। ऐसी गोशालायें शहर के भीतर नहीं होना चाहिए। शहर के बाहर सौ दो सौ एकड़ जमीन लेकर वहाँ हम ऐसी गोशालायें स्थापित कर सकते हैं। उसमें गायों के लिए अनाज और हर प्रकार की घास आदि पैदा की जा सकती है और उनके मल, मूत्र से जो कीमती खाद बनेगा, उसका हम सुन्दर उपयोग कर सकते हैं।[332]

---

[332] गांधी · संस्मरण और विचार, पृ० 314-316

गांधी जी ने गोरक्षा नामक महत्वपूर्ण लेख लिखा, जिसमें उन्होंने कहा था-

गाय करुणा की एक कविता है। सीधे सादे पशुओं में दया के दर्शन होते हैं। वह करोड़ों भारतीयों की माँ है। भगवान द्वारा सृष्ट समस्त मूल प्राणियों की रक्षा ही गौ रक्षा है। जितने भी प्राचीन धर्म प्रवर्तक हुए हैं, उन्होंने गाय के माध्यम से ही जीवन का प्रारम्भ किया है। निम्नवर्ग के प्राणियों की स्थिति भी विशेष ध्यान देने योग्य है; क्योंकि वे बेजुवान हैं।

पशुओं में पवित्र जीवन जीने वाली गाय है। अत: अन्य सभी पशुओं की ओर से मनुष्य के समक्ष गाय न्याय के लिए प्रर्थना करती हैं; क्योंकि मानव ही जीवित प्राणियों में श्रेष्ठ है। वह अपनी आँखों के द्वारा बोलती सी लगती है- "हमें मारकर हमारा मांस खाना या अन्य किसी भी प्रकार के अत्याचार करने का आपको कोई अधिकार नहीं है, अल्कि आप हमारे मित्र एवं संरक्षक बने।

मैं गाय की आराधना करता हूँ और सारी दुनियाँ का विरोध करने पर भी उसकी आराधना का समर्थन करता रहूँगा।

हमारी जन्मदात्री माता से भी गौ माता अनेक कारणों से श्रेष्ठ है। माँ हमे कुछ वर्षों तक दूध पिलाती है, किन्तु चाहती है कि बड़े होकर हम उसकी सेवा करें। गौ माता हमसे घास तथा दाना पानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहती। हमारी माँ प्राय: बीमार हो जाती है तो हमसे सेवा-सुश्रूषा की आशा करती है। गौ माता तो कदाचित् ही बीमार पड़ती है।

गाय द्वारा हमारी सेवाओं की अविरल परम्परा बनी रहती है, जो उसकी मृत्यु पर्यन्त समाप्त नहीं होती। हमारी माँ की मृत्यु होने पर उसके कफन या दाह संस्कार में धन खर्च होता है। गो माता जितनी जीवित अवस्था मे उपयोगी होती है उतनी ही मरण होने के पश्चात् भी। उसका मांस, अस्थि, आँत, सींग तथा चमड़ा यानी शरीर का प्रत्येक अंग हमारे काम आता है। मै अपनी जन्मदात्री माँ की उपेक्षा करने के लिए नहीं कह रहा हूँ, बल्कि अपने द्वारा गाय के पूजे जाने के ठोस कारणों को दिखा रहा हूँ।

हिन्दू धर्म में गाय :- गौ रक्षा हिन्दू धर्म का मूल सिद्धान्त है। मेरे विचार से मानव मात्र को उसके स्तर से ऊपर ही उठाता है। मेरे लिए तो गाय में सम्पूर्ण पशु जगत् समाहित है। गाय के माध्यम से ही मनुष्य समस्त प्राणियों में अपनी महानता का बोध कर सकता है। गाय को ही पूज्य देवी के रूप में क्यो चुना गया? यह मेरे लिए सुस्पष्ट है। भारत में गाय एक श्रेष्ठ साथी है। वह समृद्धता की जननी है। इतना ही नहीं कि वह दूध देती है, बल्कि कृषि कार्य भी उसके कारण ही सम्भव हुआ है।

विश्व के लिए हिन्दू धर्म की देन गो रक्षा है। गोरक्षा के द्वारा ही हिन्दुओं के हिन्दुत्व का अस्तित्व आगे भी रह सकेगा।

हिन्दू की पहचान उनके तिलक, मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण, तीर्थ यात्रा तथा कुलधर्म के नियमों का शिष्टाचार पालन में नही, बल्कि गो रक्षा में ही निहित है।

गो रक्षा :- गोरक्षा के लिए जैसे मै किसी मानव की हत्या नही करूँगा, वैसे ही किसी मानव जीवन की रक्षा के लिए - चाहे वह कितना ही बहुमूल्य क्यों न हो, कभी भी गाय की हत्या नहीं करूँगा।

मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि व्यक्तिगत व्यवहार के कारण विपरीत दृष्टिकोण रखने वालो के मस्तिष्क मे धीरे-धीरे इस विश्वास को जमाना होगा कि गौ हत्या एक पाप है, अतः इसका त्याग करना चाहिए।

गौ हत्या को कभी भी मात्र कानून के द्वारा नहीं रोका जा सकता। ज्ञान, शिक्षा और गाय के प्रति दयाभाव ही उसे रोक सकते हैं। अन्यथा पशु हो या मनुष्य, धरती पर बोझ समझे जाने पर किसी की भी रक्षा सम्भव नहीं हो सकेगी।

विश्व भर में गो रक्षा के सिद्धान्त के प्रतिष्ठापन की मेरी तीव्र इच्छा है। किन्तु सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि इसे मै अपने घर में ही स्थापित करूँ।

मेरी दृष्टि मे गौ रक्षा का अर्थ गोरक्षा मात्र नहीं है, बल्कि विश्व के असहाय एव दुर्बल प्राणिमात्र की रक्षा करना है।[333]

---

[333] गोरक्षा पृ० 5-6 (प्रकाशक-सर्वोदय तीर्थ, अमरकटक, शहडोल (म०प्र०) महात्मा गाधी का लेख।

गायों में मैडकाउ बीमारी-प्रकृति के नियमों के विरुद्ध छेड़छाड़ का नतीजा :-

गायों में पागलपन या "मैडकाउ" बीमारी प्रकृति के नियमों के विरूद्ध छेड़छाड़ का नतीज़ा है तथा इसके लिए जिम्मेदार धनलोलुप इंसान ही है। प्रकृति ने स्वभाव से ही गाय तथा अन्य पशुओं को घास पात खाने वाली शाकाहारी जीव बनाया है तथा उसकी संरचना भी इसी प्रकार की है कि वह मास नहीं खा सकते, लेकिन पश्चिम में पशु पालकों और वैज्ञानिकों ने मांस के लिए पाली जाने वाली गायों और बछड़ों को मांसाहारी भोजन खिलाकर उनको मोटा ताजा बनाने का प्रयास किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी शारीरिक संरचना में अंतर आने लगा। गउओं के मस्तिष्क में "बेवीन स्पांजी फार्म इनसेफैलोपैथी" नामक विषाणुओं से मैडकाउ जैसे घातक रोग का जन्म होना शुरू हो गया। ब्रिटेन व फ्रांस में मैडकाउ रोग के फैलने के कारण अमेरिका तथा अन्य पशुपालक देश भी इस बारे में चिन्तित हो रहे हैं। "मैडकाऊ" बीमारी ने अब सारी दुनिया को यह चेतावनी देना शुरू कर दिया है कि गाय मांस के लिए पाला जाने वाला जीव नहीं है, बल्कि प्रकृति ने इसे दूध जैसे पोषक अमृतमय तत्व से मानव का पालन करने व गोबर से पृथ्वी की उर्बरा शक्ति को बनाए रखने के लिए शाकाहारी बनाया है। भारत में गाय को माँ का दर्जा दिया गया था। यदि प्रकृति के कार्य में किसी प्रकार छेड़छाड़ की गई तो "मैडकाऊ" जैसे घातक रोग का दुष्परिणाम मानव को भुगतना पड़ेगा।[334]

बूचड़खाने मानवता पर कलंक :- सरकारी आँकड़ों के अनुसार सन् 1951 में देश में प्रति हजार व्यक्तियों पर पशुओं की संख्या 438 थी। सरकार की मांस निर्यात नीति के कारण 1991 तक यह संख्या केवल 257 रह गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर अब तक देश में कसाईखानों की संख्या में जबरदस्त इजाफा हुआ है। आजादी के समय देश में मात्र 300 कसाईखाने थे, जो अब बढ़कर 36039 हो गए है। इस तरह से इनकी संख्या में 120 गुना वृद्धि हुई। आज हालत यह है कि हमारे देश के कसाईखानों में हर रोज 3 लाख 56 हजार पशु कटते हैं। साल भर में यह संख्या 13 करोड़ हो जाती है।

---

[334] अहिंसा सन्देश पृ० 6 जनवरी 2001

इस समय देश में 3600 पंजीकृत कसाईखाने हैं। इनके अलावा अनधिकृत कसाईखानों में बड़ी संख्या में लाखों पशु काटे जा रहे हैं। देश के दस बड़े यान्त्रिक कसाईखानों में प्रतिदिन ढ़ाई लाख पशु काटे जाते हैं। इन कसाईखानों में प्रतिवर्ष एक करोड़ गाय भैंसों तथा चार करोड़ भेड़ बकरियों की हत्या की जाती है। एक भैंस से अधिकतम 100 किलो तथा एक बकरी से अधिकतम 7 किलो मांस प्राप्त हो सकता है। सबसे बुरी स्थिति बकरी और भेड़ों की है जिनकी संख्या तेजी से घटती जा रही है। अकेले अलकवीर कसाईखानों को 6 लाख भेड़-बकरे काटने का लाइसेंस प्राप्त है। देवनार (मुम्बई) का यान्त्रिक कसाईखाना हर साल 25 लाख भेड़ बकरे, 1 लाख बीस हजार गौवंश तथा 60 हजार भेंसे काटता है। कलकत्ता स्थित बूचड़ खाना भी प्रतिवर्ष 12 लाख गाय-बैल काटता है। इसके अलावा अवैध रूप से चल रहे कसाई खानों में काटे लाने वाले पशुओं की संख्या का तो कोई हिसाब नहीं है।

जानकारी के अनुसार केवल अलबीर को प्रतिवर्ष 1 लाख पचास हजार भैंसे तथा 7 लाख भेड़-बकरियाँ काटने का लाइसेन्स प्राप्त है। अलकबीर हर साल पन्द्रह हजार मीट्रिक टन मांस का निर्यात करता है। इसके अलावा फ्रिगोरीफिको अल्लाना लिमिटेड औरंगाबाद 24 हजार मीट्रिक टन, हिन्द इण्डस्ट्रीज (अलीगढ़) 25 हजार मीट्रिक टन और अलना संस प्राइवेट लिमिटेड (दिल्ली, आंध्र, महाराष्ट्र) 45 हजार मीट्रिक टन मांस नियति करता है।[335] इस प्रकार अहिसा, दया और प्रेम का सन्देश देने वाला भारत सबसे बड़ा कसाईखाना बनता जा रहा है, जो मानवता के लिए कलंक है। पहले इस भारत मे गौशालाये खोली जाती थीं एवं हीरे जवाहरात के व्यवसाय को प्राथमिकता दी जाती थी, पेड़ पौधों को लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। आज वही भारत मछली पालन, पोल्ट्री फार्म तथा मांस निर्यात जैसे कार्यो को प्रोत्साहन दे रहा है।[336] हम किसी को अमर नहीं कह सकते, लेकिन किसी को बेमौत मरने से बचा तो सकते है और किसी को अमर करना हमारे हाथ मे नही, लेकिन किसी को मरने से बचाना तो हमारे हाथ में है।[337] जिस राष्ट्र की रीढ़ पशुधन हो और यदि धन के लोभ में उस पशुधन के मांस का

---

[335] भारतीय जैन मिलन समाचार 1999-2000

[336] आचार्य विद्यासागर , अहिंसा सूत्र, पृ० 18

[337] वही पृ० 31

निर्यात किया जा रहा हो तो वह राष्ट्र बिना रीढ़ के अधिक समय तक खड़ा नहीं रह सकता।[338] हमारे इस भारत की संस्कृति अध्यात्म के क्षेत्र में विश्व की अग्रणी थी, आज वही भारत राष्ट्र मांस नियति करने में अग्रणी हो गया है, यही हमारे इस राष्ट्र का दुर्भाग्य है।[339] हमारा प्राचीन इतिहास बहुत उज्ज्वल था, लेकिन आज का इतिहास खून से सना है; क्योंकि कत्लखानों का इतिहास भारतीय इतिहास के धवल पन्नो को कलंकित कर रहा है और भारत के इतिहास को मिटाने में लगा है।[340]

भारत सरकार की विरोधी नीति :- सरकार एक तरफ तो भारतीय पशु कल्याण बोर्ड बनाती है और दूसरी ओर पशु हत्या के लिए बूचड़खाने को अनुदान देती है और उन्हें लाइसेंस देती है, मांस नियति शुरू करती है। क्या यह विरोधाभास नहीं है। मांस नियति नीति से पशु कल्याण बोर्ड निष्क्रिय हो गया है। संविधान के आधार पर अनुपयोगी पशुओं को मारने का प्रावधान है, पर यह कानून भारतीय संस्कृति के खिलाफ है। इसमें अविलम्ब सुधार किया जाना चाहिए; क्योंकि हत्यायें कानूनन वैध नहीं ठहराई जा सकती। इस तरह का कानून भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51-ए-जी का सरासर उल्लंघन है, जिसमें कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह प्राकृतिक वातावरण एवं उसके अन्तर्गत वन, झील, नदियाँ और वन्य जीवन की सुरक्षा करे, इसमे सुधार करें और सभी जीवों के प्रति करुणा भाव रखें।[341]

गोवंश हत्या निषेध कानून बनाया जाये। यांत्रिक कत्लखाने बन्द हों। मांस निर्यात पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाकर कृषि का भारतीयकरण हो, इसके साथ ही गोवश रक्षा को मौलिक अधिकारो की सूची में रखा जाए तथा समवर्ती सूची मे शामिल किया जाय। कृषि को स्वावलम्बी, पर्यावरण रक्षक, रोजगारमूलक, गोवंश आधारित बनाने के लिए दिया जाने वाला अनुदान बन्द किया जाय। सरकार द्वारा स्थापित गौसदनों को सक्रिय किया जाय। यथार्थ में गाय मनुष्य का पालन करती है। गाय प्रकृति का मानवीय सृष्टि के लिए अनुपम उपहार है। वह दुग्ध का भण्डार है। जैविक खाद कीट नियन्त्रकों का

[338] वही पृ० 12

[339] वही पृ० 13

[340] वही पृ० 5

[341] भारतीय जैनमिलन समाचार दिसम्बर 1999 वर्ष: - 5 अंक - 12

प्राकृतिक कारखाना, बिना पूँजी के चलने वाला बिजली घर एवं पंचगव्य औषधियों का अक्षय औषधालय है। पाश्चात्य देशो में दुग्ध से 33 प्रतिशत और गोमांस से 67 प्रतिशत आय होती है, उनके लिए गाय मात्र अर्थ का आधार है। भारतीय परम्परा में गाय प्रथमतः बछडे, गोबर, गोमूत्र और दूध का आधार है। समस्त दुधारू चतुष्पद प्राणियों में गाय ही ऐसा प्राणी है जिसकी बड़ी आँत 180 फीट लम्बी होती है, इसकी विशेषता यह है कि जो चारा ग्रहण करती है, उससे .दूध में केरोटीन नामक पदार्थ बनता है। वह भैंस के दूध से 10 गुना अधिक होता है। कैरोटीन शरीर में पहुँचकर विटामिन "ए" तैयार करता है, जो नेत्र ज्योति के लिए आवश्यक है।

आगरे के कट्टीखाने की करुण कथा :- ग्यारह एकड़ जमीन पर चार भागों में विभाजित इस कत्लखाने के निर्माण पर 8 करोड़ 60 लाख रूपए की लागत आई है। कलकत्ता, चण्डीगढ़, औरंगाबाद, उन्नाव, मुंबई और गोवा के बाद आधुनिक सुविधाओं से युक्त पशु वधशाला खोली गई है। राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड के माडल पर लार्सन एण्ड टूबारो मुबई की इंजीनियरिग कम्पनी ने नगर निगम के सहयोग से इसका निर्माण किया है, जहाँ 8 करोड़ 60 लाख का खर्च कृषि मन्त्रालय ने उठाया है। यान्त्रिक कत्लखाने को चार भागों में बाँटा गया है। पहला भाग लेरिजित कहलाता है, जहाँ वध से पहले पशुओ का चिकित्सीय परीक्षण किया जाता है। परीक्षण के बाद जानवरों को 12 ब्लाक वाले विशाल हाल में लाया जाता है। प्रत्येक ब्लाक में 20 जानवरों को इस प्रकार खड़ा किया जाता है कि वे हिल डुल भी न सकें।

इस स्थान पर जानवरो को इस प्रकार खड़ा किया जाता है कि वे हिल डुल भी न सकें।

इस स्थान पर जानवरो को 24 घण्टे भूखा रखा जाता है और पीने के लिए केवल पानी दिया जाता है। पशुओं की खाल की क्वालिटी अच्छी बनाने के लिए उन पर खौलता हुआ पानी डाला जाता है और फिर आटोमेटिक छड़ियो से घण्टों पिटाई की जाती है। विशेषज्ञो का कहना है कि इस कार्यवाही से जानवर का सारा खून खाल तक पहुँच जाता है और जब खाल उतारी जाती है तो न केवल वह आसानी से उतर जाती है, बल्कि उसकी क्वालिटी भी अच्छी हो जाती है।

इस प्रक्रिया के बाद इन पशुओं को चैम्बर में लाया जाता है, जिसे इटली की रोमानी कम्पनी ने तैयार किया है। 16 लाख रूपये की लागत से तैयार हुई इस मशीन में जानवरों के सिर को छोड़कर पूरा शरीर डाल दिया जाता है। फिर इसी चैम्बर मे जानवर के सिर में आग्नेयास्त्र चलाकर 22 बोर की गोली मारी जाती है। इसके बाद चैम्बर को घुमाया जाता है और पशु के अचेत होने पर उसे खुले स्थान पर लाया जाता है। जहाँ मौलवियों की मौजूदगी में उन्हें हलाल किया जाता है। उनके गले पर छुरी फेरकर कलमा पढ़ा जाता है। रोमन कम्पनी ने मशीन को इसी तरह बनाया है कि जानवर को हलाल किया जाता है तो इस्लामिक रीति-रिवाज के अनुसार उसका रुख काबा की तरफ हो जाता है। अब तो यह भी प्रबन्ध किया जा रहा है कि पशु को हलाल करते समय देवबंद से खास तौर पर बुलाए गए दो मौलवी इस प्रक्रिया पर निगरानी रखे। जानवर को हलाल करने के बाद उसके चारो पैरों को हुकों से बांधकर करीब 20 फुट ऊपर उठाया जाता है और आटोमैटिक ग्रिल से उसके सिर, पैर तथा अन्य भाग अलग किए जाते हैं। यह पूरी प्रक्रिया 90 सेकेण्ड में पूरी हो जाती है। यही पर जानवर की खाल को उतारा जाता है। ग्रिल के दोनों तरफ बने प्लेट फार्मो पर विशेषज्ञ तैनात रहते है। जानवर के जिस्म के हर कटे भाग को अलग-अलग बने कुओ मे डाल दिया जाता है। इन सब कामों को करने के लिए 40 लोग लगाए गए हैं। जानवर का गोश्त काटने से पहले पावर मशीन के माध्यम से उस का जिस्म 900 एम०एम० से लेकर 1200 एम०एम० तक खीचकर चौड़ा किया जाता है। इसके बाद जब उसे चार भागो मे बाँटा जाता है तो उसके पैर से गैस निकलती है।

उसे बाहर निकालने और एकत्रित करने के लिए आपरेशन कक्ष का तापमान 15 से 25 डिग्री तक नियंत्रित किया जाता है। आपरेशन कक्ष में 14 पखे लगे हुए हैं। दो फ्लाई कैचर और प्रत्येक दरवाजे पर एयर कार्टन पंखे लगे हुए हैं, जो बाहरी पक्षी, मच्छर, मक्खी आदि का प्रवेश नही करने देते। पशु को चार भागो मे विभाजित करने के बाद उसका फिर परीक्षण किया जाता है। खराब गोश्त को निकाल दिया जाता है और गोश्त के 260 टुकड़े किए जाते हैं। फिर इन टुकड़ो को बायलर के माध्यम से साफ किया जाता है।

कट्टीखाने के संचालन के लिए 300 किलोवाट का आटोमेटिक पावर हाउस तथा एम सी सी कण्ट्रोल रूम के अतिरिक्त प्रतिदिन दो लाख लीटर पानी की आपूर्ति ओवर वैक से की जाती है। जानवरों के मांस को साफ और शुद्ध रखने की खास व्यवस्था की गई है। इस कत्लखाने में गर्म और ठण्डे पानी की 24 घण्टे आपूर्ति की जा रही है। विद्युत आपूर्ति के लिए अलग से ट्रांसफार्मर लगाया जाता है। यांत्रिकी पशुवधशाला के दूसरे भाग में ई०टी०पी० का संचालन होता है।

इसमें आपरेशन के बाद पूरे कट्टीखाने का गंदा पानी स्टोर किया जाता है। इस पानी को एनोलाइजिंग टैंक में एकत्रित किया जाता है। बाकी के बचे गन्दे पानी को खुली हवा में उपकरणो द्वारा शुद्ध किया जाता है। इस प्रदूषित पानी को छानकर ग्रीन बैल्ट की सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता है।

पशुवधशाला के तीसरे भाग में कार्कस यूटीलाइजेशन इकाई चल रही है। यहाँ शुद्ध किए गए गोश्त को 160 डिग्री तक पकाने के बाद उपयोगी बनाया जाता है। इसी स्थान पर ट्रीटमेण्ट प्लांट से बनी गैस को भरने के लिए 120 कुकिंग गैस सिलेण्डर लगे हुए हैं। जिनमें से प्रतिदिन 28 से 30 सिलैंडर पशुओं से निकली गैस से भरे जाते हैं।

यांत्रिकी कट्टीखाने के अधिकारी ने बताया कि पाँच एकड़ जमीन मे चारों तरफ हरित पट्टिका का निर्माण किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों के लिए आवास तथा गोदाम भी बनाए गए हैं। सुप्रीम कोर्ट के दबाव में यह कट्टीखाना चालू तो हो गया है, परन्तु अब भी जगह-जगह घरो मे कट्टीखाने चल रहे हैं, जबकि अधिकारियों ने उच्चतम न्यायालय को हल्फनामें द्वारा विश्वास दिला दिया है कि नगर में कोई अवैध कट्टीखाना नही चल रहा है। दूसरी तरफ कुरैशी समाज इस का विरोध कर रहा है। उसका कहना है कि जानवरों का कत्ल झटके से किया जाता है, न कि हलाल प्रक्रिया द्वारा। उनकी यह भी माँग है, कि कट्टीखाने को चलाने का ठेका निजी कम्पनी को न देकर नगर निगम अपने हाथ मे ले।[342]

[342] दिशाबोध - जुलाई 2001 मे प्रकाशित आर०के० विज का लेख, पृ० 8-9

प्राचीन भारत अहिंसक संस्कार

"सारे देश में कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन, प्याज खाता है; सिवाय चाण्डाल के। दस्यु को चाण्डाल कहते हैं। वे नगर के बाहर रहते हैं और जब नगर में बैठते हैं, तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं; ताकि लोग जान जाँय और बचकर चलें, कहीं छू न जाँय। जनपद में सुअर और मुर्गी नहीं पालते, न जीवित पशु बेचे जाते हैं, न कहीं सूनागार और मद्य की दुकानें हैं। क्रय-विक्रय में कौड़ियों का व्यवहार होता है। केवल चाण्डाल मछली मारते, मृगया करते और मांस बेचते हैं।

– (चीनी यात्री फाहयान का यात्रा विवरण)

पृष्ठ 64

"प्राकृत विद्या"

जनवरी-जून 2001 ई०

कत्लखानों के कारण पशुओं की घटती संख्या[343] :- दुनियाँ में मनुष्य का सबसे प्राचीन धन्धा पशुपालन रहा है। जहाँ कृषि योग्य भूमि नहीं थी, वहाँ पशु ही उनकी जिन्दगी का सबसे बड़ा सहारा था। मध्य एशिया की धरती पर तो पैगम्बरों ने भी पशु-पालन का काम किया है। आदमी जब इनके निकट होता है और वे उसकी सेवा करते हैं, तब उसकी आँखों में अपने इन पालतू जानवरों के लिए दया और करुणा झलक पड़ती है। एक समय था कि किसी व्यक्ति के पास जितने अधिक पशु होते थे, वह उतना ही धनी माना जाता था। आज भी डेन्मार्क, नार्वे, कनाडा और अमेरिका में डेरी फार्म का धन्धा इतना बड़ा और विशाल है कि उसकी लाबी राजनीति को प्रभावित करती है। विश्व मे ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती चली गयी, इन भोले भाले प्राणियों का सभी अनुपात मे नाश होने लगा। बीमार और वृद्ध जानवर उनके उपयोगी है या नही, इस कसौटी पर उनके जीवन का निर्णय लिया जाना शुरू हो गया। आबादी बढ़ जाने के कारण हरी चारागाहे समाप्त होने नगी, इसलिए इन

[343] कत्लखानो का नर्क गाधी जी के देश मे पृ 8 एव 9 (श्री मुजफर हुसेन का लेख) अ रा मास निर्यात निरोध परिषद् 25 ए एम आई.जी कॉलोनी, ए बी. रोड होटल सुहाग के पीछे, इन्दौर (म प्र)

पशुओं को खिलाना-पिलाना एक समस्या बन गयी, अतएव जिन देशों मे जानवर कम हैं, वहाँ कृषि का विकास कम हुआ है।

कृषि प्रधान देश जिनके पास निर्यात करने को कुछ भी नहीं था, वे अपने पशु धन मांस के रूप में निर्यात करने लगे। हर देश को विदेशी मुद्रा की जरूरत थी, इसलिए अपने जानवरों को काटकर यदि वे अच्छा पैसा कमा लेते हैं तो क्या बुरा है? इस सोच ने भारतीय उपखण्ड को अपनी चपेट में ले लिया। अरबस्तान के देशों के पास खनिज तेल का खूब पैसा आया, वे बाजार में किसी भी मूल्य पर चीजें खरीदने लगे। खाड़ी के देशों में कल तक आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड से बड़े पैमाने पर मांस आया करता था, लेकिन धीरे-धीरे अन्य देश भी इस स्पर्द्धा मे हाथ बटाने लगे। भारत में कुकुरमुत्ते की तरह असंख्य कारखाने जगह-जगह उग आए। पाकिस्तान को अपना इस्लामी जोश दिखाने का सही अवसर मिला। जहाँ सैंकड़ो पाकिस्तानी मुसलमान होने के नाते अरबस्तान में जाकर रोजगार प्राप्त करने का दावा करने लगे, वहीं पाकिस्तानी अपनी हर चीज इन नवधनिक अरबों पर लुटाने का अपना इस्लामी दायित्व समझने लगे। बेचारे भोले भाले बकरे, बकरी, भेड़, गाय बैल उनके निशाने बन गए। इस बहती गंगा में न केवल पाकिस्तान सरकार ने हाथ धोए, बल्कि प्राइवेट पार्टियाँ भी अपनी-अपनी किस्मत आजमाने लगीं। इसका नतीजा यह आया कि धन्धे में भारी मुनाफा देखकर अनेक लालची सौदागर अवैध रूप से प्राइवेट लांच में इन जानवरों को भरकर समुद्र पार भेजने लगे। कुछ लोग सुनसान स्थानों पर इन जानवरों का कत्ल कर उनका मांस भेजने लगे। टेक्स की चोरी से ये लखपति बनने की होड़ मे लग गए। सरकार को इन पर कोई अकुश नहीं रहा, इसलिए पाकिस्तान का पशुधन बीच बाजार में नीलाम होने लगा।

ऐसा पाकिस्तान में ही हुआ हो, यह बात नहीं है। भारत जैसा अहिंसक देश भी इस दौड़ में पीछे नही रहा। यहाँ भी सरकार को मूर्ख बनाकर तरह-तरह से मांस खाड़ी के देशो को भेजा जाने लगा। सरकार ने अपनी आय के लिए धड़ल्ले से नए कत्लखाने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार हमारा पशुधन अरबों के पेट मे जाकर समाने लगा।

विदेशी मुद्रा के लालची भेड़िए इस बात का प्रचार करते नहीं थकते हैं कि भारत में विशाल पशुधन है, इसी कारण तो ब्रिटिश साम्राज्य में रुई के बाद सबसे अधिक निर्यात होने वाली कोई वस्तु थी तो वह हमारा चमड़ा था। भारतीय चमड़े की मांग हर समय विदेश में रहा करती थी। जिस प्रकार जंगल कटते गए और पर्यावरण की स्थिति बिगड़ती गई, यही स्थिति अब पशुधन के सम्बन्ध मे भी है। एक समय था कि आस्ट्रेलिया में सबसे अधिक पशु थे, किन्तु अब वहाँ एक हजार व्यक्ति के पीछे 2089 है, जो सम्भवतः विश्व में सबसे अधिक है। कोलम्बिया और ब्राजील में क्रमशः 911 और 726 पशु हैं। भारत में यह आँकड़ा केवल 279 है। पाकिस्तान में 204 और बंगलादेश में 196 बतलाया जाता है। क्षेत्रफल के हिसाब से देखें तो भारत की स्थिति पाकिस्तान और बंगलादेश की तुलना में ही नहीं, बल्कि मलेशिया और श्रीलंका की तुलना में भी अत्यन्त दयनीय है। अमेरिका में एक आदमी औसतन 275 ग्राम और अरब देशों में औसतन 175 ग्राम मास का उपयोग करता है। भारत में यह औसत 50 ग्राम भी नहीं है। लेकिन विदेशी लोग इसे चट कर जाते हैं। दुधारू पशु ही नहीं असंख्य पक्षी भी इस हिंसाचार के शिकार हो रहे हैं। भारत जैसे अहिंसावादी देश में कत्लखानों के विरुद्ध आवाज बुलन्द करनी पड़ रही है, यह कितने दुर्भाग्य की बात है।

दुधारू पशुओं का विनाश :- क्या दूध अहिंसक है? इस लेख में डॉ० अनिल कुमार जैन ने दर्शाया है कि गर्भकाल पूर्ण होने के बाद जब गाय और भैंस बच्चे को जन्म देती है, तब यह देखा जाता है कि बच्चा नर है या मादा? यदि बच्चा नर है तो या तो उसे सीधे कत्लखाने भेज दिया जाता है या फिर उसे इतना भूखा रखा जाता है कि वह स्वय ही भूख के मारे मर जाय। प्राचीन काल मे ऐसा नहीं था। नर बच्चे की देखभाल भी ठीक से होती थी तथा उसके बड़े होने पर उसकी खेती बाड़ी में उपयोगिता भी थी। आज खेती बाड़ी में ट्रैक्टरों का उपयोग होने के कारण बैल और भैंस आदि भी अनुपयोगी रह गए है। अतः इस प्रकार नर बच्चे को मार ही दिया जाता है।

चूँकि गाय और भैंस मे अपने बच्चों के प्रति अतिशय ममता होती है। वे अपने बच्चों को देखे बिना रह नहीं सकतीं। अतः वे दूध भी उन्हें देखे बिना नहीं देती है। चूँकि बच्चे को मार दिया जाता है तो बच्चा कहाँ से

लायें? ऐसी स्थिति में नर बच्चे की खाल उतार ली जाती है तथा उसमें भूसा भर दिया जाता है। भोली भाली गाय भैंसें क्या समझें कि इनके बच्चों को जान बूझकर मार दिया गया है। वे वात्सल्य से भूसे भरी खाल को ही अपना बच्चा समझकर उन्हें चाटने लगती हैं, दुलारने लगती हैं तथा ममतामयी भाव से थनों में से दूध प्रवाहित करने लगती हैं। तुरन्त उसी समय थनों से दूध निकाल लिया जाता है। यह भी विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि जब तक वे अपने बच्चे को या भूसायुक्त खाल को बच्चा समझकर देख न लें, तब वे दूध नहीं देती हैं।

यदि बच्चा मादा है तो प्राय: वह सुरक्षित रहता है। लेकिन उसे भी अपनी माता के थनों से ज्यादा दूध नहीं पीने दिया जाता है। वास्तविकता यह है कि कहीं दूध का भी उत्पादन कम न हो जाय, इसलिए उन्हें अधिक नहीं पीने दिया जाता है। बच्चा यदि अपनी माँ के थनों को धोए नहीं तो गाय, भैंस के थनों में दूध भी नही उतरता है। एक बार जैसे ही थनों में दूध उतरना शुरू हो जाता है, इन बच्चों को तुरन्त दूर कर दिया जाता है।

दूध को जल्दी से तथा अधिक मात्रा में पीने के उद्देश्य से गाय भैंसो को ओक्सीटोसिन हारमोनल इंजेक्शन नियमित रूप से दिया जाता है। जैसे ही इस इंजेक्शन को उन्हे लगाया जाता है, तुरन्त ही उन्हें प्रसव जैसा दर्द होता है। थनों में भी तनाव आ जाता है तथा दूध तुरन्त उतर जाता है। आज प्राय: प्रत्येक ग्वाला अपने दुधारू पशुओ को यह इन्जेक्शन बिना नागा किए हुए देता है। गाय भैंस को जब इस बात का अनुमान हो जाता है कि उन्हें इन्जेक्शन लगने वाला है तो वे तड़प-तड़प कर इधर-उधर भागने की कोशिश करते हैं, किन्तु खूँटे से बँधे होने के कारण भाग नहीं पाते हैं।

गाय भैसो के थनो को पूरी तरह निचोड़ लिया जाता है। ये जब तक दूध देती रहती है, तब तक तो ग्वाला उन्हे खिलाता है। लेकिन जब वे दूध देना बन्द कर देती है तो कत्लखाने मे कभी सीधे, कभी दलालो के हाथ बेच देते हैं। इस प्रकार आज बाजार से जो दूध हमे प्राप्त होता है, वह गाय और भैसो के प्रति अत्याचार एव क्रूरता के बाद उत्पाद होता है। अन्त में एक बात विचारणीय है कि विश्व में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो दूसरे जानवरों का दूध पीता है। अन्य कोई पशु अपनी माँ के अतिरिक्त अन्य का दूध नहीं पीता है

और वह भी बड़ा होने तक। जबकि मनुष्य बचपन से लेकर बुढ़ाने तक अन्य पशुओं का दूध पीता रहता है।[344]

कस्तूरी मृग संकट में :- इन्सान की लोभी वृत्ति ने जंगल के जीवों का जीना जटिल कर दिया है और वे इससे अपने को बचाने में सक्षम नहीं रहे हैं। इस समय कस्तूरी मृग मनुष्य की इसी लालची वृत्ति का शिकार है। कस्तूरी की बढ़ती मांग तथा बढ़ते भावों ने इन भोले भाले मृगों को मौत का पैगाम दिया है तथा ये मनुष्य से आतङ्कित हो अपने अस्तित्व के लिए जूझते दिखाई देते हैं। यह हमारे भव्य वन जीवन पर बदनुमा दाग और दुर्भाग्यपूर्ण बात है।

कस्तूरी मृगों के मूल उद्गम स्थलों में हिमालय की पहाड़ियाँ तथा कश्मीर की सुरम्य वादियां शामिल हैं। घबराया, डरा सा कस्तूरी मृग अपनी सुगन्धि मदमत्त पेड़ पत्तों की ओट में छिपा जरा सी आहट से चौकन्ना इधर से उधर मारा फिरता है। यह डर उसे भरपेट खाना भी नसीब होने नहीं देता । उस पर बाल मृगों की सुरक्षा का प्रश्न पृथक् से सामने रहता है। हिमालय की पहाड़ियों पर यह हजार बारह सौ फीट की ऊँचाई पर मिलता है। जबकि सर्दियों में यह काफी नीचे उतर आता है। इसके शरीर पर न पाई जाने वाली ऊन जैसी फर से यह अपने को प्रचण्ड शीत से बचाता है। इसकी गर्मी में यह हिमपात तक को बर्दाश्त कर लेता है। इसलिए इसकी फर का भी महत्व है। इसकी फर से कोट टोपी तथा अन्य गरम पहनावे बनाए जाते हैं। वहांपर कुछ साधु संन्यासियों द्वारा मृगछौना भी काम में लिया जाता है। इसके अलावा बिछौने तथा तकिए आदि के भी काम में लिए जाते हैं।

कस्तूरी मृगो के पेट में एक थैली होती है, उसी में कस्तूरी नामक पदार्थ पाया जाता है। एक मृग से करीब दस बारह ग्राम तक कस्तूरी मिलती है। कुछेक मृगों में यह मात्रा 25 ग्राम तक भी पायी जाती है। इन मृगों की हत्या के लिए यह कस्तूरी ही जिम्मेदार है। तस्करो का बाजार निश्चित होने से वे इसे प्राप्त करने के लिए पहाड़ी ठंडे इलाकों मे मृगो का शिकार कर रहे है। साथ ही मादा मृगो को भी मार दिया जाता है। मीठी सुरीली तान से मृगों को बुलाकर शिकारी झुंड पर जब फायरिंग करता है तो वे मादा मृग भी मारी जाती है जिनमे कस्तूरी नही पायी जाती है। आँकड़े बताते हैं कि चालीस साल

---

[344] जैन प्रतीक मे प्रकाशित लेख (फरवरी 2000)

पहले ये मृग पाँच लाख थे, अब ये घटकर तीन चार हजार तक रह गए हैं। वन्य जीवन संरक्षण को कानूनी जामा पहिनाने के बाद भी वे तस्करों के हाथ अंन्धाधुंध मारे जा रहे हैं तथा शीघ्र ही ये पूर्ण रूप से समाप्त हो जाने वाले लगते हैं।[345]

अण्डा मत खाइए

अण्डा खाना स्वास्थयवर्द्धक नही है। बहुत से मनुष्यों में तो अण्डे खाने का यह परिणाम होता है कि वैसिलसको - लाइकमुनिस के अहितकर कीटाणु जो कि मनुष्य में रहते है, वे अण्डे खाने से हानिकारक कीटाणुओं के रूप में परिवर्तित हो जाते है। कोई रोग से ग्रसित मुर्गी का बच्चा बच गया तो वह बड़ा होकर क्षय रोग के कीटाणुओं से ग्रसित अण्डे देगा। मुर्गी के बच्चे का ल्युकीमिया नामक रोग जो कि बड़ा घातक है, अण्डे खाने से फैल सकता है। जिन मुर्गियों को सफेद दस्त की कीटाणुओं का रोग है, वे मुर्गियाँ जो अण्डे देगी, उन अण्डो में वे कीटाणु होगे जो कि मनुष्य में संग्रहणी रोग के साथ अक्सर रहते हैं।

अण्डों में कोलेस्ट्राल नामक पदार्थ अधिकता से पाया जाता है जो कि एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ होता है और जिससे पित्ताशय में पथरी पड़ जाती है। एक अण्डे मे करीब 4 ग्रेन कोलेस्टरोल रहता है।

अण्डो के खाने से "ब्राइस डिसीज" नामक गुर्दो की बीमारी व अन्य प्रकार के गुर्दो को कमजोर करने वाले रोग पैदा होने की बहुत सम्भावना रहती है।

अण्डों की कच्ची सफेद जर्दी मे एक प्रकार तत्त्व होता है जो कि पाचक रसो को अपनी पाचन क्रिया ठीक से नहीं करने देता है। यह पदार्थ अधिक देर तक गर्म करने से नष्ट हो जाता है। अधिक देर तक आग मे पकाने से अण्डे का सफेद जर्दी का भाग और भी देर में हजम होता है। इसके विटामिन और क्षार भी नष्ट हो जाते है। इस तत्त्व का नाम एवैडीन है जो कि वर्नन, हैटिन और वेयलिस नामक विद्वानो के अनुसार पाचक रसों को अपनी पाचन क्रिया ठीक से नही करने देती है। जिन जानवरों को ताजे अण्डे

[345] कादम्बिनी - अक्टूबर 1996 मे प्रकाशित चन्द्रकान्ता शर्मा का लेख।

की सफेद जर्दी खिलाई गई, उनको खाल की सख्त सूजन व लकवे की बीमारी हो गई। डॉ० मारगैरट, जो कि एक अंग्रेज महिला हैं, ने खोज की कि यदि चूहों को अण्डे की सफेदी जर्दी ज्यादा मात्रा में खिलाई जावे तो उनको छाजन हो जाती है। डॉ० आर० जे० विलियम्स ने खोज की कि अण्डे की सफेद जर्दी में वह तत्त्व, जो छाजन कर देता है, एवैडीन है। इस प्रकार की छाजन विटामिन ऐच या वायोटीन के देने से अच्छी की जा सकती है। यदि अण्डे की सफेद जर्दी की तादाद अधिक है या दूसरे शब्दों में एवैडीन की मात्रा अधिक है तो वायोटीन का कोई प्रभाव नहीं होता है।

एक अच्छे काम का अच्छा फल मिलता है और बुरे काम का बुरा फल मिलता है। यदि किसी प्राणी के जीवन का अन्त किया जाय तो उस पाप का भागी करने वाले को ही होना पड़ेगा। मांस और अण्डा खाने से किसी के जीवन का अन्त हो जाता है।

अण्डों में चूनें की कमी होती है और उनमें शर्करा भी नहीं होती है। अत: अण्डों में आँत के अन्दर सड़ानें की रुझान होती है।

अण्डे खाना एक प्रकार गर्भ में डकैती डालने के समान है या मुर्गी के बच्चे की हत्या के बराबर है।

आधुनिक दरबों के फर्श पर तार लगे रहते हैं, जिनसे मुर्गियों के पैर दर्द करने लगते हैं। रात में बीच-बीच में बिजली का प्रकाश आ जाता है और फिर चला जाता है, जिससे कि मुर्गियाँ समझें कि दिन हो गया है और वे कुछ खायें और अण्डे ज्यादा दें। मुर्गियों को पथ्वी तक का स्पर्श नहीं कराया जाता है। यह कार्य अमानवीय है।

अण्डे तेजाब अधिक पैदा करते हैं और उनमें नाइट्रोजन, चर्बी और फोसफोरिस एसिड अधिक मात्रा में होती है और इस कारण से मनुष्य का प्राकृतिक आहार नहीं हो सकता है।[346]

सामान्यत: पुरुषों को 2700 कैलोरीज, महिलाओं को 2100 और लड़कियों को 2000 केलोरीज की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार गेहूं से जितनी कैलोरीज मिलती हैं, उतनी ही कैलोरीज प्राप्त

---

[346] प्रोफेसर विग डेविडसन व डाक्टर रोबर्ट ग्रीस . "क्या अण्डे खाना स्वास्थ्य वर्द्धक है?"

करने के लिए अण्डों पर दस गुना खर्च करना पड़ेगा। अगर गेहूँ से 12, दालों से 11 और सोयाबीन से 8 पैसे खर्च करने पर 100 कैलोरी ऊर्जा मिलती है तो अण्डों पर इतनी ही कैलोरीज प्राप्त करने के लिए 95 पैसे खर्च करने पड़ेंगे।

ऐसा माना जाता है कि दूसरे खाद्य पदार्थो की अपेक्षा अण्डा अधिक पौष्टिक होता है, किन्तु यह कथन ठीक नहीं। दो सौ पचास ग्राम टमाटर या संतरे में 100 ग्राम विटामिन सी होता है और विटामिन सी की इतनी मात्रा प्राप्त करने के लिए 200 अण्डे खाने पड़ेंगे। एक सौग्राम (3 अण्डे) में प्रोटीन 13.3 प्रतिशत होता है। इतने ही चने में 24.0, एक सौ ग्राम मूँगफली में 31.5 और सोयाबीन में 26.2 प्रतिशत प्रोटीन है। एक अण्डे से हमें 90 कैलोरी ऊर्जा मिलती है, जबकि गेहूँ के 100 ग्राम आटे से 177.0 कैलोरी ऊर्जा हमें मिल सकती है।

कैलशियम और विटामिन "बी" समूह भी अण्डे में बहुत कम मात्रा मे होते है और विटामिन "ए" जैसी आवश्यक चीज भी अनुपस्थित है। अण्डे से अधिक विटामिन "ए" सरसों के 75 ग्राम से और 25 गुना अधिक विटामिन "ए" पत्ता गोभी जैसी सब्जियों में मिल जाता है। यहाँ तक कि 100 ग्राम हरे धनिये मे प्रोटीन 14.1 प्रतिशत है, जबकि अण्डे में सिर्फ 13.3, धनिये में वसा अगर 16.1 है तो अण्डे में 13.5, खनिज लवण धनिए मे 4.4 है तो अण्डे में मात्र 1.0 कैलशियम यदि धनिये में 0.56 और कार्बोहाईड्रेट 216 है तो अण्डे मे कैल्शियम 0.6 प्रतिशत और कार्बोहाइड्रेट तो अण्डे मे होता ही नहीं। हृदय के रोगो का अनुसन्धान करने वाले चिकित्सको और वैज्ञानिको के अनुसार बढ़ते हुए हृदय रोगो का एक कारण अण्डों का अत्यधिक सेवन भी है। अण्डे के सेवन से धमनियों मे रक्त प्रवाह में कमी आ जाती है।

भ्रूण हत्या : एक जघन्य अपराध

वर्ष 1984 मे "नेशनल राइट्स टू लाइफ कन्वैक्शन" कनाट सिटी, मिस्सौरी मे हुआ था। इसी सम्मेलन की एक प्रतिनिधि श्रीमती सैण्डी रसल ने डॉ. बर्नार्ड नैथानसन के द्वारा गर्भपात की बनाई गयी अल्ट्रासाउण्ड मूवी का जो विवरण दिया था, वह उन्ही के शब्दों में इस प्रकार है :-

गर्भ की वह मासूम बच्ची अभी दस सप्ताह की थी, व काफी चुस्त थी। हम उसे अपनी माँ की कोख में खेलते, करवट बदलते व अँगूठा चूसते हुए देख रहे थे। उसके दिल की धड़कनों को भी देख पा रहे थे और वह उस समय 120 की साधारण गति से धड़क रही थी। सब कुछ बिलकुल सामान्य था, किन्तु जैसे ही पहले औजार (सक्शन पम्प) ने गर्भाशय की दीवार को छुआ, वह मासूम बच्ची डर से एकदम घूमकर सिकुड़ गई और उसके दिल की धड़कन काफ़ी बढ़ गई। हालाँकि अभी तक किसी औजार ने बच्ची को छुआ तक भी नहीं था, लेकिन उसे अनुभव हो गया था कि कोई चीज उसके आरामगाह, उसके सुरक्षित क्षेत्र पर हमला करने का प्रयत्न कर रही है।

हम दहशत से भरे यह देख रहे थे कि किस तरह वह औजार उस नन्ही मुन्नी मासूम गुड़िया सी बच्ची के टुकड़े-टुकड़े कर रहा था। पहले कमर फिर पैर इत्यादि के टुकड़े ऐसे काटे जा रहे थे, जैसे वह जीवित प्राणी न होकर कोई गाजर मूली हो और वह बच्ची दर्द व पीड़ा से छटपटाती हुई सिकुड़-सिकुड़ कर घूम-घूम कर तड़पती हुई इस हत्यारे औजार से बचने का प्रयत्न कर रही थी। वह इस बुरी तरह डर गयी थी कि एक समय उसके दिल की धड़कन 200 तक पहुँच गयी। मैंने स्वयं अपनी आँखों से उसको अपना सिर पीछे झटकते व मुँह खोलकर चीखने का प्रयत्न करते हुए, जिसे डॉ० नैथान्सन ने उचित ही साइलैण्ट स्क्रीम मूक चीख या मूक पुकार कहा है, स्वयं देखा। अन्त में वह नृशंस व वीभत्य दृश्य भी देखा जब वह सँडसी को उसकी खोपड़ी तोड़ने के लिए तलाश रहा था और फिर दबाकर उस कठोर खोपड़ी को तोड़ रहा था; क्योंकि सर का वह भाग बगैर तोड़े सक्शन टयूब के माध्यम से बाहर नहीं निकाला जा सकता था।

हत्या के इस वीभत्स खेल को सम्पन्न करने में करीब 15 मिनट का समय लगा और इसके दर्दनाक दृश्य का अनुमान इससे अधिक और कैसे लगाया जा सकता है कि जिस डाक्टर ने यह गर्भपात किया था और जिसने मात्र कौतूहलवश इसकी फिल्म बनवा ली थी, उसने जब स्वयं इस फिल्म को देखा तो अपना मतब (क्लीनिक) छोड़कर चला गया और फिर वापस नहीं आया।[347]

---

[347] लेख . साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, एडवोकेट।

गर्भस्थ शिशु की हत्या व उसकी वेदना को दर्शाने वाली इस फिल्म साइलैण्ट स्क्रीम को जब भूतपूर्व अमेरिकी प्रेसिडैण्ट श्री रोनाल्ड रीगन ने देखा तो इससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने प्रत्येक अमेरिकी संसद सदस्य से इस फिल्म को देखने का अनुरोध किया। श्री रीगन एबोर्शन कानून को बदलने के इच्छुक थे।

गर्भस्थ शिशु की वेदना :- इस वैज्ञानिक युग में गर्भस्थ शिशु की हत्या (गर्भपात) की अनेक विधियाँ विकसित हुई हैं, जो हृदय को दहला देने वाली हैं। अलग-अलग समय में अलग-अलग विधि का प्रयोग गर्भपात के लिए किया जाता है। जैसे 12 सप्ताह तक के गर्भ में सर्वाधिक प्रचलित फैलाव व निष्कासन की विधि प्रयुक्त की जाती है। इस विधि से गर्भपात करने के लिए गर्भपात कराने वाली नारी के गर्भाशय के मुख को हेगर डायलेटर के द्वारा चौड़ा करता है, फिर एनाकुलम नामक उपकरण को गर्भाशय द्वार पर कसकर गर्भाशय की गहराई, चौड़ाई आदि का ज्ञान करता है। गर्भ की पूर्ण जानकारी के बाद योनिद्वार से सक्शन ट्यूब गर्भाशय के अन्दर डाला जाता है, जो शिशु के चारों ओर स्थित झिल्ली को छेद देता है, जिससे अम्बोटिक नामक तरल पदार्थ उसमें से बाहर निकल जाता है और फिर उस ट्यूब में लगी एक लम्बी पैनी नली उस गर्भस्थ शिशु के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करना प्रारम्भ कर देती है।

जैसे ही वह झिल्ली फटती है, वैसे ही शिशु को जो भय, तड़पन और वेदना होती है, उसे बताने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। झिल्ली फटने से द्रव निकलने के बाद जब सक्शन ट्यूब बच्चे को स्पर्श करती है तब वह भयभीत होकर दूर हटने की कोशिश करता है और उत्तेजित होकर बन्द कमरे में परेशान बिल्ली के समान उग्र रूप ले लेता है। वह खामोश चीखें मारता है, परन्तु जहाँ रक्षक ही भक्षक बना है, वहाँ सुनने वाला कौन? गर्भस्थ शिशु की चीत्कार वैसी ही होती है, जैसे अण्डे से निकलने के बाद चिड़िया का बच्चा घोंसले से नीचे गिरकर मुख खोलकर खामोश चीत्कार करता है। उक्त वक्त शिशु के दिल की धड़कन गति 140 से बढ़कर 200 प्रति मिनट हो जाती है। वैसी ही हालत में सक्शन ट्यूब शिशु को आगे-पीछे धकेलती है और फिर हाथ, पैर, सिर, धड़ आदि को अलग-अलग कर असह्य वेदना से युक्त शिशु

की जीवन लीला समाप्त कर देती है। हाथ, पैर, सिर आदि के काटते समय के दु:ख को वह अबोध निर्दोष शिशु ही जान सकता है, हत्यारे माता-पिता और डाक्टर नहीं। ऐसे गर्भपात होने वाले स्थान को हास्पिटल न कहकर स्लाटर हाउस कहना उपयुक्त होगा।

16 सप्ताह या उससे अधिक गर्भ वाले मामले में एम्मक्रेडिल विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि से गर्भपात करने पर एक लम्बी सुई को माँ के पेट में चुभोकर गर्भाशय में अति सांद्र लवण वाले एमकेडिल रसायन को भर दिया जाता है। धीरे धीरे गर्भाशय खुलता है और शिशु बाहर आ जाता है। इसके अलावा चूषणविधि, प्रीएटाग्लेण्डिन्स विधि और आक्सीटोसिन इंजेक्शन आदि देकर भी गर्भपात किया जाता है। इन सब विधियों में बच्चे को असह्य वेदना होती है। माँ और परिवार वालों के सामने भी अनेक आपत्तियाँ खड़ी हो जाती हैं। कभी-कभी तो शिशु की मौत के साथ माँ की भी मृत्यु हो जाती है।

गर्भपात से हानियाँ :- गर्भपात कराने में संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव की तो हिंसा होती ही है, साथ ही गर्भधारण होने की सम्भावना कम हो जाती है। स्वत: असमय गर्भ गिर जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। गर्भाशय में सूजन आ जाती है और संक्रामक रोग हो सकते हैं। मर्भाशय फट सकता है। गर्भपात से रक्तस्राव अधिक होने से मृत्यु संभव है। मासिक धर्म में गड़बड़ी हो जाती है, कमर दर्द की शिकायत बनी रहती है। श्वेत प्रदर नामक रोग हो जाता है। डाक्टर की असावधानी से आँतें कट जाती है। हृदय कमजोर हो जाता है। चूषण विधि के प्रयोग से आमाशय उलट जाता है। सदा रक्तस्राव होने लगता है। देश और समाज में व्यभिचार, हिंसा, अन्याय, अत्याचार को बढ़ावा मिलता है और पति-पत्नी, स्त्री-पुरुष के बीच संदेह का विष फैल जाता है।[348]

मदर टेरेसा ने कहा था कि गर्भपात गर्भाशय में बालक की हत्या ही है। उन्होने विश्व की सरकारो से गर्भपात कनूनन रद्द कर दिये जाने का अनुरोध भी किया था।

---

[348] ऐलक श्री निर्भयसागर जी का लेख (संस्कार सागर, दिसम्बर 2000, पृ० 15-16)

Stonaway, New Delhi 12-2-1994 में छपी न्यूज के अनुसार मदर टैरेसा ने अमेरिका में बढ़ती हुई हिंसा का सम्बन्ध भ्रूण हत्या से जोड़ा था। उन्होंने अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन, उपराष्ट्रपति गोरे, उनकी पत्नियों व अन्य तीन हजार श्रोताओं के समक्ष अपने भाषण में कहा था :-

"If we accept that a mother can kill over her own child, how can we tell other people not to kill each other? Any country that accepts abortion if not teaching its people to love, but to use any violence to get what they want."

अर्थात् यदि हम यह स्वीकार कर ले कि माँ अपने बच्चे की हत्या कर सकती है तो हम दूसंरों से कैसे कह सकते हैं कि वे एक दूसरे की हत्या न करें। जो भी देश गर्भपात को मान्यता देता है, वह अपनी प्रजा को प्रेम की शिक्षा न देकर अपनी इच्छा पूर्ति के लिए हिसा अपनाने की शिक्षा ही दे रहा है।[349]

शरीर की सज्जा के लिए मासूम जानवरों की हत्या[350] क्यों

कुछ ऐसे खाद्य पदार्थ होते हैं जो विशुद्ध शाकाहारी खाद्य पदार्थो के रूप में जाने जाते हैं, लेकिन इसके बावजूद इनके निर्माण में जानवरों के अवयवों का प्रयोग किया जाता है। जब भी कोई उत्पादक खरीदें, उसका लेबिल अवश्य पढ़ें। उदाहरण के तौर पर यदि किसी उत्पाद पर "नान डेयरी फेट्स लिखा है'' तो इसका अर्थ है कि उत्पाद ऐसे हैं, जिनके लेबिल पर आमतौर पर हर्बल या विशुद्ध होने का दावा किया जाता है या फिर कुछ दूसरी मार्केटिंग ट्रिक का प्रयोग किया जाता है।

एलैंटोइन :- यह पालतू पशुओं के शरीर में यूरिक एसिड होता है। इसका क्रीम व लोशन में प्रयोग होता है।

काइटिन :- मथे हुए भृंग, केकड़े और समुद्री सींगों का काइटिन कहा जाता है। इसे कडिशनरों, त्वचा को निखारने वाले उत्पादों व शैम्पुओ में प्रयोग किया जाता है।

कोलैजन :- यह बूचड़खानो से मिलने वाला उत्पाद है, जो जानवरो के ऊतकों से बनता है। इसे मोश्चराइजिंग क्रीमो में प्रयोग किया जाता है।

---

[349] गोपीनाथ अग्रवाल . गर्भपात उचित या अनुचित, पृ० 15-16

[350] लेखिका - मेनका गाधी।

इलैस्टिन :- यह बूचड़खानों या भेड़ के शरीर से मिलने वाले उत्पादों व हेयर स्प्रे में इस्तेमाल किया जाता है।

लिपसिलर :- यह शेलैक (हजारों कीट पतंगों के पिसे हुए शैल) से निर्मित होता है।

प्रिस्टैन :- यह ह्वेल व शार्क को मारने के उपरांत उनके मृत शरीर से बना तेल होता है। यह पदार्थ कुछ कास्मैटिक उत्पादों में ल्यूविकैंट्स के रूप में व लम्बे समय तक इन्हें खराब होने से बचाने के लिए प्रयोग किया जाता है।

शैम्पू :- कुछ शैम्पुओं में विटामिन बी का मिश्रण होता है। यह विटामिन बी जानवरों से प्राप्त पैनटेन व क्लीनिक होता है।

सिल्क आयल व सिल्क पाउडर :- यह रेशम के कीड़े को मारने के बाद प्राप्त होता हैं और त्वचा व बालों के लिए माश्चराइजर उत्पादों व स्टाइलिंग उत्पाद व फेस पाउडर में प्रयुक्त होता है।

सनटेन आयल :- इसमें समुद्री कछुओं से प्राप्त तेल मिला होता है।

टैलो कम्पाउण्ड्स :- इसमें बूचड़खाने से प्राप्त जानवरों की चर्बी का इस्तेमाल किया जाता है।

टूथपेस्ट व टूथ पाउडर :- अधिकतर टूथपेस्ट व टूथ पाउडरों में कैलशियम फास्फेट मिला होता है। कैलशियम फास्फेट यानी जानवरों की हड्डियों का चूरा जो बूचड़खानों से प्राप्त होता है। कुछ टूथपेस्टों में ग्लैसरीन का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर बबूल व प्रामिस। बाजार में कुछ विशुद्ध शाकाहारी टूटपेस्ट भी उपलब्ध हैं, जो काफी अच्छे हैं।

विदेशों में बने परफयूम :- इन सुगन्धित परफयूम्स में सुअरों की चर्बी का मिश्रण होता है। इनमें कस्तूरी भी मिला होता है। 3 आंस मस्क के लिए लगभग 1000 मस्कैरेटों को मारा जाता है। इन सभी उत्पादों को बिशुद्ध शाकाहारी बनाया जा सकता है। दरअसल हर उत्पादक अपनें उत्वाद के निर्माण के लिए सस्ता व आसान तरीका अपनाता है। जानबरों से मिलने बाले ये मिश्रण काफी सस्ते होते हैं और उत्पादक इनसे निर्मित उत्पादों को काफी महँगे दामों पर बेचते हैं। कुछ कास्मैटिक कम्पनियाँ तो अपना अधिकतर पैसा विज्ञापनों पर खर्च करती हैं। अमूमन उस राशि से भी ज्यादा जो वे अपने

उत्पादों के निर्माण में लगते हैं। यदि आप संसार को बदलना चाहते हैं तो शुरूआत घर से करना होगी। आप इनके उत्पादकों को मजबूर कर सकते हैं कि अपने उत्पादों में वे विशुद्ध शाकाहारी मिश्रणों का प्रयोग करें।[351]

कीटनाशकों का प्रकोप

अखिल भारत कृषि गोसेवा संघ की सूचना :-

1- सन् 1960 के अप्रेल माह मे उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में 150 लोगों की मौत कीटनाशक दवा से दूषित गेहूँ के खाने से हो गई थी।

2- सन् 1969-70 में मलनाड इलाके में गरीब मजदूरों और दलितों में लकवे से मिलता-जुलता रोग फैला था। प्रारम्भ में लोगों की पिण्डलियों और घुटनों के जोड़ों मे दर्द हुआ, फिर रोगी खड़ा होने लायक भी नहीं रह गया। ऐसी कीटनाशकों के अत्यधिक मात्रा में प्रयोग के कारण हुआ था।

3- रासायनिक कीटनाशको के कारण पंजाब में कपास की फसल सफेद मक्खियो का शिकार हो रही है, जिससे कपास की फसल नष्ट हो जाती है।

4- मुंबई में टंकी वाले दूध मे डाय एल्ड्रिन की मात्रा 96 भाग प्रति 10 लाख से अधिक आँकी गई है। 1997 मे मुंबई से कोचिन जा रहे पानी के जहाज़ में रखा आटा और चीनी दूषित हो गए थे। इसके कारण मे 106 मौतें हुई थीं।

5- हर साल छ: हजार करोड़ रूपए की फसल खेत या भण्डार घरों में कीड़ो के कारण नष्ट हो जाती है, जिससे कुल राष्ट्रीय उत्पाद मे कमी आयी है।

6- सन् 1950 मे जहाँ कीटनाशको की खपत 200 टन थी, अब बढ़कर 84 हजार टन हो गई है। इतनी अधिक कीटनाशक दवायें भारत के पर्यावरण मे प्रतिवर्ष जहर घोल रही है।

7 सन् 1960-61 मे केवल 6.4 लाख हेक्टेयर खेतों मे कीटनाशक डाले जाते थे। 1988-89 में यह रकबा 80 लाख हेक्टेयर हो गया और आज कोई डेढ करोड़ हेक्टेयर में जाने-अनजाने जहर उपजाया जा रहा है।

---

[351] पंजाब केशरी से साभार, अहिंसा सन्देश, 1 सितम्बर 2001

8 दिल्ली के नागरिकों के शरीर में कीटनाशक की मात्रा संसार में सबसे अधिक है। गेहूँ में 1.6 से 17.6 भाग प्रति दस लाख, चावल में 0.8 से 16.4 भाग प्रति दस लाख, मूंगफली में 3.0 से 16.1 भाग प्रति दस लाख, आलू में 68.5 तक डी०डी०टी० की मात्रा मौजूद है।

9- दिल्ली और आगरा जैसे शहरों में पेयजल सप्लाई का मुख्य स्रोत यमुना नदी के पानी में डी०डी०टी० और बी०एच०सी० की मात्रा जानलेवा स्तर तक पायी जाती है। यहाँ उपलब्ध शाकाहारी - मासाहारी दोनों ही किस्म की खाद्य स्रामग्री में भी इन कीटनाशकों की खासी मात्रा होती है।

10- औसत भारत के दैनिक भोजन में लगभग 0.27 मि०ग्रा० डी०डी०टी० पाई जाती है।

11- हैदराबाद के नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रिशन ने 1975 में ही चेता दिया था कि एडमिक एमिलियन आर्थराइटिस आफ मलनाड नामक रोग का कारण ऐसे धान के खेतों में पैदा हुए मछली, केकड़े खाना है, जहाँ कीटनाशकों का इस्तेमाल अधिक होता है।

12- महाराष्ट्र में बोतलबंद दूध के 70 नमूनों के डी०डी०टी० और डायरल्ड्रिन की मात्रा 4.8 से 6.3 प्रति दस लाख तक पायी गई, जबकि मान्य मात्रा 0.66 भाग है।

13- गौर तलब है कि सभी कीट, कीड़े या कीटाणु नुकसानदायक नहीं होते है, लेकिन बगैर सोचे समझे प्रयोग की जा रही इन दवाओं के कारण पर्यावरण मित्र कीट-कीड़ों की कई प्रजातियाँ जड मूल से नष्ट हो गई है, जिससे इनके द्वारा खेती को मिलने वाला अत्यावश्यक पोषक तत्त्व प्राप्त नहीं हो पाता है।

नोट- ऐसा अनुभव किया गया है कि जब जैविक खेती करते हैं तो कीटों का प्रकोप नही के बराबर होता है और कभी थोड़ा हो भी तो देसी गाय के गोबर एव गोमूत्र से बने रसायन से उपचार हो जाता है, इसलिए भारत में हजारो वर्षो से खेती करने पर भी हमारी भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रही, लेकिन जब से यूरिया एव कीटनाशक दवाईयो का व्यवहार प्रारम्भ हुआ है, नाना प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हो गई और गहराती जा रही है।[352]

---

[352] अहिंसा न्यूज, वाल्यूम 2(2) अप्रैल-जून 1999, पृष्ठ 2

गाय के गोबर से लाभ

ग्रामीण क्षेत्रों में गाय के गोबर को ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, इससे 68.6 मिलियन टन लकड़ी या लगभग 140 मिलियन 25 वर्ष पुराने वृक्षों की प्रतिवर्ष बचत होती है। यदि प्रतिवर्ष इतने वृक्ष कट जायँ तो कल्पना कीजिए कि ईकोलोजिकल ह्रास की क्या स्थिति होगी?

गोबर के इस्तेमाल से सरकार की रासायनिक खाद पर दी जाने वाली 9000 करोड़ रूपए की बचत होगी।

बैलों का प्रयोग-बैलों का प्रयोग खेती, जल निकालना, आयात-निर्यात तथा ग्रामीण उद्योगों में होता है। सेण्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चरल इंजीनियरिंग भोपाल के अध्ययन से प्रकट होता है कि पशुशक्ति के उपयोग से 23.75 मिलियन टन डीजल की बचत होती है। भारत मे डीजल की खपत 40 मिलियन टन है।[353]

भारतीय विज्ञान की खोज

(श्री एल्डुअस हक्सले)

वनस्पति में भी हमारी तरह आत्मा है

श्री एल्डुअस हक्सले कलकत्ता में वसु-विज्ञान मन्दिर को देखने गये थे, उस समय उन्होंने अपनी डायरी में कुछ नोट्स लिखे थे, यहाँ उसका सक्षिप्त सार दिया जा रहा है। वृक्ष के जीव भी हमारी ही तरह सब सुख-दु:ख का अनुभव करते हैं, तथा भोजन पान और श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

कलकत्ता के वस्तुविज्ञान मन्दिर देखने का उत्सुकतापूर्ण जब· सौभाग्य प्राप्त हुआ, तब हमारे साथ स्वयं सर वसुमहोदय निर्देशक थे। वे स्वयं सभी प्रयोग करके हम लोगों को सब कुछ सरलता पूर्वक समझा रहे थे। वे अपने सभी प्रयोग एक-एक करके उनका विश्लेषण कर रहे थे। एक· धूमिल काँच पर सुई द्वारा अंकित होती हुई पौधे की क्रमिक विकास रेखाये स्पष्ट दिख रही थी। बिजली के धक्के से ये पौधे सिहर उठते हुए साफ दिखते थे। उन पौधो

[353] वही पृ०1

का भोजनपान यन्त्रों में स्पष्ट अंकित हो रहा था उनको आक्सीजन लेते भी देखा गया, जिसे वे अत्यन्त धीरे-धीरे साँस द्वारा खींच रहे थे। साँस द्वारा एक निश्चित मात्रा तक पौधे शरीर में आक्सीजन (ओषजन) खिंच जाने के बाद सूचना के तौर पर "प्रदर्शक यन्त्र" की स्वंय चालित घण्टी बज उठती। यह घण्टी ठीक टाइपराइटर मशीन की उस घण्टी की ही तरह (जो पंक्ति समाप्त होने की सूचना देती है) बजा करती है। पौधे पर जब सूर्य की रोशनी पड़ती, तब यह घण्टी लगातार बजती रहती, किन्तु छाँह हो जाने के बाद यह घण्टी नहीं बजती थी।

पौधा जिस पानी में रखा रहता है, उस पानी में यदि एक बून्द भी कोई उत्तेजक पदार्थ मिला दिया जाता, तब यह घण्टी देर तक लगातार बजती रहती जो पौधे के दुखी होने की सूचना थी। इस पौधे के पास ही एक बड़ा सा पेड़ था। वसु ने लाकर इसे बगीचे में लगाया । उन्होंने यह भी बताया कि किसी पूर्ण विकसित पेड़ को एक जगह से दूसरी जगह लगाना प्रायः उस पेड़ के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। पेड़ दुःख के कारण मर जाता है। जैसे किसी आदमी के हाथ पाँव उसे बिना अचेत किये ही काट लिये जाँय तो वह असह्य यंत्रणा से मर जाता है।

उन्होंने उस पेड़ को उसकी मूल जगह से उखाड़ने के पहले क्लोरोफार्म द्वारा अचेत कर दिया और फिर नई जगह रोप दिया गया, तब उसने नई जगह में अपनी जड़ें आसानी से बिना किसी तकलीफ के जमा ली। लेकिन क्लोरोफार्म की अति मात्रा पौधे के लिये मनुष्य की तरह घातक होती है।

एक प्रयोगशाला में उन्होंने हम लोगों को यन्त्र दिखाया, जो पौधे के हृदय की धड़कनों का आलेखन किया करता है। यह यन्त्र स्वयं चालित ताप मापक यन्त्र के सिद्धान्त पर बना हुआ है, किन्तु यह उससे अत्यधिक ग्रहणशील और नाजुक है। पौधे के हृदय की धड़कन उसके तनों और रेशों पर उसका असर, यह सब एक घूमिल काँच पर लाखो लाख सूक्ष्म बिन्दुओं के रूप मे आलेखित होता है।

कैफीन या कपूर वनस्पति के हृदय पर भी ठीक उसी तरह की प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं, जैसे मनुष्य के हृदय पर। कोई उत्तेजक पदार्थ देने पर पौधे के हृदय की धड़कन बहुत तेज चलने लगती है। जिसका निर्देशन

ग्राफ में होने वाले आलेखन बिन्दुओं के अनपेक्षित विस्तार से होता है। एक पौधे की थाली में रखे हुए पानी में घातक मात्रा में क्लोरोफार्म मिला दिया गया। हमने देखा ग्राफ में मृत्युकालीन यन्त्रणा का आलेखन होने लगा और थोड़ी देर में ऊपर-नीचे होने के बाद आलेखन सुई शान्त हो गई। ठीक लगता था जैसे मृत्यु के बाद खामोशी छाई हो।

किसी पशु-पक्षी की मृत्यु का दृश्य देखकर हम पिघल जाते हैं, दया से द्रवित हो उठते हैं, क्योंकि हम उस यंत्रणा को अपनी आँखों से देखते हैं। वनस्पतियों के जीवन मरण को देखने के लिए हमारी नजर लाखों गुनी तेज होनी चाहिए। वसु महोदय के यन्त्र हम लोगों को सूक्ष्मतम खूबियों के साथ वे सारी चीजें दिखा देते हैं जो शक्तिशाली से शक्तिशाली सूक्ष्म दर्शक नहीं दिखा सकते।[354]

चाकलेट : एक मीठा जहर

दूध से बनाई जाने वाली चाकलेट जो देश भर में बालसमाज में अत्यन्त लोक प्रिय है, के माध्यम से भारी मात्रा में विषाक्त निकिल शरीर में पहुँच रहा है। पर्यावरणीय अनुसंधान प्रयोगशाला, लखनऊ के वैज्ञानिक डॉ० एम०पी० सक्सैना के अनुसार बच्चे द्वारा एक चाकलेट खाने से 600 से 1380 माइक्रोग्राम निकिल चाकलेट के माध्यम से शरीर में पहुँचता है जबकि अधिकतम सुरक्षात्मक सीमा मात्र चार माइक्रोग्राम की मानी जाती है।

डॉ० सक्सेना ने उपभोक्ता संरक्षण मूल्यांकन कार्यक्रम के अन्तर्गत बहुराष्ट्रीय तथा बड़ी कम्पनियो के उबरीज, नैस्ले, कैम्पको तथा अमूल के चाकलेटों के प्रत्येक के 50-50 नमूनों के रासायनिक परीक्षण और गहन अध्ययन के आधार पर उक्त निष्कर्ष निकाला है जिसके अनुसार इन चाकलेटों के माध्यम से अत्यधिक मात्रा मे निकिल शरीर मे पहुँच रही है, जो सुरक्षात्मक सीमा से कई गुनी अधिक है। निकिल मैसेजर (आर०एन०ए०) को अवरुद्ध करती है। परिणामस्वरूप विशेष रूप से बच्चो मे बीमारी और सक्रमण से बचाव की क्षमता घटती जाती है।[355]

---

[354] सन्मति सन्देश, अक्टूबर 1999 से साभार।

[355] लेखक डॉ० राजेन्द्र, एम०बी०बी०एस०, भिलाई (अमर उजाला, 22 अगस्त 1991)

दास प्रथा : मानवता पर कलङ्क

दास प्रथा मानवता पर कलंक है। यह प्रथा प्राचीन यूनान में थी। भारत में भी यह किसी न किसी रूप में रही है। इसीलिए तत्वार्थसूत्र में परिग्रह परिमाण के अन्तर्गत दासी दास का परिमाण करने की ओर इङ्गित किया गया है। समय-समय पर दास प्रथा के विरुद्ध आवाजें उठती रही हैं। भगवान् महावीर ने अपनी करुणा दृष्टि से दास प्रथा को समाप्त करने का निश्चय किया था। वे एक बार वत्स देश की कौशम्बी नगरी में पहुँचे और वहाँ के निकटवर्ती वन में ध्यान धारण किया। ध्यान से निवृत्त हुए तो नगरी में प्रवेश कर आहार की मुद्रा में चले।

नगर में एक सेठ के घर सती चन्दना तलघर में बन्दी की भाँति दिन व्यतीत कर रही थी। उसने सुना तीर्थकर वर्द्धमान मुनि नगर में पधारे हैं, उसके मन में भावना हुई कि मैं आहारदान दूँ, किन्तु वह तलघर की जेल में पड़ी थी, बेड़ियाँ उसके पावों में थीं। वह चिन्ता मे पड़ गई, परन्तु उसके पुण्य का उदय आया और उसकी भावना फलीभूत हुई। ठीक भी है-"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'' संयोग से मुनिराज उधर आ गए। चन्दना के बन्धन टूट गए और उसने शुद्धिपूर्वक नवधा भक्ति से उन्हें पड़गाहा । देने को उसके पास था ही क्या? वह तो प्रतिदिन मिलने वाले अन्न को ही शुद्ध बनाकर खाती थी । कोद्रव का भात तैयार था । उसी से उसने मुनि श्री का सत्कार किया । नभ से रत्नवृष्टि हुई । सारा नगर सती चन्दना की जय जयकार से गूंज उठा । लोगों ने उसकी प्रशसा की ओर उसे सम्मान दिया । शील के महात्म्य से सती चन्दना का मिट्टी का पात्र (शराब-सकोरा) सुवर्ण का बन गया था और कोद्रव के साधारण चावल शालि तंदुल बन गए और चदना ने तीर्थकर को आहार दिया ।

चन्दना थी तो चेटक राजा की पुत्री, किन्तु उद्यान में झूला झूलते समय एक विद्याधर उसका अपहरण कर ले गया था । जब वह उसके चगुल से छूटी तब दुर्भाग्यवश उस सेठ के घर दासी के रूप मे जाना पड़ा । वह सुन्दर थी सेठानी ने इस शका से कि कहीं यह मेरे पति की प्रेमपात्र न बन जाय, उसे तलघर मे रख दिया था । अभागिन चन्दना आज भाग्यशालिनी बन गई, उसने तपस्वी महावीर को आहार दिया । उसकी दासता की बेड़िया कट गई,

उसका उद्धार हो गया । सेठानी चन्दना सती के पैरों में पड़ गई और अपने दुर्भावों की क्षमायाचना करने लगी।[356]

दास प्रथा की एक झांकी अमेरिका में प्राप्त होती है अब्राहम लिंकन (जन्म सन 1809) के समय अमेरिका उत्तर से दक्षिण तक गुलामों का पड़ाव बना हुआ था । अफ्रीका के नीग्रो लोगों को सरे आम बेचना और उन्हें गुलामी में रखना जरा भी अनुचित नहीं माना जाता था । बड़े, छोटे, अमीर-गरीब सभी लोग गुलामों को रखने में अनहोनापन नहीं मानते थे। इसमें किसी को बुराई नहीं लगती थी । धार्मिक मनुष्य और पादरी आदि लोग गुलामी की प्रथा को बनाए रखने में आगा-पीछा नहीं करते थे, कुछ तो उत्तेजना देते और सब यही समझते थे कि गुलामी प्रथा भी ईश्वरीय नियम है और नीग्रो गुलामी के लिए ही जन्में हैं। केवल थोड़े से ही मनुष्य देख पाते थे कि यह व्यवसाय अत्यन्त दूषित और अधार्मिक है। जो इस प्रकार देख सकते थे, वे मौन साधे रहते थे, ताकत नहीं अजमाते थे। कुछ लोग गुलामों की स्थिति सुधारने में थोड़ा सा योग देकर सन्तोष कर देते थे। उस समय गुलामों पर जो अत्याचार किए जाते थे, उसका वृत्तान्त सुनकर आज भी हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उनको बाँधकर मारा-पीटा जाता था, उनसे जबर्दस्ती काम लिया जाता था, उन्हे जलाया जाता था, बेड़ियाँ पहनाई जाती थीं; और यह नहीं कि वह सब एक दो व्यक्तियों पर ही किया जाता हो, बल्कि सब पर यह बीतती थी। इस प्रकार के विचार जिन लोगों के दिलों में गहरी जड़ जमा चुके थे, उनके विरोध में खड़े होकर उनके विचारों को पलटने का और इसी व्यवसाय पर जिन लाखों मनुष्यों की आजीविका थी, उन मनुष्यों का विरोध मोल लेकर और उनसे लड़ाई करके गुलामों को बन्धन से छुड़ाने का निश्चय अकेले लिंकन ने किया और उसे पार उतारा, ऐसा कहा जा सकता है।

ईश्वर पर उसकी आस्था इतनी अधिक थी, उसका स्वाभाव इतना अधिक नरम था और उसकी दया इतनी गहरी थी कि रोज-रोज अपने भाषणों, लेखों और रहन-सहन के द्वारा वह लोगो के मन को बदलने लगा। अन्त मे लिंकन का पक्ष और उसके विरोधी ऐसे दो पक्ष हो गए और अमेरिका मे बड़ा भारी घरेलू युद्ध हुआ। लिंकन इससे जरा भी डरा नहीं। अब तक वह इतना

---

[356] प0 बदमचन्द्र शास्त्री तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर, पृ0 66-67

ऊँचा उठ चुका था कि उसे राष्ट्रपति का पद मिला चुका था। लड़ाई कई वर्ष, चलती रही, परन्तु लिंकन सन् 1858-59 से पूर्व ही सारे उत्तर अमेरिका में गुलामी की प्रथा बन्द कर चुका था। गुलामों के बन्धन टूटे। जहाँ-जहाँ लिंकन का नाम लिया जाता, वहाँ-वहाँ वह लोगों के दु:ख हरने वाले मनुष्य के रूप में पहचाना जाता था।

इतना ऊँचा उठने पर भी लिंकन सदैव विनम्र बना रहा। वह हमेशा यह मानता था कि जो प्रजा या व्यक्ति शक्तिशाली हो, उसे अपने बल का उपयोग गरीब अथवा कमजोर लोगों का दु:ख मिटाने के लिए करना चाहिए, न कि ऐसे लोगों को कुचलने के लिए। यद्यपि अमेरिका उसकी जन्मभूमि थी और वह स्वयं अमेरिकी था, फिर भी समस्त संसार अपना देश है, ऐसा वह मानता था। वह उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था और उसका व्यक्तित्व इतना श्रेष्ठ था, तिस पर भी कुछ दुष्ट लोग यह मानते थे कि गुलामी की प्रथा को हटाकर लिंकन ने बहुत लोगों को हानि पहुँचाई है। इसलिए एक बार जब यह निश्चित मालूम हुआ कि लिंकन नाटकघर से जाने वाला है तब उसको धोखे से मार डालने का षड्यन्त्र रचा गया। नाटकघर के पात्रों को ही फोड़ दिया गया था और एक मुख्य पात्र ने उसको गोली मारने का बीड़ा उठाया था। जब वह नाटक में अपनी विशेष कोठरी में बैठा था, तब वह दुष्ट मनुष्य उस कोठरी में गया, दरवाजा बन्द किया और लिंकन को गोली मार दी। यह भला मनुष्य चल बसा। जब लोगों ने यह भयानक घटना देखी तब किसी न्याय की अदालत मे जाने से पहले ही उन्होंने उस हत्यारे को चीर डाला। ऐसी करुण रीति से अमेरिका के इस महान् राष्ट्रपति की मृत्यु हुई।

हम यह कह सकते हैं कि लिंकन ने दूसरों के दु:ख मिटाने के लिए अपनी जिन्दगी न्योछावर कर दी। इसके बावजूद कहा जाता है कि लिकन अब भी जीवित है। उसका बनाया हुआ संविधान आज भी अमेरिका मे चल रहा है। जब तक अमेरिका का अस्तित्व है, तब तक लिकन का नाम प्रख्यात रहेगा। लिकन अमर हो गया है, इसका कारण उसका बड़प्पन, चतुराई अथवा धन नही था, उसकी भलाई थी। लिकन जैसे श्रेष्ठ तत्त्व जिस-जिस प्रजा मे होते हैं, अथवा होगे, वह प्रजा आगे बढ़ सकती है।[357]

---

[357] गाधी सस्मरण और विचार, पृ० 212-213 (महात्मा गांधी का लेख - अब्राहम लिकन)

रोम की दास प्रथा का एक दर्दनाक उदाहरण :- रोम में कोलेशियम नाम का एक प्राचीन आडीटोरियम है, जो अब खण्डहर मे तब्दील हो गया है, लेकिन ऐसा नहीं है कि आप उसके स्वरूप का जायजा न ले सकें। यह आडिटोरियम आज के स्टेडियम की तरह गोल आकार का है, जिसके किनारे बैठने की बहुमंजिली दीर्घायें बनी हुई हैं। मुख्य धरातल के नीचे छोटे-छोटे कमरे बने हुए हैं, जिसे आज के सन्दर्भ मे भूल-भुलैया कह सकते हैं। इस आडिटोरियम मे बैठकर रोम के सम्राट्, अभिजात्य वर्ग .के लोग, जनता नाटक तथा खेल देखा करते थे। लेकिन यह आडिटोरियम नाटकों के लिए प्रसिद्ध नहीं है, बल्कि यह प्रसिद्ध है गुलामों के द्वन्द्व युद्ध के लिए। यह प्रसिद्ध है- पाशविक विभीषिका मे आकर भाग लेनें वाले लोगो के सम्मिलन स्थल के रूप में। यहाँ हट्टे-कट्टे जवानों के द्वन्द्व युद्ध हुआ करते थे। यह युद्ध तब तक जारी रहता था, जब तक कि उसमें से एक गुलाम मार न दिया जाय। जो बच गया, उसका भाग्य, लेकिन कुछ दिनो बाद उसे फिर किसी अन्य गुलाम से लड़ना पड़ सकता था।

इसी तरह अभिनय होता था- "दास और शेर के बीच युद्ध का।'' कई दिनों के भूखे शेर को पिंजरे से निकालकर खुला छोड़ दिया जाता था और वहीं छोड़ दिया जाता था - किसी हट्टे-कट्टे गुलाम को। नीचे की भूल-भुलैया में गुलाम शेर से बचता फिरता था और शेर गुलाम को ढूंढता रहता था। जहाँ भी दोनों मे मुठभेड़ हो जाती थी, वहीं द्रोनों में युद्ध शुरू हो जाता था। लहु लुहान, क्षत-विक्षत शरीर से वह गुलाम उस भूखे शेर के साथ तब तक युद्ध करता रहता था, जब तक कि या तो वह उस शेर को मार दे या वह स्वय उस शेर के द्वारा मार न डाला जाय। सचमुच उस दृश्य को याद करके मन दहल जाता है। कहीं न कही उस समय के मनोरंजन के बारे में सोचकर दिल अकुला जाता है कि किस प्रकार एक हट्टा-कट्टा व्यक्ति लहु लुहान हो रहा है, गिर रहा है, पछाड़ खा रहा है। उसके शरीर से मांस लोथड़े टपक रहे है, पेट की अंतड़ियाँ अन्दर से निकलकर बाहर लटक रही हैं। उनसे खून टपक रहा है। पूरा शरीर पसीने और खून से लथपथ है। आँखें लाल है। चेहरे पर भय और आक्रोश की लकीरें है। वह भयभीत है। चिल्ला रहा है, चुनौती दे रहा है। रोम के सम्राट, आभिजात्य वर्ग के लोग तथा जनता

इन सबको देख रही है। साथ ही हर्षातिरेक से आह्लादित होकर तालियाँ बजा रही है। चीख ये भी रहे हैं, लेकिन खुशी के मारे, रोमांच के मारे।[358]

महिला उत्पीड़न

श्रम के सन्तुलन और कठोर राजनैतिक अनुशासन होने के बावजूद भी महिलाओं का सैक्स उत्पीड़न संसार भर में एक जैसा है। उदाहरणार्थ चीन में ग्रामीण क्षेत्रो की कम उम्र की किशोरियो की शहरो में नौकरानी या सेल्स गर्ल की नौकरियो का प्रलोभन देकर लाने वाले दलालों कम नहीं है। वास्तव में यह धंधा एक व्यवसाय का रूप ले चुका है और पुलिस सूत्रों के अनुसार 1999 में पुलिस ने 88 हजार नव युवतियों को ऐसे दलालो के चंगुल से छुड़ाया है, जिन्हें ग्रामीण क्षेत्रों से नौकरियों का प्रलोभन देकर शहरों में वधुओं के रूप मे बेच दिया गया। बीजिंग रेलवे स्टेशन के पीछे चीन का चोंगवेनमेन चौक इस हाट के लिए प्रसिद्ध स्थान है।

ग्रामीण चीन मे अभी भी काफी गरीबी है। खेतो-खलिहानों और अन्य क्षेत्रों में इन किशोरियों को बहुत कठिन श्रम करना पड़ता है। इसी कारण शहरी तड़क-भड़क के प्रलोभन और नौकरी मिलने की आशा में ऐसी किशोरियाँ प्रायः शहरों की ओर पलायन करती है। अधिकांशतः इन किशोरियों को नौकरियो के स्थान पर बलात् वधू के रूप मे घरेलू काम के लिए लगा दिया जाता है। ऐसी बलात् वधुयें बच्चे पैदा होने पर अपने थोपे गए पति के साथ शेष जीवन-यापन के लिए मजबूर होती है। अत्यधिक गरीबी के कारण इनके परिवारीजन इनका पालन-पोषण नहीं कर पाते हैं। आँकड़ो के अनुसार 15 से 44 वर्ष तक की आयु वर्ग की लगभग दो लाख महिलाये प्रतिवर्ष आत्म हत्या कर लेती है।[359]

सड़कों पर पलने वाले ये बच्चे

देश मे सडकों पर पलने वाले बच्चो की सख्या मे निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है। इनमे से पचहत्तर प्रतिशत बच्चो की नशाखोरी की आदत पड चुकी है। इन उपेक्षित बच्चो के साथ यह मजबूरी भी है कि उन्हें जबरन नशेड़ी

---

[358] कादम्बिनी - अक्टूबर 1999 पृ० 137-138

[359] कादम्बिनी- फरवरी 2000 रजन जैदी का एक लेख . जहाँ आज भी औरते बिकती है।

बनाया जाता है और फिर नशाखोरी से ग्रस्त कर उनका भरपूर यौन-शोषण किया जाता है। न केवल बालिकाओं का बल्कि बालकों का भी यौन-उत्पीड़न होता है। ये बच्चे एड्स जैसे भयंकर रोग का शिकार हो रहे हैं।

एक विश्वस्त आकलन के अनुसार भारत के दस बड़े शहरों में ही लगभग 4.75 लाख बच्चे सड़क पर पलकर बड़े होते हैं। ये बच्चे तम्बाकू, कच्ची शराब, ब्राउन शुगर, भांग, गांजे तथा चरस जैसे नशीले नदार्थो का सेवन बड़ी मात्रा में करते हैं। सबसे खतरनाक तथ्य यह है कि छह वर्ष के बच्चे तक नशीले पदार्थें का सेवन करने लगे हैं। इन बच्चों में नशे की आदत इतनी बढ़ गई है कि छह साल मे ही तम्बाकू की शुरूआत करके आठ-दस साल की उम्र तक आते-आते वे शराब, चरस जैसी नशीली वस्तुओं के सेवन के आदी हो जाते हैं। इनके जाल से निकलकर सामान्य जीवन बिता पाना एक प्रकार से असम्भव सी बात होती है।[360] इन्हें बचाना समाज का उत्तरदायित्व है।

युद्ध और अहिंसा

युद्ध के द्वारा हिंसा कुछ समय के लिए शान्त भले ही हो जाय, हमेशा के लिए उसकी परिसमाप्ति नहीं होती है। अन्याय मात्र के प्रतीकार के दो प्रकार हैं। एक है- अन्याय करने वाले का सिर तोड़ना और ऐसा करते हुए अपना भी सिर तुड़वाना। ससार में सभी शक्तिमान् लोग इसी मार्ग का अवलम्बन करते है। प्रत्येक स्थान पर युद्ध होता है, लाखो करोड़ों मनुष्य मारे जाते हैं और इसके परिणाम स्वरूप राष्ट्र की उन्नति तो नहीं होती, अवनति अवश्य होती है। युद्ध क्षेत्र से जीतकर लौटे हुए सैनिक विवेक शून्य हो जाते हैं और उनकी बदौलत समाज में अनेक उपद्रव होने लगते हैं। इसके उदाहरण के लिए दूर नहीं जाना होगा। बोअर युद्ध में जिस समय ब्रिटिश सरकार मेफेकिंग में विजयी हुई, उस समय समस्त इंग्लैंड विशेषकर लन्दन नगर यहाँ तक हर्षोमत्त हो गया कि छोटे बड़े सभी पुरुष रात-दिन नाचते ही रहे। उन्होंने भर पेट शरारत कीं, भरपेट उछलकूद की और दुकानों में शराब की एक बूँद भी बाकी न रहने दी।

---

[360] कादम्बिनी : जुलाई 1999 डॉ० शुभकर बनर्जी का लेख - सड़कों के बच्चों पर शोषण की दोहरी मार।

इन कई दिनों का वर्णन करते हुए "टाइम्स ने लिखा है कि ये दिन लोगों ने जिस रीति से बिताए उसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता, केवल इतना ही कहा जासकता है कि "द इंग्लिश नेशन वेंट अमेफेकिंग"- अंग्रेज जाति को मेफेकिंग उन्माद हो गया। विजयी राष्ट्र घमण्ड के कारण बदमिजाज हो जाता है, ऐश आराम में रहने का आदी हो जाता है, और कुछ काल तक देश में शान्ति दीख पड़ती है सही परन्तु कुछ ही दिनों बाद यह बात निश्चित रूप से मालूम होने लगती है कि युद्ध का अंकुर नष्ट नहीं हुआ, अपितु सहस्रों गुना अधिक पुष्ट और बलवान् हो गया है। युद्ध द्वारा विजय प्राप्त करके कोई देश न कभी सुखी हुआ है और न होगा। वह देश उन्नत नहीं होता, बल्कि और गिरता है। वास्तव में उस राष्ट्र की जीत नहीं हार होती है और फिर यदि हमारा कार्य या उद्देश्य भ्रमपूर्ण हुआ तो ऐसे युद्ध से दोनों पक्षो की भयंकर हानि होती है।[361]

जैन साहित्य में भरत और बाहुबलि का आख्यान अत्यन्त प्रसिद्ध है। दोनों भाई-भाई थे, किन्तु बड़े भाई भरत बाहुबलि को अपने अधीन करना चाहते थे, अतः युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। दोनों ही ओर के मुख्य मुख्य मन्त्री एकत्रित होकर परस्पर इस प्रकार विचार करने लगे कि क्रूर ग्रहों के समान इन दोनों का युद्ध शान्ति के लिए नहीं है, क्योंकि ये दोनों ही चरमशरीरी हैं, इनकी कुछ भी क्षति नहीं होगी, केवल युद्ध के बहाने से दोनों ही पक्ष के लोगों का क्षय होगा। इस प्रकार निश्चय कर भारी युद्ध के संहार से डरकर मन्त्रियों ने दोनों की आज्ञा लेकर धर्मयुद्ध करने की घोषणा कर दी। उन्होंने कहा कि मनुष्यो का संहार करने वाले इस कारणहीन युद्ध से कोई लाभ नहीं है: क्योंकि इसके करने से बड़ा भारी अधर्म होगा और यश का भी विघात होगा। यह बल के उत्कर्ष की परीक्षा अन्य प्रकार से भी हो सकती है, इसलिए तुम दोनो का ही परस्पर तीन प्रकार का युद्ध हो। इस युद्ध में जो पराजित हो, वह तुम दोनो को भौंह के चढ़ाए बिना ही सरलता से सहन कर लेना चाहिए तथा जो विजयी हो, वह भी अहंकार के बिना तुम दोनों को सहन करना चाहिए; क्योंकि भाई भाइयों का यही धर्म है। इस प्रकार जब समस्त राजाओ और मन्त्रियों ने बडे आग्रह के साथ कहा तब कहीं बड़ी

---

[361] गांधी : सस्मरण और विचार, पृ० 280

कठिनता से उद्धत हुए उन दोनों भाईयों ने वैसा युद्ध करना स्वीकार किया। इन दोनों के बीच जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहुयुद्ध में जो विजय प्राप्त करेगा वही विजयलक्ष्मी का वरण करेगा।

समझौते के अनुसार तीनों ही प्रकार के युद्ध हुए, जिनमें बाहुबलि विजयी हुए। इस तरह यह विश्व का सबसे पहला अहिंसक युद्ध था। इसमें पराजित होकर चक्रवर्ती भरत ने बाहुबलि पर चक्र चला दिया, परन्तु उनके अवध्य होने के कारण वह उनकी प्रदक्षिणा देकर तेजरहित हो उन्हीं के पास ठहरा। बाहुबलि को वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे विचार करने लगे- यह साम्राज्य फलकाल मे दु:ख दने वाला है और क्षणभंगुर है, इसलिए इसे धिक्कार हो। यह व्यभिचारिणी स्त्री के समान है, क्योंकि जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री एक पति को छोड़ कर अन्य के पास चली जाती है, उसी प्रकार यह साम्राज्य भी एक पति को छोड़कर अन्य के पास चला जाता है। यह राज्य प्राणियो को छोड़ देता है, किन्तु अविवेकी प्राणी इसे नही छोड़ते है, यह दु:ख की बात है। विषयों में आसक्त पुरुष इन विषय जनित सुखों का निन्द्यपना, अपकार, क्षणभंगुरता और नीरसपने को भी नहीं सोचते हैं। विष खा लेना अच्छा है; क्योंकि वह एक भव मे ही प्राणियो को मारता है, किन्तु विषय सेवन करना अच्छा नहीं; क्योंकि विषय प्राणियो को अनन्त बार पुन: पुन: मारते हैं।[362]

हे भरत, आज तूने जिसे जीता है और जो पाप से भरी हुई है, ऐसी इस राजलक्ष्मी को तू अपने ही द्वारा उपभोग करने योग्य तथा अविनाशी समझता है। जिसका तूने आदर किया है, ऐसी यह राजलक्ष्मी अब तुझे ही प्रिय रहे; क्योंकि बन्धन सज्जन पुरुषों को आनन्द के लिए नहीं होता है। हम कष्टरहित तपरूपी लक्ष्मी को अपने अधीन करना चाहते है। मैं विनय से च्युत हो गया था, आप मुझे क्षमा कीजिए। इस प्रकार कहकर बाहुबलि ने अपने पुत्र महाबली को राज्यलक्ष्मी सौंप दी और स्वय भगवान् ऋषभदेव के चरणों की आराधना करते हुए जैनी दीक्षा धारण कर ली। भरत लज्जित हो गए। युद्ध के ऊपर अयुद्ध की विजय हो गयी। अहिसात्मक प्रतिरोध प्रतिपक्षी का हृदय

[362] आदिपुराण 36वाँ पर्व

परिवर्तन कर देता है, उसे झुका देता है। आधुनिक युग में सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा आन्दोलन इसके उदाहरण हैं।

महाराज सत्यन्धर ने भी युद्ध की निःसारता का अनुभव कर सल्लेखनापूर्वक मरण किया। पाण्डव भी राज्य वैभव छोड़कर विरक्त हो शत्रुंजय पर्वत पर समाधि को धारण कर परमगति को प्राप्त हुए थे। इस प्रकार इतिहास और पुराणों में अनेक दृष्टान्त हैं, जहाँ युद्ध पर या हिंसा पर अहिंसा की विजय दिखलाई गई है। किसी ने ठीक ही कहा है :-

तुम शान्ति नहीं ला पाए युद्धों के द्वारा।

अब फेक जरा तलवार, प्यार लेकर देखो।।

सच मानों निश्चय विजय तुम्हारी ही होगी।

दुश्मन को अपना हृदय जरा देकर देखो।।

साबूदाना के निर्माण में भारी हिंसा

न तो साबूदाना चावल से बनता है न ही किसी पौधे के फलों अथवा बीज से। इसका निर्माण सकरकन्दी से किया जाता है। तमिलनाडु के इस क्षेत्र में सकरकन्दी की खेती भारी मात्रा में की जाती है जिसका उपयोग साबूदाना निर्माण में होता है।

सकरकन्द की ऋतु में कारखाने वाले इसे खरीदकर इकट्ठा कर लेते हैं और बाद में इसका मावा बना लेते हैं। मावा बनाने की प्रक्रिया बहुत ही लोमहर्षक है। तैयार गूदे को खुले मैदान में 40-50 फीट की कुंडयों में डाल दिया जाता है। और उसे कई महिनों तक सडाया जाता है। इस तरह हजारों टन गूदा खुले आसमान के तले पड़ा रहता है। रात में कुंडियों पर बड़े-बड़े बल्ब जलाये जाते हैं, जिसके कारण अनेक जहरीले जीव जन्तु सकरकन्द के गूदे में गिरकर दम तोड़ देते हैं।

दूसरी ओर गूदे में पानी डालते रहते हैं, फलस्वरूप उसमें सफेद रंग की करोड़ों लम्बी-लम्बी लटें (इल्ली) पड़ जाती हैं, ठीक वैसी ही जैसे प्रायः संडास की गटरों में उत्पन्न होती है। इतना ही नहीं बाद में छोटे-छोटे श्रमिक बच्चों को इन कुंडियों में उतारा जाता है। पैरों से रोंदने की प्रक्रिया में लटें मर

जाती हैं। यह प्रक्रिया चार छह महिनों तक बार-बार चलती है, तत्पश्चात गूदे को निकालकर मशीनों में डाला जाता है, जो साबूदाने के रूप में बाहर निकलता है। सुखाये जाने के पश्चात् इन पर ग्लूकोस और स्टार्चस बने पाउडर की पालिस कर आकर्षक बनाया जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि साबूदाने के निर्माण में भारी जीव हिंसा होती है, परिणाम स्वरूप यह फलाहार तो हो ही नहीं सकता है। सच मानों तो इसके निर्माण की उपरीक्त वर्णित प्रक्रिया इतनी घिनौनी है कि इसे खाद्य पदार्थ मानना ही गलत होगा।[363]

वन्य जीवन संरक्षण

हमारी लोक संस्कृति मे देवी-देवताओं का सम्बन्ध किसी न किसी पशु के साथ जोड़ा गया है। भारतीय कला और शिल्प मे पशु जगत् के प्रति स्नेह की झलक मिलती है, किन्तु पशुओ की सुरक्षा और सरक्षण के प्रति हम उदास होते जा रहे हैं। भारतीय वन्यजीवन संरक्षण सोसायटी के अनुसार 1994 से 1998 के बीच 285 बाघों का या तो शिकार किया गया अथवा ये अस्वाभाविक परिस्थितियो में मृत पाए गए। उड़ीसा के नन्दन कानन चिड़ियाघर में 12 बाघों की मौत हो गई। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि लगभग एक हजार चीते शिकारियों के हत्थे चढ़ जाते है। यदि इसी दर से चीतो की संख्या घटती रही तो इस दशक के खत्म होते-होते वे लुप्त प्राय हो सकते हैं। तेजी से खत्म हो रही प्रजातियो का शिकार एक विश्वव्यापी समस्या है। लोगों को यह समझना होगा कि वन्य जीवों की सुरक्षा केवल चिड़ियाघरों और प्रसिद्ध अभयारण्यो की जिम्मेदारी नहीं है; क्योंकि लगभग 60 प्रतिशत वन्य जीव सरक्षित क्षेत्र के बाहर आते हैं। मानव जनसंख्या की वृद्धि, नगरों शहरों और गाँव के विस्तार तथा वनभूमि के लगातार आतक्रमण के कारण पशुओ की जीवित प्रजातियो के एकान्त स्थल तेजी से घट रहे है। अतः कानून प्रवर्तन एजेन्सियो को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जो लोग वन्य जीवन उत्पादो के शिकार और अवैध व्यापार उनके निवास स्थलो के विनाश तथा इस प्रकार के अन्य अवैध कार्यो मे लगे है, उन्हें पकड़ा जाय और तुरन्त कठोर दण्ड दिया जाय। इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का भ्रष्टाचार सहन

---

[363] ले० महेश शर्मा, ग्वालियर, जैन मित्र - 18-10-2001

नहीं किया जाना चाहिए। संरक्षण क्रिया-कलापों से जुड़े कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करनी चाहिए। उन्हें बेहतर प्रशिक्षण, सुविधायें और उपकरण उपलब्ध कराना चाहिए। पर्यटन से प्राप्त राजस्व का उपयोग संरक्षण हेतु उपलब्ध संसाधनों के संवर्द्धन में किया जाना चाहिए। वन्य जीवों पर आए नए खतरों की ओर भी ध्यान देना चाहिए। ये खतरे हैं- विषैले रसायन और कीटनाशक आदि। वन्य संरक्षण से जुड़े अनेक गैर सरकारी संगठनों को और अधिक सरकारी और सामाजिक मान्यता तथा सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए। टी०वी० चैनल - डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक तथा एनीमल प्लेनैट के कार्यक्रमों के माध्यम से पशु संरक्षण के प्रति लोगों को जागरूक बनाना चाहिए।

सूक्ति

क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपनो जाया।

सबको लोहू एक है, साहिब फरमाया।

पीर पैगम्बर औलिया, सब मरने आया।

नाहक जीव न मारिए पोषन को काया।।

सब का कहना है कि सब प्राणियों का खून एक है, चाहे वह बकरी हो, गाय हो या अपनी सन्तान हो। पीर, पैगम्बर और औलिया सब एक दिन मर जायेंगे। इसलिए अपने शरीर का पोषण करने के लिए जीव को व्यर्थ मत मारिए।

-गुरु नानक देव

पर्यावरण की रक्षा कीजिए

सृष्टि का जीवन सापेक्ष हैं। जड़ और चेतन समस्त पदार्थ एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक मे परिवर्तन से दूसरे में परिवर्तन अवश्यंभावी है। पृथ्वी; अग्नि, वायु, वनस्पति तथा अन्य जीव जगत् में सन्तुलन आवश्यक है। कुछ वर्षो से पृथिवी का सन्तुलन बिगड़ रहा है; क्योंकि मनुष्य ने प्रकृति के साथ अन्धाधुन्ध छेड़खानी की है। धरती की खानों से कोयला, पैट्रोलियम तथा अन्य खनिज पदार्थो के दोहन से सन्तुलन बिगड़ा है। कल-कारखाने से

निकली हुई दूषित हवा ने वायुमण्डल को प्रभावित किया है। औद्योगीकरण के पहले (1800 ई०) के मुकाबले आज कार्बन डाइ आक्साइड गैस की मात्रा में 26 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वातावरण मे जलाशय, धूल, धुआँ, नाइट्रोजन आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड व क्रिओन आदि गैसों की मात्रा बढ़ना प्रदूषण का मुख्य कारण है। पृथ्वी के वातावरण मे रासायनिक क्रियायें, वाहनों का धुआँ, कठोर ध्वनि का उत्सर्जन, कोयला व डीजल आदि के जलने से उत्पन्न गैसें तथा परमाणु परीक्षण से उत्पन्न रेडियोधर्मिता ने पृथ्वी के ताप में वृद्धि कर दी है। ओजोन गैस की परत जो पृथ्वी की सतह से 50 किलोमीटर ऊपर है, में छेद का होना ताप वृद्धि की ओर सकेत करता है। सूर्य आने वाली अत्यन्त घातक अल्ट्रा वायलेट किरणें, जिनका लगभग 90% ओजोन परत सोख लेती है, अब इस छेद से सीधे पृथ्वी पर आ जायेंगी। इन किरणो से विभिन्न प्रकार के चर्म रोग, त्वचा का जलना आदि कष्टदायक बीमारियाँ फैलने की सम्भावना है।

विशेषज्ञों के अनुसार जिस बम से हिरोशिमा की तबाही हुई थी, उससे भी करोड़ों गुना अधिक शक्तिशाली नाभिकीय शस्त्र दुनियाँ के बड़े राष्ट्रों के पास हैं। हिरोशिमा को नष्ट करने वाले बम की क्षमता 12500 टन (टी०एन०टी०) थी, जबकि इस समय बड़े राष्ट्रों के हथियार भण्डारों में 12000 से 15000 मेगावाट वाले नाभिकीय शस्त्र भरे पड़े हैं। यदि इन शस्त्रों का प्रयोग हो जाय तो 22-50 लाख टन धुआँ हवा में भर जायेगा। वह सारे उत्तरी भूभाग और सूरज की 90% रोशनी को कई दिनों तक घेरे रहेगा। आधी धरती काली रात जैसी हो जायगी। दूर-दूर तक अन्धकार और ठंडक होगी। बड़े-बड़े भूकम्प आयेंगे। जहाँ कुछ आदमी, पशु पक्षी जीवित रह जायेंगे, वहाँ उन का जीवन मौत से भी बुरा हो जायगा।

आज स्थान-स्थान पर वन काटे जा रहे हैं। उनमें रहने वाले वन्य पशुओ की प्रजातियाँ नष्ट हो रही हैं। भारतवर्ष मे स्तनपायी जीवों की 76 प्रजातियाँ, पक्षियो की 40 प्रजातियाँ, जल-स्थल, उभयचर एव सरीसृप जीवो की 23 प्रजातियाँ और कीट पतंगो की 131 प्रजातियाँ सङ्कटापन्न वन्य जीव प्रजातियों मे बाघ, सिंह, गैडा, हाथी, कस्तूरी मृग, मणिपुरी हिरण, बारहसिंघा, काला हिरण, घड़ियाल, कछुआ, अजगर, सफेद पंख जंगली बतख आदि के

नाम उल्लेखनीय हैं। वन्य जाति को संरक्षण प्रदान करना मानव जाति के भविष्य से जुड़ा है। समस्त जीव प्रजातियाँ एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि किसी एक प्रजाति को पहुँचने वाली क्षति अन्य सभी को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है। यदि किसी वन्य जीव की प्रजाति लुप्त हो गई तो इसका अर्थ होता है कि हमारा पर्यावरण उस अंश तक जीवन के अनुपयुक्त हो गया। मनुष्य भी पर्यावरण पर निर्भर है, अतः इससे उसे भी क्षति पहुँच सकती है। विशाल बाँध, सड़कें एवं रेलवे लाइने, उद्योग स्थापित करने के लिए वन क्षेत्रों का सफाया, रासायनिक खादों एवं कीटनाशक दवाओं का अत्यधिक प्रयोग इसी प्रकार के परिवर्तन हैं, जिससे पर्यावरण में असन्तुलन आया है। नदियो का पानी दूषित हो रहा है, कचरे का ढेर लग रहा है, मनुष्य अधिक मासाहारी और राक्षसी प्रवृत्ति का होता जा रहा है। इन सबके दुष्परिणाम भी सामने आ रहे हैं। फलतः मनुष्य पर्यावरण की सुरक्षा के लिए चिन्तित है। इसके लिए जगह-जगह सम्मेलन आयोजित किए जा रहे हैं। ब्राजील के सुन्दर नगर 'रियो डि जेनेरियो' में पृथ्वी की रक्षा हेतु एक वृहद सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें 184 देशो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। इससे यह आशा की जारही है कि पृथ्वी पर मडराते खतरो से राहत मिलेगी। पर्यावरण की सुरक्षा हेतु जो सुझाव आए है धीरे-धीरे लोगो ने उन पर अमल करना प्रारम्भ कर दिया है।

जैन आचार्यो ने पर्यावरण की सुरक्षा और प्रकृति सतुलन हेतु प्रारम्भ से ध्यान दिया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है -"वत्थु सहावो धम्मो"- वस्तु का स्वभाव ही धर्म है अर्थात् जो वस्तु जैसी है, उसको उसी रूप में रहने देना यही धर्म है।

आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है -

देशयामि समीचीनं धर्म कर्मनिवर्हणम्।

ससार दुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।।

अर्थात मै उस समीचीन धर्म का उपदेश दे रहा हूँ जो कि कर्म को नष्ट करने वाला है तथा प्राणिमात्र को संसार के दुःख से छुड़ाकर उत्तम सुख में धारण कराता है। जैनाचार्यो की दृष्टि में यह बात छिपी नहीं थी कि प्राणीमा. में से कोई भी दुःख पाता है, कष्ट पाता है तो इससे विषमता पैदा होती है ंर

किसी प्रकार का सन्तुलन कायम नहीं रह पाता है। भगवान् महावीर के प्रवचन का उद्देश्य था - "सव्वजीवरक्खणदयट्ठयाए"। उन्होंने चाहा था कि जगत् मे सभी जीव सुख से रहें, कोई किसी से घबराए नहीं, सभी जीवों की रक्षा हो।

आचार्य उमास्वाति ने सूत्र दिया था - "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" अर्थात् जीवों का कार्य परस्पर उपकार करना है। तत्वार्थसूत्र मे प्रत्येक द्रव्य का उपकार वर्णित किया है। जैसे - आकाशस्यावगाह:[364] -आकाश का उपकार अवगाह देना है। "वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य"[365] अर्थात् काल द्रव्य का उपकार वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व है। "गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकार:"[366]।अर्थात् धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार जीव और पुद्गलो की गति और स्थिति में सहायक होना है। "शरीर वाड्.मन: प्राणापाना: पुद्गलानाम्"[367], सुख जीवितमरणोपग्रहाश्च"[368] अर्थात् शरीर, वचन, मन, प्राण और अपान तथा सुख, दु:ख जीवन और मरण ये पुदगल द्रव्य के उपकार हैं इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य की अपनी महत्ता है, अपना उपकार है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु मूल्यवान् है, उसकी रक्षा अनिवार्य है।

पर्यावरण की रक्षा हेतु जैनाचार्यो ने सयम का उपदेश दिया। यदि ससार सुरक्षित है तो सृष्टि का सन्तुलन नही बिगड़ेगा। सयम टूटेगा तो असन्तुलन अनिवार्य है। सयम धर्म का ही एक रूप है। कहा गया है-

धम्मो मगलमुक्किट्ठ अहिसा सजमो तवो।

देवा वि त नमस्संति जस्स धम्मे सया मणो।।

अर्थात् धर्म उत्कृष्ट मड.गल है, उसके रूप हैं- अहिसा, सयम और तप, जिसके मन मे सदा धर्म है उसे देव भी नमस्कार करते है। सयम के दो रूप है- (1) इन्द्रिय सयम और (2) प्राणि सयम। पाँच इन्द्रियो और मन को वश मे करना इन्द्रियसंयम है और षट्काय के जीवो की रक्षा करना प्राणिसयम है। मनुष्य अपनी इन्द्रियों का दास हो रहा है। इन्द्रियो की तृप्ति के लिए वह

---

[364] तत्वार्थसूत्र 5/18

[365] वही 5/22

[366] वही 5/17

[367] वही 5/19

[368] वही 5/20

अत्याचार, अनाचार, कदाचार कुछ भी करने को उतारू हो जाता है। उदाहरणार्थ जिह्वा इन्द्रिय की लोलुपता के कारण वह प्राणि को मारकर उसका मास तक खा जाता है। जो एक जरा से तृण के स्पर्श से दु:खी होता है, वह दूसरे जीवों के शरीर पर किस प्रकार शस्त्र चलाता है।[369]

यदि किसी से यह कहा जाए कि हम तुझे समस्त रत्नों से परिपूर्ण पृथ्वी को देते हैं, इसके बदले तू मर जा तो कोई भी मरना नहीं चाहता है। इसलिए कहना चाहिए कि ससार में समस्त जीवों को अभयदान से बड़ा दान नहीं है। अभयदान सबसे उत्कृष्ट दान है, दया बिना अन्य दान व्यर्थ है।[370]

मनुष्य तो किसी प्रकार अपनी रक्षा भी कर लेते हैं, किन्तु पशु मूक प्राणी हैं, वे पूरी तरह अपनी रक्षा भी नहीं कर सकते। अत: जैनाचार्यो ने पशुओं के प्रति की गई हिसा का निषेध कर उनके बन्ध, वध, छेद, अतिभारारोपण तथा अन्न पान निरोध का निषेध किया है। जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता है, उसके व्रत मे दोष लगता है।[371] भट्टारक सकलकीर्ति ने कहा है :-

शत्रवो बालकानार्य: पशवो मण्डलादय:।

मुष्टियष्ट्यादि घातैश्च न हन्तव्या हि श्रावकै:।। प्रश्नो०श्रा० 12/112

श्रावको को लकड़ी, मुट्ठी आदि से शत्रु, बालक, स्त्री अथवा कुत्ते आदि पशुओं को कभी नहीं मारना चाहिए।

जो प्राणी अपने तथा दूसरों के सुख दु:खादि का विचार किए बिना ही लकड़ी आदि से अन्य जीवों को मार देते हैं, वे मनुष्य होकर भी राक्षस के

---

[369] तृणेव स्पर्शमात्रेण किञ्चिद् दु:खमवैति य:।
स कथ परजीवानामङ्गे शस्त्र निपातयेत्।। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 12/124

[370] यदिकश्चिदहोदत्ते मृत्यर्थ कस्यचिन्महीम्।
सर्वा रत्नादिपूर्ण स तथापीच्छति नो मृतिम्।।
अतो विश्वागिना लोकेऽभयदानात्पर न च।
विद्यते परमं दानं वृथा दानं दया बिना।। मूलाचार प्रदीप 1/113-114

[371] बन्धवच्छेदातिभारारोपणान्नपान निरोधा:।। तत्त्वार्थसूत्र 7/25

समान हैं।[372] गृहस्थ लोगों को अपना बैठना, सोना, चलना आदि सब काम आँखों से देखकर करना चाहिए, जिससे किसी जीव की हिंसा न हो।[373]

रसना इन्द्रिय के समान जीवों को अपनी स्पर्शन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियों को वश में रखने के साथ-साथ मन को वश मे करना चाहिए।

षट्काय के जीवों की रक्षा के विधान के साथ दो इन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय समस्त त्रस जीवों की रक्षा का विधान किया गया है।

आज का मनुष्य अन्धाधुन्ध पृथ्वी को खोदता जा रहा है, इससे कितने जीवों का विधान होता है और पर्यावरण पर इसका कितना बुरा प्रभाव पड़ता है, इसकी उसे खबर नहीं है। जैनाचार्यों ने पृथ्वीकायिक जीवों की रक्षा का विधान करते हुए कहा है-

शिला, पर्वत, धातु, रत्न आदि में बहुत से कठिन पृथ्वीकायिक जीव रहते हैं तथा मिट्टी आदि में बहुत से कोमल पृथ्वीकायिक जीव रहते हैं तथा उनके भी स्थूल, सूक्ष्म आदि अनेक भेद हैं। इसलिए मुनिराज अपने हाथ से, पैर से, उंगली से, लकड़ी से, सलाई से या खप्पर से पृथ्वीकायिक जीव सहित पृथ्वी को न खोदते हैं, न खुदवाते हैं, न उस पर लकीरें करते हैं, न कराते हैं, न उसे तोड़ते हैं, न तुड़वाते हैं, न उसे चोट पहुँचाते हैं तथा अपने हृदय में दयाबुद्धि धारण कर न उस पृथ्वी को परस्पर रगड़ते हैं, न उसको किसी प्रकार की पीड़ा देते हैं। यदि कोई अन्य भक्त पुरुष उस पृथ्वी को खोदता है या उस पर लकीरें करता है, उस पर चोट करता है, रगड़ता है या अन्य किसी प्रकार से उन जीवों को पीड़ा पहुँचाता है तो[374] वे योगी उसकी अनुमोदना भी नहीं करते।

जलकायिक जीवों की रक्षा के प्रसङ्ग में कहा गया है कि मेघ या बरफ की बूँदो में रहने वाले जलकायिक जीवो का स्पर्शन सघट्टन न कभी करना चाहिए और न कराना चाहिए।[375] पानी छानकर पीना चाहिए। नहाना, कपड़े धोना, प्रक्षालन करना आदि सब काम गृहस्थों को छने हुए पानी से

---

[372] प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 12/113

[373] वही 12/114

[374] मूलाचार प्रदीप 1/56-60

[375] मूलाचार प्रदीप 1/65

करना चाहिए। पशुओं को भी छना हुआ पानी देना चाहिए; क्योंकि बिना छना पानी देने में अनन्त जीवों की हिंसा होती है। जिस वस्त्र से पानी छाना जाय, वह मोटा होना चाहिए, चिकना होना चाहिए और नया होना चाहिए तथा जितना बड़ा बर्तन का मुँह हो, उससे तिगुना होना चाहिए। ऐसे वस्त्र को दुहराकर फिर उससे जल छानना चाहिए।[376] वस्त्र गालित जल एक मुहूर्त के बाद, प्रासुक जल दो प्रहर के बाद और उष्ण जल अहोरात्र (चौबीस घण्टे) के बाद सम्मूर्छित हो जाता है अर्थात् उसमें सम्मूर्च्छन जीव हो जाते हैं।[377]

अग्निकायिक जीवों की रक्षा के प्रसङ्ग में कहा गया है कि मुनियों को अपने हाथ से या किसी अन्य उपाय से न तो अग्नि को बुझाना चाहिए, न जलाना चाहिए, न उसका घात करना चाहिए।[378] अग्नि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे, दिशा, विदिशा सब जीवों को जला देती है। अतएव अपने मन से अग्नि के प्रकाश की कभी इच्छा नहीं करना चाहिए।[379]

जैन ग्रन्थों में वायु के अनेक भेद हैं, जैसे उत्कलिका वात, मण्डलिक वात, गुजावात, महावात, घनोदधिवाद, घनवात और तनुवात। वायु का सचित्त और अचित्त रूपों में भी विभाजन प्राप्त हुआ है।[380] वायु का प्रारम्भ करने से वायुकायिक जीवों की या वायुकाय के आश्रित रहने वाले जीवो की हिंसा अवश्य होती है। आजकल इस बात का ध्यान न रखकर तरह-तरह की गैसों का प्रयोग किया जाता है, जिससे अनन्त जीवों की हिंसा होती है। मनुष्य भी इसकी चपेट से बचा नहीं है। भोपाल गैस काण्ड इसका प्रत्यक्ष साक्षी है। हवा विभिन्न गैसों का सम्मिश्रण है, जिसमें आक्सीजन नाइट्रोजन, कार्बन डाइ आक्साइड तथा सल्फर डाई आक्साइड गैसें प्रमुख हैं। प्राणी श्वास द्वारा आक्सीजन ग्रहण करते हैं तथा निश्वास द्वारा कार्बन डाइ आक्साइड बाहर निकालते हैं। दिन के समय वनस्पतियाँ कार्बन डाइ आक्साइड आक्सीजन में बदल देती हैं। रात्रि में पेड़ पौधे कार्बन डाइ आक्साइड छोड़ते हैं। इस प्रकार प्राणी और वनस्पति की संख्या का अनुपात विचारणीय प्रश्न बन जाता है।

---

[376] प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 12/105-107, 109

[377] वही 12/110

[378] मूलाचार प्रदीप 1/72

[379] दशवैकालिक

[380] डॉ. फूलचन्द्र प्रेमी: मूलाचार एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ. 481-482

निरन्तर कटते हुए वन के कारण वायुमण्डल दूषित हो रहा है, जो चिन्ता का विषय है।

जैनधर्म में वनस्पति के दो भेद किए हैं-प्रत्येक काय और अनन्त काय। इनमें से प्रत्येक काय स्थूल ही होता है, पर साधारण काय बादर और सूक्ष्म दोनों रूप होता हे। जिस जीव के वनस्पति नामकर्म का उदय रहता है, वही जीव वनस्पति शरीर में जन्म लेता है। इसके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होता है।[381] प्रज्ञापना सूत्र मे प्रत्येक काय वादर वनस्पति कायिक जीव के अन्तर्गत बारह भेद बतलाए है- वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, पर्वत, तृण, वलय, हरित, औषधि, जलरुह, कुहणा।[382] इसी ग्रन्थ मे इसके प्रभेदो का भी उल्लेख है, जो वनस्पति शास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आधुनिक युग के महान् वैज्ञानिक डॉ० जगदीश चन्द्र वसु ने अनेक वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि वनस्पति में भी हमारी तरह जीव है। वे भी हमारी तरह साँस लेते और छोड़ते हैं। उनमें भी हमारे जैसे ही सुख और दु:ख की अनुभूति होती है।

मुनिराज मन-वचन-काय की शुद्धता धारण करने के कारण हरित अंकुर, बीज, पत्र, पुष्प आदि के आश्रित रहने वाले वनस्पति कायिक जीवों का छेदन, भेदन, पीड़न, वध, बाधा, स्पर्श और विराधना आदि न तो स्वयं करते है और न दूसरो से कराते है। मुनियों को गमन आगमन आदि के करने मे सेवाल और पुष्पिका (फूलन अथवा वर्षा में होने वाला एक छोटा पौधा, जिसके ऊपर सफेद फूल सा रहता है) आदि में रहने वाले अनन्तकाय जीवो की हिसा भी कभी नही करना चाहिए। वनस्पति का समारम्भ करने से वनस्पति कायिक जीव और वनस्पति काय के आश्रित रहने वाले जीवो की हिसा अवश्य होती है।[383]

वृक्षो मे आहार आदि सज्ञा पायी जाती है। इससे इनमे जीवत्व का निश्चय होता है। पानी देने पर ये हरे हो जाते हैं। लाजवन्ती को छूने पर संकुचित हो जाती है। स्त्री के कुल्ले के पानी से वकुल आदि विकसित होते

---

[381] मूलाचार वृत्ति 5/15

[382] प्रज्ञापना सूत्र पद 22

[383] मूलाचार प्रदीप 1/85-88

हैं। जिस दिशा में धन गड़ा होता है, वृक्ष की जड़ें उधर फैलती हैं। इस प्रकार वृक्षों में क्रम से आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा होती है, जो ससार्ग जीव के चिन्ह है।[384]

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते है।[385] त्रस जीवों के मुख्यतया आठ उत्पत्ति स्थान है -(1) अण्डज - अण्डों से पैदा होने वाले पक्षी आदि त्रस जीव (2) पोतज - जन्म के समय खुले अङ्गो सहित उत्पन्न होने वाले हाथी आदि त्रस जीव (3) जरायुज - वे जीव जो अपने जन्म के समय जेर से लिपटे रहे हैं, जैसे - मनुष्य, भैंस, गाय आदि (4) रसज - रस के बिगड़ने से उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रिय आदि जीव (5) स्वेदज - पसीने से उत्पन्न होने वाले जीव जैसे जूँ आदि (6) सम्मूर्छिम - वे त्रस जीव जो नर-मादा के संयोग के बिना ही उत्पन्न हो जायँ, जैसे - मक्खी, चीटी आदि। (7) उद्भिज्ज - पृथ्वी को फोड़कर निकलने वाले जीव, जैसे टिड्डी, पतगे आदि (8) औपपातिक - गर्भ मे रहे बिना ही जो स्थान विशेष मे उत्पन्न हो जाते हो, जैसे, - देव एवं नारक।

प्रयत्न करने मे तत्पर रहने वाले मुनियों को दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय त्रस जीवों की बाधा कभी नहीं करना चाहिए। मुनियो को चलने मे, बैठने में, शय्यासन करने में, रात्रि व दिन में कोमल पीछी से साफकर अथवा देखकर जीवों पर सर्वथा दया करना चाहिए।[386]

उपर्युक्त कथन से ध्वनित होता है कि लोक एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक समस्त षड्जीवनिकाय से ओत-प्रोत है। इनकी रक्षा हमारा प्राथमिक कर्त्तव्य है। यही कारण है कि जैनी सूक्ष्म से सक्ष्म जीव की हिंसा करने से अपने को विरत रखता है। भोजन मे वह मद्य, मास, मधु के त्याग के साथ सम्पूर्ण अभक्ष्य पदार्थो का त्याग करता है। मद्यपान करना उसके लिए बड़ा दोष इसलिए है; क्योंकि मद्यपान कर व्यक्ति अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठता है। मद्य को तैयार करते समय करोड़ों जीवों का विघात होता है, इसके अतिरिक्त उसमे प्रति समय अनेक जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। पण्डित

---

[384] अनगार धर्मामृत - स्वोपज्ञ टीका 4/22

[385] द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः - तत्वार्थ सूत्र 2/14

[386] मूलाचार प्रदीप 1/92-93

प्रवर आशाधर जी ने कहा है कि मद्य की एक बूँद के जीव. यदि फैलें तो तीनों लोकों को भर सकते हैं। मद्य के द्वारा मूर्च्छित हुए पुरुष इस लोक तथा परलोक दोनों को बिगाड़ लेते हैं।

मांस खाना मानव प्रकृति के सवथा विरुद्ध है। मनुष्य स्वभाव से ही शाकाहारी प्राणी है। उसकी बनावट भी शाकाहारी प्राणियों जैसी है। शाकाहारी जीवों के परिणाम शान्त और कोमल होते हैं, इसके विपरीत मांसाहारी प्राणी अशान्त और क्रूर होता है। शाकाहार करने वाले बलिष्ठ होते हैं। मासाहार से क्षय, कैंसर, पायरिया, मृगी, पक्षाघात, अनिद्रा आदि बीमारियाँ आ घेरती हैं। अपने आप मरे हुए प्राणी का भी मास नहीं खाना चाहिए; क्योंकि मरे हुए प्राणी के कलेवर में भी अनन्त निगोदिया जीवो की उत्पत्ति होती रहती है। मांस को छूने मात्र से वे मर जाते हैं।

मास भोजन का परित्याग करने वाले को रात्रि भोजन का भी अवश्य त्याग करना चाहिए। रात्रि के समय अनेक जीव, जो कि सूर्य की किरणों के कारण दिन मे इधर-उधर छिपे रहते हैं, सूर्य की किरणों के अभाव मे वातावरण में व्याप्त हो जाते हैं। उनमे से बहुत से हमारे पेट में चले जाते हैं। बिजली के प्रकाश में भी बहुत से कीट पतंग बिजली के चारो ओर मडराते रहते हैं। भोजन करते समय उनमें से बहुत से हमारे उदर मे समा जाते हैं। उसमें उन प्राणियों की हत्या तो होती ही है, साथ ही वे नई नई बीमारियों को जन्म देते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से भी दिन में भोजन करना लाभकारी है। भोजन करने के तत्काल बाद सो जाने से पेट में पाचन क्रिया ठीक नहीं हो पाती। यदि सोने के कुछ घण्टे पहले भोजन कर लिया जाय तो भोजन अच्छी तरह पच जाता है और शरीर मे हलकापन नजर आता है। आलस्य भी नहीं आता है। भोजन के बाद सफाई वगैरह का सारा काम दिन में ही हो जाने के कारण घर मे स्वच्छता बनी रहती है।

मधुभक्षण मे भी दोष है। मधु की प्राप्ति मधुमक्खियो के छत्ते से होती है। मधुमक्खियाँ दिन भर फूलो का रस चूसकर शहद इकट्ठा करती है, उसी मे उनके अण्डे होते है। मधु संचय करते समय उन अण्डो का और उनमे रहने वाली मक्खियों का घात होता है। अतः मधु भक्षण भी त्याज्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनधर्म में पद पद पर जीव हिंसा से बचने का उपदेश दिया गया है। इन उपदेशों का पालन कर हम पर्यावरण को सुरक्षित रख सकते हैं; क्योंकि पर्यावरण की सुरक्षा का सम्बन्ध जीव की सुरक्षा से है। यदि जीव सुरक्षित है तो पर्यावरण सुरक्षित है, यदि जीव सुरक्षित नहीं है तो पर्यावरण भी सुरक्षित नहीं है। पर्यावरण की सुरक्षा का अर्थ है - प्रकृति की सुरक्षा। प्रकृति की सुरक्षा जीव रक्षा के बिना नहीं हो सकती। जब तक हम सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव के प्रति भी करुणा की दृष्टि नहीं रखेंगे, तब तक हम उनकी सुरक्षा नहीं कर सकते। छोटे से छोटे जीवधारी की हिंसा करने में हमारी अपनी हिंसा, हमारा अपना विनाश छिपा हुआ है। मनुष्य ने जितना अधिक कीट पतगो को मारने का प्रयत्न किया, वह उसके लिए उतना ही हानिकारक सिद्ध हुआ। उदाहरणार्थ रासायनिक खादें किसी न किसी रीति से हमारे शरीर में पहुँचकर अनेक रोगों को जन्म दे रही हैं। गो सम्पदा के विनाश से देश में घी, दूध की कमी हो रही है, जिससे कुपोषण का शिकार होकर लाखों मनुष्य काल-कवलित हो रहे हैं। वन सम्पदा के विनाश से वर्षा समय पर नहीं होती है। कहीं-कहीं अनावृष्टि का भी सामना करना पड़ता है। वृक्ष नही रहने से भूमि क्षरण की समस्या उत्पन्न हो गयी है। पृथ्वी पर अनेक स्थानो पर भूकम्प आ रहे है। अनेक जीव जन्तु जो बीमारियों से हमारी रक्षा करते थे, नष्ट होते जा रहे है। प्रदूषण के कारण मनुष्य में बहरापन, उच्च रक्तचाप, अल्सर आदि बीमारियों के फैलने का खतरा दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। पशु पक्षियों के प्रति क्रूरता के कारण मनुष्य की प्रकृति क्रूर हो गयी है, फलत: मानव मानव के प्राणो का प्यासा होकर आतङ्कवादी कार्यों में लिप्त हो रहा है। इस प्रकार बनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। यदि इन समस्याओं से हमें परित्राण पाना है तो "जीवो जीवस्य रक्षणं" अथवा "धम्मो दया विसुद्धो" को जीवन मे अपनाना होगा।

जैन साधुओ का पर्यावरण रक्षण में बहुत बड़ा योगदान है। आज भी वे प्राकृतिक जीवन जीते है। मनुष्य के जीवन की तीन बड़ी आश्यकतायें हैं- 1- भोजन, 2- वस्त्र और 3- मकान। जैन साधु मकान नहीं रखते, अत: अनगार कहे जाते है। इसके विपरीत आज के मनुष्य ने मकान और दुकान की सजावट हेतु प्रकृति का और पेड़-पौधों का बहुत विनाश किया है। आधुनिक सोफा सेट, डबल बैड, डाइनिंग टेबिल आदि के लिए बड़े-बड़े वन कट गए

हैं। आज का मनुष्य प्रकृति के अनेक स्रोतों से प्राप्त कृत्रिम और अकृत्रिम धागों से बने वस्त्र का प्रयोग परिमाण से अधिक करता है। जैन मुनि वस्त्र के सर्वथा त्यागी होते हैं। तीसरी सबसे बड़ी आवश्यकता भोजन की है। जैन साधु का आहार कैसा होना चाहिए, इसके लिए मूलाचार, भगवती आराधना, अनगार धर्मामृत आदि ग्रन्थ नियमोपनियमो से भरे पड़े हैं। ये नियम प्रायः जीवरक्षा और इन्द्रियदमन को दृष्टि में रखकर बनाए गए है। इसके अतिरिक्त जैन मुनि उद्दिष्ट भेजन के भी परित्यागी होते है। इस प्रकार जैन मुनि की चर्या प्रकृति और पर्यावरण के सबसे अधिक निकट है। श्रावकों के आचार में भी स्थूल हिंसा के परित्याग को प्रमुखता दी गई है। प्रकृति की सँभाल हेतु यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने पर बल दिया गया है। भगवान् महावीर से किसी ने पूछा था-

कह चरे कह चिट्ठे कहमासे कहं सए।

कह भुञ्जंतो भासतो पावकम्म ण बड्ढई।।

अर्थात कैसे चले? कैसे ठहरे? कैसे आसन लगाएं? कैसे भोजन करें? कैसे बोले? जिसमे पाप कर्म का बन्धन न हो।

उत्तर में भगवान् ने कहा था - जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे, जय सए, जयं भुञ्जतो भासतो पावकम्मं ण बड्ढई।।

अर्थात् आयुष्मान्! विवेक से चलो, विवेक से ठहरो, विवेक से आसन लगाओं, विवेक से शयन करो, विवेकपूर्ण भोजन करो, विवेक से बोलो, जिससे पाप कर्म का बन्धन न हो। पाप के मोचन से पुण्य रूपी जल द्वारा आत्मा का प्रक्षालन होगा। इससे आत्मा शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन होकर विराट पर्यावरण का अङ्ग होकर उसे स्थायित्व प्रदान करेगी।

मानव जाति के इतिहास का यदि हम अध्ययन करे तो हमें ज्ञात होता है कि मनुष्य की आद्य संस्कृति वन्य सस्कृति थी। मनुष्य प्राकृतिक अवस्था मे रहता था। उस समय एक विशेष प्रकार के वृक्ष होते थे, जिन्हे कल्पवृक्ष कहा जाता था। इन वृक्षो से मानव जीवन की आवश्यकतायें पूर्ण होती थी। इसमे कोई आश्चर्य नही होना चाहिए; क्योंकि आज भी मनुष्य की भोजन, वस्त्र, मकान आदि की अधिकाश आवश्यकताओ की पूर्ति वृक्षों से ही होती है।

वृक्षों या पेड़ पौधों के अभाव में मनुष्य का जीवन दूभर हो जायगा। कल्पवृक्षों का काल दोष से जब धीरे-धीरे लोप होना प्रारम्भ हुआ तो मनुष्यों ने उन पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया, फलस्वरूप संघर्ष हुआ। इस संघर्ष की समाप्ति हेतु भगवान् ऋषभदेव ने विभिन्न प्रकार की व्यवस्थायें दीं तथा असि, मषि, कृषि, शिल्प, विद्या और वाणिज्य आदि की शिक्षा दी। फलस्वरूप कृषि सस्कृति का विकास हुआ, जिसका सारा आलम्बन पेड़ पौधों पर था।

वृक्षों के प्रति जैन संस्कृति और धर्म सदा संवेदनमय रहा है। उदाहरण के लिए लेश्याओं के प्रसङ्ग में वृक्ष का उदाहरण दिया जाता है। कृष्णलेश्या वाला पुरुष चाहता है कि फल प्राप्ति के लिए वह पूरे वृक्ष को ही काट डाले। नील लेश्या वाला सोचता है कि पूरे वृक्ष को काटने से कोई लाभ नहीं, डालियों को काटने से ही काम चल जायगा। कापोत लेश्यायुक्त पुरुष सोचता है कि बड़ी डालियों को काटने से कोई लाभ नहीं है, छोटी-छोटी डालियों के काटने से ही प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। पीत लेश्या युक्त पुरूष सोचता है कि और भी अधिक छोटी-छोटी टहनियाँ तोड़ी जायें। पद्म लेश्या वाला व्यक्ति सोचता है कि टहनियाँ काटने से कोई लाभ नहीं है, हमें मात्र फल चाहिए, अतः फल ही तोड़ना चाहिए। शुक्ल लेश्या का धारी पुरुष सोचता है कि फल को तोड़ने से वृक्ष को कष्ट पहुँचेगा; क्योंकि जिस प्रकार हमे अपना अङ्ग टूटने पर दुःख होता है, उसी प्रकार वृक्षो को भी होता है, हमे किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देना चाहिए। ऐसा सोचकर वह अपने आप टूटकर जो फल नीचे गिरे हुए हैं, उन्हे ही चुनकर सन्तोष धारण करता है। वृक्षों के प्रति तथा समस्त जीवधारियो के प्रति हमारी संवेदना इसी प्रकार की हो तो हम पर्यावरण की सुरक्षा अच्छी तरह कर सकते हैं। इसी मे व्यष्टि और समष्टि का हित छिपा हुआ है।

सहायक ग्रन्थ तालिका

1- ऋग्वेद (सूरत 1950)

2- अथर्ववेद (सूरत 1950)

3- आरुणिकोपनिषद्

4- शाण्डिल्योपनिषद्

5- मनुस्मृति - प्रकाशक - साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ।

6- मत्स्य पुराण

7- पातञ्जल योगदर्शन

8- अग्नि पुराण

9- अभिज्ञान शाकुन्तलम् - कालिदास, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ

10- कादम्बरी - लेखक बाणभट्ट, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, उ०प्र

11- बाल्मीकि रामायण - बाल्मीकि, गीता प्रेस, गोरखपुर।

12- उत्तररामचरित - भवभूति, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ।

13- संयुत्त निकाय

14- महाभारत - अनुशासन पर्व, गीता प्रेस, गोरखपुर।

15- गुरुग्रन्थ साहिब

16- पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय - आ० अमृतचन्द्र सूरि, भा०दि० जैन परिषद् देहली।

17- जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश (भाग-1) - जिनेन्द्र वर्णी, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोधी रोड, नई दिल्ली।

18- रत्नकरण्ड श्रावकाचार - आचार्य समन्तभद्र, जेनेन्द्र प्रेस, ललितपुर।

19- मूलाचार - वट्टकेर, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोधी रोड, नई दिल्ली।

20- भगवती आराधना - शिवार्य, ब्र० जीवराज जैन, ग्रन्थमाला, सन्तोष भुवन, फलटण गली, शोलापूर।

21- धवला - आचार्य वीरसेन, प्र० जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर।

22- राजवार्तिक - भट्ट अकलंकदेव स०प० महेन्द्र कुमार, न्यायाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र०सं०

23- सर्वार्थसिद्धि - आ० पूज्यपाद, सं०पं० फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र०सं०

24- नियमसार - आचार्य कुन्दकुन्द, पं० टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4 बापूनगर, जयपुर (राजस्थान)

25- प्रवचनसार - आ० कुन्दकुन्द, प० टोडरमल स्मारक, ए-4 बापूनगर, जयपुर।

26- समयसार - आ० कुन्दकुन्द, पं० टोडरमल स्मारक, ए-4 बापूनगर, जयपुर।

27- पञ्चाध्यायी - राजमल्ल, टीकाकार पं० देवकीनन्दन शास्त्री, गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी।

28- सागार धर्मामृत - पं० आशाधर, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

29- ज्ञानार्णव - भट्टारक शुभचन्द्र, परमश्रुत प्रभावक मण्डल, अगास।

30- पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका - आ० पद्मनन्दि, प्र० जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापूर।

31- महावीर मेरी दृष्टि में - आ० रजनीश

32- प्रशमरति प्रकरण - उमास्वामि

33- गाधी : संस्मरण और विचार - सम्पा० काका साहब कालेलकर प्र० सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली एवम् गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, 221 राउज एवेन्यू, नई दिल्ली।

34- अनगार धर्मामृत - पं० आशाधर टीका - पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली।

35- स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा - स्वामि कार्तिकेय, प्रं० परमश्रुत प्रभावक मण्डल, अगास, वाया - आणन्द (गुजरात)

36- अपराध : समस्या और समाधान

37- सन्मति प्रकरण - आ० सिद्धसेन

38- षड्दर्शन समुच्चय - हरिभद्रसूरि, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

39- अन्ययोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका - आ० हेमचन्द्र

40- अष्टशती - भट्ट अकलंकदेव।

41- स्याद्वाद मञ्जरी - मल्लिषेण सूरि, प्र० परमश्रुत प्रभावक मण्डल, अगास, वाया-आणन्द (गुजरात)

42- युक्त्यनुशासन - आचार्य समन्तभद्र, वीर सेवा मन्दिर, 21 दरियागंज, देहली।
43- उपासकाध्ययन - आचार्य सोमदेवसूरि, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
44- भगवान महावीर और उनका तत्त्वदर्शन - आचार्य देशभूषण, जैन साहित्य समिति, देहली।
45- भाव संग्रह - वामदेव, भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्।
46- धर्मसंग्रह श्रावकाचार - जीवराज जैन ग्रन्थमाला , सोलापुर।
47- हरिवंशपुराण - आ० जिनसेन अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
48- पद्मचरित - आचार्य रविषेण, अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम आवृत्ति, जुलाई 1958
49- जसहरचरिउ - महाकवि पुष्पदन्त, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
50- यशस्तिलक चम्पू - आचार्य सोमदेव सूरि, अनुवादक - पं० सुन्दरलाल शास्त्री।
51- वीरोदय - महाकवि ज्ञानसागर, प्र० आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर, राजस्थान।
52- आराधना कथा प्रबन्ध - प्रभाचन्द्र, प्र० आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला, बुढ़ाना, जिला मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)
53- आराधना कथा कोश - ब्रह्मनेमिदत्त
54- आचाराङ्.ग - प्रकाशक - जैन विश्व भारती, लाडनूं।
55- स्थानाङ्.ग सूत्र - प्रकाशक - जैन विश्व भारती, लाडनूं।
56- उत्तराध्ययन सूत्र - जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा, 3 पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-1
57- दशवैकालिक चूर्णि - जिनदास महत्तर
58- मूलाचार - आ० वट्टकेर, अनु० आर्यिका ज्ञानमति, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
59- वसुनन्दि श्रावकाचार - आ० वसुनन्दि प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
60- अमितगति श्रावकाचार - अमितगति, प्र० जीवराज जैन ग्रन्थमाला, फलटण गली, शोलापुर (महाराष्ट्र)
61- प्रश्नोत्तर श्रावकाचार - प्रकाशक - उपर्युक्त।

62- धर्मोपदेश पीयूष वर्ष श्रावकाचार - प्रकाशक - उपर्युक्त।

63- पूज्यपाद श्रावकाचार - प्रकाशक - उपर्युक्त।

64- लाटी संहिता

65- मार्कण्डेय पुराण

66- स्कन्ध पुराण

67- अरण्य पुराण

68- सुश्रुत संहिता - सुश्रुत

69- ज्ञानार्णव - शुभचन्द्र, प्र० परमश्रुत प्रभावक मण्डल, अगास, वाया आणन्द (गुजराज)

70- क्रान्तिकारी संकेत

71- अहिंसा सूत्र आचार्य विद्यासागर जी महाराज, प्र०अ० भा० मांस निरोध परिषद् 25ए०, एम०आई०जी० कॉलोनी, होटल सुहाग के पीछे, इन्दौर (म०प्र०)

72- कत्लखानों का नर्क : गांधी जी के देश में, प्र०अ०भा० मांस निरोध परिषद्, 25-ए एम०आई०जी० कॉलोनी, ए०बी० रोड, सुहाग होटल के पीछे, इन्दौर।

73- क्या अण्डे खाना स्वास्थ्यवर्द्धक है - लेखक प्रो० इरविंग डेविडसन व डाक्टर रावर्ट ग्रौस, अनु० डॉ० भानु प्रताप आर्य, प्र० अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज, एटा।

74- गर्भपात उचित या अनुचित - गोपीनाथ अग्रवाल

75- तीर्थकर वर्द्धमान महावीर - पं० पद्मचंन्द्र शास्त्री

76- आदिपुराण - आचार्य जिनसेन - अनु० प्र० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

77- तत्वार्थ सूत्र - उमास्वामी, टीका - पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रकाशक - मूलचन्द किशनदास, कापड़िया, सूरत, वीर निर्वाण संवत् 2482

78- मूलाचार प्रदीप - भट्टारक सकलकीर्ति, दिगम्बर जैन समाज, मारोठ (राजस्थान)

79- दशवैकालिक

80- मूलाचार एक समीक्षात्मक अध्ययन - डॉ० फूलचन्द्र प्रेमी, प्रकाशक - पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान आई०टी०आई० रोड, वाराणसी-5

81- प्रज्ञापना सूत्र

पत्र-पत्रिकायें

1- अणुव्रत

2- अहिंसा न्यूज - लक्ष्मी नारायण मोदी, महामन्त्री, पंजीकृत कार्यालय, 40 तिरूमलई, पिल्लई रोड, टी० नगर, चेन्नई।

3- अहिंसा संदेश - प्रकाशक अहिंसा सन्देश कार्यालय, पो०बा०नं० 85, राँची (झारखण्ड)

4- जैन गजट - सम्पादक - श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, भा०दि० जैन महासभा कार्यालय, नन्दीश्वर फलोर मिल्स, ऐश बाग, लखनऊ (उ०प्र०)

5- भारतीय जैन मिलन समाचार - सम्पा० वीर सुमत प्रसाद जैन, नूतन पाकेट बुक्स, ईश्वरपुरी, मेरठ (उ०प्र०)

6- दिशा बोध - सम्पादक - चिरंजीलाल बगड़ा, 46 स्ट्राण्ड रोड, तीनतल्ला, कोलकाता 700007

7- प्राकृत विद्या - डा० प्रेम सुमन जैन आदि, प्र० कुन्दकुन्द भारती, 18 बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली।

8- जैन प्रतीक - प्रधान सम्पादक - नरेन्द्र कुमार राँका, 19/6 साउथ तुकोगंज, इन्दौर।

9- कादम्बिनी

10- संस्कार सागर - सम्पा० ब्र० जिनेश मलैया, श्री दि० जैन पंचबालयती मन्दिर, सत्यम् गैस के सामने, ए०बी०रोड० इन्दौर।

11- सन्मति सन्देश - पं० प्रकाश हितैषी शास्त्री

12- अमर उजाला, दैनिक

13- जैन मित्र - जैन मित्र कार्यालय, गांधी चौक, सूरत।